"नव-वधुका शृङ्गार"

सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

जुलाई, १९४० | वर्ष ८, खण्ड १६ | आषाढ़, १९९७
अङ्क ४, पूर्ण संख्या ९४

एक प्रश्न

क्या सुनने आयी हो प्रेयसि,
किसने यह जीवन विफल किया ?
किसने अणु-अणुको किया व्यर्थ,
किसने पल-पलको अनल किया ?
किससे स्वप्नोंका कुञ्ज देख,
तन्द्रिल अंगड़ाई ले डाली ?
किसके नयनोंमें भरी प्रलय,
मेरे जीवनकी हरियाली ?
किसका नीरव सङ्कोच मृदुल—
मेरे अन्तरपर इतराया ?
किसका मीठा-सा तिरस्कार
मेरे तन-मनमें मुसकाया ?
क्या कह दूं मेरे इन प्राणों—
में किसके स्पर्शोंका स्पन्दन ?
इस गतिपर—इस दुर्गतिपर भी—
किसका उत्पीड़न—कौन जलन ?
क्या देख रही हो दूर खड़ी—
मेरी असफलता प्रगतिहीन ?
मेरा स्वरूप ? चेष्टा मेरी ?
अथवा आच्छादन छिन्न-दीन ?
क्या मेरी कुछ दुर्बलतायें—
तुमको लगती हैं अधःपतन ?
या खोज रही हो शून्य बीच,
इस वर्तमानमें आकर्षण ?
आकर्षण ? कैसा तुच्छ प्रश्न —
लिप्साका तमसाच्छन्न जाल ।

इस जागरूक मनकी हिंसा,
प्रशस्त पथका कण्टक कराल।
तरसा - तरसाकर जीवनको,
इसने मानवका खून पिया
इसने प्रस्तरके महास्तम्भको,
जर्जर करके धूल किया
इसने भविष्यके स्वप्नोंपर,
निशि - दिन करवाया अट्टहास
इसके मायावी होठोंमें,
दानवताका है कुटिल वास।
यह दिग्भ्रम है—यह अन्धकार,
सब कुछ काला बाहर-भीतर।
यह मोह-पाश, यह गर्त-वास—
यह महानाशकी दृष्टि प्रखर!
माना, मैंने आकर्षणमें,
तुमको अन्तरसे लिपटाया।
माना, मैंने आकर्षणमें,
जीवनका दुर्लभ रस पाया।
कर पाया मैंने मन व्याकुल,
कर पाया मैंने तन्द्रिल तन।
चेतना त्याग, मूर्च्छना जगा,
लिप्साका देखा नव नर्तन।
लेकिन उठता है प्रश्न एक,
परिणाम कहो उसका क्या है?
तुम क्षितिज-शिखा-सी दूर खड़ीं
बोलो, कारण इसका क्या है?

—भगवतीप्रसाद बाजपेयी।

समाजका यह नैतिक धरातल!

श्री शिवदेव उपाध्याय, बी० ए० बी० एल०

नवीन और प्राचीन विचार-धाराओंका सङ्घर्ष सदासे चला आया है—सभी युगों और सभी देशोंमें। समाजकी आवश्यकताओंको लेकर जो परिवर्तन वाञ्छनीय होते हैं, उनकी उपेक्षा एक ऐसी जड़ता लाना चाहती है, जिसके विरुद्ध क्रियाशील शक्तियां टकराती और सङ्घर्ष उत्पन्न करती हैं। नये और पुरानेका यह सन्धिकाल सदा ही बना रहता है; क्योंकि किसी समय-विशेषमें परिवर्तन स्पष्ट रूपसे भले ही दिखाई पड़ें, वास्तवमें सामाजिक जीवनमें इन परिवर्तनोंको सम्भव बनानेवाली शक्तियां पहलेसे टकराती रहती हैं, इसलिए यह सङ्घर्ष भी स्थायी होता है। एक देशने एक युगमें जिन बातोंको अपने जीवनकी महान् चेतना मान रखा हो, वही उसमें जड़ता लाने लगती हैं और सम्भव है, दूसरे देशों और दूसरे युगोंमें वह जड़ता ही एक नयी चेतनाके लिए उद्बोधन प्रदान करे।

और तब मानव इस स्थितिमें कुछ उलझा-उलझा-सा रहता है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि वास्तवमें सही रास्ता कौन-सा है। इस चौराहेपर खड़े होकर उसे सूझता नहीं कि आखिर कौन-सी राह वह पकड़े। उसके पुराने परिचित मार्गका उसे पता है; पर राहगीर यह भी कहता है कि अभी जो इन दूसरे मार्गोंकी मरम्मत हुई है, वे अधिक सुविधाजनक हैं।

सामाजिक जीवनमें यह विशृङ्खलता उत्पन्न करनेवाली स्थितियां होती हैं। और तब ऐसे मनुष्योंकी स्थिति बड़ी टेढ़ी हो जाती है, जिन्हें सच्ची राहका निश्चय नहीं हो पाता। हृदय और बुद्धिका भी सङ्घर्ष यहींसे चलता है। तर्क द्वारा किसी बातके प्रमाणित हो जानेपर भी, जब बुद्धि पराजित हो चुकी होती है तब भी, हृदयने जिन्हें सदासे अपनाया है, उन्हें तत्काल छोड़नेपर तैयार नहीं हो पाता। और ये स्थितियां हैं, जिनसे आज भारत गुजर रहा है। हमारे समाजमें आज विभिन्न और कितनी ही परस्पर-विरोधी विचार-धारायें टकरा रही हैं। एक ओर प्राचीनताका मोह हममें जड़ता भर रहा है और दूसरी ओर ऐसी शक्तियां उठ रही हैं, जो किसी सीमा तक अपने प्रवाहमें विचार-सन्तुलन भी नष्ट करती दिखाई पड़ती हैं।

इस सङ्घर्षके बीचमें सत्यासत्यका ठीकसे निर्णय न कर सकनेकी दशामें प्राणी अगर उलझा-सा है, तो ऐसे लोगोंका भी अभाव नहीं है, जो अपनी बौद्धिक चेतनाका सदुपयोग इस सङ्घर्षसे लाभ उठानेमें ही करते हैं। ऐसे प्राणियोंकी कमी कब और किस समाजमें रही, जिन्होंने प्रचलित विचार-धाराओंको ही अपने निजी हित-साधनका द्वार नहीं बनाया? कब ऐसे लोगोंका अभाव रहा है, जिन्होंने विजेताओंकी पिछली पंक्तिमें घुसकर लूटके मालमें हिस्सा लेनेकी मनोवृत्ति न रखी हो? ऐसी स्थितियोंसे प्राचीनके खण्डहरोंपर जो नयी इमारतें बनती हैं, सर्वसाधारणका लाभ उनसे होता ही है; पर बात तो उनकी है, जो उन नयी इमारतोंके केवल इसलिए समर्थक हो जाते हैं कि उनकी निर्माण-अवस्थामें उनके स्वार्थ-साधन हो सकेंगे। ये उस श्रेणीके अवसरवादी हैं, जिनका अपने स्वार्थके अतिरिक्त और किसी बातमें विश्वास नहीं है। यह उन शस्त्रास्त्र निर्माण करनेवाले कारखानेके हिस्सेदार राज-नीतिज्ञोंकी श्रेणीके हैं, जो सदा मृत्युका ही सौदा कर अपना स्वार्थ-साधन किया करते हैं। युद्ध-कालमें उन राष्ट्रोंके समान ऐसे व्यक्तियोंकी स्थिति है, जो दोनों लड़ाकू पक्षोंके हाथ हथियार बेचते हैं। दोनों ही पक्षोंको समान रूपसे सुसज्जित करनेमें न तो गणतन्त्रकी ही रक्षा होती है और न विश्व-शान्तिके ही स्तम्भ गिरनेसे बच रहते हैं; पर इससे वह देश निश्चय ही मालामाल हो जाता है।

लेकिन क्या यह राजनीतिक समस्याका कोई समाधान पेश करना हुआ? किसी भी पक्षके लिए क्या उनका यह सक्रिय समर्थन हुआ? और क्या किसी भी पक्षकी विजय अथवा पराजयमें उनकी दिलचस्पी है?

और शस्त्रास्त्रके—मौतके—सौदागर यह जो कुछ करते हैं, वही दूसरे रूपोंमें दूसरे क्षेत्रोंमें वे लोग करते हैं, जो उसी मन्त्रसे दीक्षित हैं। कूटनीतिज्ञ राजनीतिक नेता सोचता है, अमुक सिद्धान्त देशके लिए बेकार है। उसका मन कहता है, अमुक पदार्थ देशके लक्ष्योंको चरितार्थ न कर सकेगा; पर वह बाहर इसका समर्थन करता है, इसके नामपर समस्त देशको बलिदान करनेके लिए ललकारता है। उसकी वाणीमें भाषा-का ओज और आत्म-विश्वासकी दृढ़ता होती है। सबेरे व्याख्यान देता है, तो रातमें उसे उसके समर्थनके लिए तर्क ढूंढ़ने पड़ते हैं, और तर्क कमजोर पड़ने लगे, तो आत्माकी आवाजके नामपर, अपनेसे बड़े नेताके नामपर और सबसे अधिक देशके नामपर अपने तुच्छ, किन्तु विचारपूर्ण निर्णयके अनुसार वह अज्ञानियोंकी पल्टनको अपनी उस बातपर चला देता है, जिसमें उसका अपना विश्वास नहीं है। अनुयायियोंकी कहीं कमी नहीं है, केवल नेता चाहिए।

आप नेतृत्वके लिए ललकारिये और संसारमें प्रचलित मोहक मन्त्रोंके नामपर जनतासे अपील कीजिये, और आप आश्चर्य करेंगे कि आपमें नेतृत्वकी तनिक भी क्षमता न होनेपर भी कितने ही आपके नेतृत्वके नीचे काम करनेको तैयार हैं। अगर ऐसा न होता, तो गणतन्त्र सर्वत्र विफल न होता, निर्वाचन-प्रणालियोंके परिणाम महान् बुद्धिजीवियोंकी पराजयमें दिखाई न पड़ते, जनसंख्याकी वृद्धिके साथ-साथ मत-मतान्तरोंकी भी संख्या बढ़ती न चलती। और आचार्य कृपलानी जिसे भारतकी प्रतिभा कहते हैं, उसका ऐसा सुन्दर विकास न हुआ होता!

प्रकाशक सोचता है, नेताकी वाणी देशका सच्चा प्रति-निधित्व नहीं कर रही है। उसका मन कहता है, देशकी आत्मा और कहीं है और नेता अपनी जिदके कारण, अपना नेतृत्व बनाये रखनेके लिए, देशके लिए नहीं, अपनी विचार-धाराओंके प्रचारके मोहसे—और यह सब मानवीय भावनायें हैं, इन्हें दोष या गुण हम नहीं कहना चाहते—अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करना चाहता है; पर वह कहता है और नेताके महान् व्यक्तित्वका भय उससे कहलवाता है कि नेताके विरुद्ध आवाज उठानेवाला व्यक्ति देशका शत्रु है, नेताका सिद्धान्त विश्वको एक देन है। उसके अपने स्वार्थ कहते हैं कि वह विशाल बहुमतका होकर रहे, और जब कि ऐसा होकर रहनेमें वह अपनेको तर्कतः गणतन्त्रवादी भी प्रमाणित करता है। उसकी आवाज बहुसंख्यकोंकी आवाज है और इसलिए जनताकी आवाज है।

और जनताकी यह आवाज उसे जनताके शोषणके लिए सारे अधिकारोंसे सुसज्जित कर देती है। संसारमें सदासे मूर्खोंकी अधिकता रही है और उनकी अपेक्षा कम मूर्खोंने सदा उनसे लाभ उठाया है। आधुनिक सभ्यताने जहां अनेक दिशाओंमें महान् परिवर्तन किये हैं, वहां उसने मनुष्यका आन्तरिक परिवर्तन भी एक विशाल पैमानेपर

किया है। वह आज अपनेको छिपानेकी कलामें खूब पटु हो गया है। पदलाघवता (Brevity) को जब कलाकी आत्मा कहा गया था, तब भी उसका उद्देश्य यही था। राजनीतिमें इस प्रकारकी भाषाको खूब महत्त्व दिया जाता है, जिससे एकही अर्थ न निकल सके। गांधीजीके सम्बन्ध-में उनके मन, बचन, कर्मसे एक होनेकी बात कही जाती है; पर 'टाइम्स आव इण्डिया' के एक संवाददाताने एक बार जब उनका वक्तव्य लिया था, तो उसकी तात्कालिक प्रसन्नताको नष्ट करनेवाली शीघ्र ही यह भावना भी आयी कि इसके कई अर्थ होते हैं। कहनेका अर्थ यह नहीं कि गांधीजीने जान-बूझकर ऐसा किया था या नहीं और राजनीतिमें ऐसी कूटनीतिक भाषाका महत्त्व देखते हुए यह वाञ्छनीय था या नहीं, तथ्य यह है कि आजकी दुनियाने यह छिपानेकी कला खूब सीख ली है और भौतिक सफलताओंके लिए इसकी अनिवार्यतामें भी लोगोंका विश्वास होता जा रहा है।

तो दूसरे विशाल क्षेत्रोंमें विशाल पैमानेपर इस भण्डता-का जो उपयोग हो रहा है, दैनिक व्यक्तिगत जीवनमें भी इसके प्रयोग कम नहीं हो रहे हैं। ये प्रयोग हमारे नैतिक साहसको क्षीण करते चल रहे हैं, इससे समाजकी नींव दिनों-दिन क्षीण होती चल रही है। मिथ्या विचारोंका ताना-बाना इतना कमजोर और क्षणिक नहीं होता कि हमारी आत्माको वह न बांध सके, हमारे कार्योंको वे विचार न प्रभावित कर सकें। समय तो बल्कि ऐसा आया है, और हम इतने उलझे-से होते हैं कि उनसे निकलनेकी राह नहीं सूझती। अपने मिथ्या विचारों एवं मिथ्या आचरणोंसे हम जिस कुहासेको फैलाते हैं, उसमें हमारी अपनी ही आंखें ओझल होने लगती हैं।

तब उस सन्ततिपर, जनताके उस अंशपर विचार कीजिये, जिसने इन आचरणोंको सही समझनेकी मूर्खता की। उसके लिए राह कहां है?

और इसकी प्रतिक्रिया? व्यक्ति और समाजकी यात-नाओंकी संख्या, अवधि और परिधि बढ़ती ही जा रही है। समानाधिकार, स्वभाग्य-निर्णय, नागरिक अधिकार—न जाने कितने वर्षोंसे मनुष्यको भ्रममें डाले हुए हैं; पर इनसे उत्पन्न आशायें कभी भी कार्यान्वित न हो सकीं। राज-नीतिक गणतन्त्रकी कमर सर्वत्र आर्थिक असमानताने तोड़ डाली है और समाज तथा जीवनकी यह विषमता मनुष्यमें अपराधी मनोवृत्तिका ऐसा बीज वपन करती जा रही है, जो भीषण सम्भावनाओंसे भरा हुआ है।

तो सार्वजनिक जीवनकी यह भण्डता आज हमारे समाजके भीतर भीषण विषैले कीटाणु भरती जा रही है। हमारा नैतिक बल निरन्तर क्षीण होता जा रहा है और आत्माका कलुष इन मनोवृत्तियोंके आधारपर घटता नहीं, बढ़ता ही जा रहा है।

आजका युग और इस युगकी सभ्यता सर्वत्र इसी प्रकार-की विषैली सम्भावनाओंको लेकर चल रही है। और समाज सत्यका साक्षी है। किस देशमें किसी लक्षाधीशको एक सुयोग्य नागरिकको निर्वाचनमें मत देते देखा गया, जब कि ऐसे सैकड़ों सुयोग्य नागरिक और उनके हितैषी नेता भी उसकी उंगलियोंके इशारेपर नाचते देखे जाते हैं। व्यव-स्थापकोंने मताधिकारमें साम्यवादकी स्थापना कर दी; पर आर्थिक आधारोंने उसे कार्यान्वित होते ही तहस-नहस कर डाला। यह आर्थिक असमानता ही गणतन्त्रको ले डूबी और गणतन्त्रके डूबनेका अर्थ केवल एक राजनीतिक विचार-धाराकी पराजय-मात्र नहीं है, समस्त मानव-जातिके आन्तरिक सन्तोष और उसकी मङ्गलकामनाओंकी पराजय भी है।

हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें भी इसके असंख्य उदाहरण मिलेंगे। महिलाओंकी सभामें सार्वजनिक मञ्चसे कितने ही समाज-सुधारकोंको 'देवियों' को कर्म-क्षेत्रमें उतरने और पुरुषोंके साथ नये युगका निर्माण करनेका आह्वान करते आपने सुना होगा। पर्देके बहिष्कारके लिए, नारी जातिको घरकी चहारदीवारीके बाहर निकालनेके लिए, उसमें बल और साहस भरकर उसे अबलासे सबला बना-नेके लिए व्याख्यानदाताओंकी संख्या बढ़ती जा रही है, उनके उद्धारके लिए संस्थायें स्थापित होती जा रही हैं और पिछले बीस वर्षोंमें उनके लिए साहित्य-निर्माणकी योजनायें और प्रकाशन-संस्थायें भी बढ़ती ही गयी हैं, तुलसी, बिहारी, मतिरामके साथ-साथ शैली, वायरन, ब्राउनिङ्ग और कीट्सका मर्म समझानेके लिए महिला-शिक्षा-संस्थाओंकी भी वृद्धि रुकी नहीं है; पर उस महिलाके दुर्भा-ग्यकी कल्पना कीजिये, जिसने समाजके इन सारे प्रयत्नोंको

सही समझकर इधर कदम उठाया। विगत असहयोग आन्दोलनमें काम करनेवाली महिलाओंके सम्बन्धमें अपशब्द कहने और सन्देह :करनेवाले लोगोंकी कमी नहीं रही। भाई परमानन्दके उस वक्तव्य तथा उसपर उठनेवाले प्रतिवादको लोग भूलें न होंगे, जो उन्होंने अन्दोलनमें भाग लेनेवाली महिलाओंके सम्बन्धमें दिया था। लेकिन यह तो एक भाई परमानन्द थे, जिनकी वास्तवमें भूल यह थी कि उन्होंने जो कुछ सोचा, उसे स्पष्ट कह दिया, अन्यथा इस विषयको लेकर ऐसा मत रखनेवाले असंख्य परमानन्द इस देशमें हैं। कर्म-क्षेत्रमें काम करनेवाली महिलाओंको लेकर, पुरुषोंके साथ उनके साधारण सङ्घर्षको लेकर, आधुनिक सभ्यता सम्बन्धी उनके अग्रसर विचारोंको लेकर कानाफूसी करनेवालों और भीतरसे घृणा करनेवालोंकी संख्या इस देशमें कम नहीं है। और इस संख्यासे उन्हें भी अलग नहीं किया जा सकता, जो बाहर देवियों, नारी जातिके उत्थानके लिए अपनी वाग्धारासे जल-प्रपातको भी मात करना चाहते हैं। ये दुरङ्गी हरकतें हैं। और नारी-समाजपर इनकी कैसी प्रतिक्रिया होगी, इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन नहीं है।

इस प्रकारकी स्थितियोंकी जिम्मेदारी जिन बातोंपर है, वे या तो इस प्रकारकी भण्डताके अन्तर्गत आती हैं कि सोचा जाय कुछ और कहा जाय कुछ, और यह या तो इसलिए कि इससे हमारा स्वार्थ-साधन हो रहा हो, अथवा हममें इतना नैतिक बल न हो कि हम स्पष्टतापूर्वक अपनेको प्रकट कर सकें।

लेकिन जिम्मेदारी चाहे जिन कारणोंपर हो, इनके परिणाम समाजके लिए कभी भी अच्छे नहीं हो सकते। ऐसी जनता, जो अपने लिए स्वयं निर्णय नहीं कर सकती, ऐसी जनता, जिसके पास स्वयं निर्णय करनेकी क्षमता नहीं है, उसके समक्ष ये सब बातें भीषण परिणाम लेकर आती हैं। हमारे सार्वजनिक जीवनमें पिछले बीस वर्षोंसे जिस बहुमुखी क्रान्तिकी विचार-धारा बह निकली थी, उसकी इतनी सीमित सफलता केवल तत्सम्बन्धी होनेवाले प्रयोगोंको लेकर हमारे ढोंगके कारण हुई। गांधीजीने स्वयं कितनी ही बार सार्वजनिक जीवनकी इस भण्डतापर दुःख प्रकट किया था। वस्तुतः हमारा नैतिक धरातल अत्यन्त नीचा हो गया है। चरित्रका अर्थ हमारे यहां सिर्फ यौन-सम्बन्ध लिया जाता है। कोई कितना भी झूठ क्यों न बोले, छल-फरेब, जनताका शोषण कोई कितना भी क्यों न करे, दुरङ्गी चालोंसे कोई समाजको कितना भी क्यों न ठगे, समाजमें उसका स्थान फिर भी उस व्यक्तिसे अच्छा है, जिसमें यौन-सम्बन्धी थोड़ी-सी दुर्बलता है। हमारे देशमें जिसे पाश्चात्य सभ्यताके नामसे पुकारा जाता है, उसे कोसनेवाले लोगोंकी संख्या अनगिनत है और केवल इसलिए कि उस सभ्यताके अन्तर्गत नारी और पुरुषको स्वाधीनतापूर्वक मिलनेकी स्वाधीनता है, अतः चरित्रहीनता है ! हमारे यहांके इन 'महात्माओं'ने कभी भी यह सोचनेका कष्ट नहीं किया कि हजारों मील दूरसे आकर उसी सभ्यताके विलासी युवकोंने हिमालयकी चोटी नापी है, समुद्रोंके भीतर घुसकर उसके रहस्योंका पता लगाया है, अनन्त अन्तरिक्षमें उन्होंने प्राणोंका मोह छोड़कर हजारों मीलका विचरण किया है। शरीरको नश्वर और आत्माको अमर तथा अपनेको चरित्रमें महात्मा माननेवाले हमारे समाजके कितने व्यक्तियोंमें ऐसा जीवट स्वप्नमें भी आया है ?

सच तो यह है कि हमने आज अपना आत्मविश्वास खोया है, अपनी नैतिकता खोयी है और आध्यात्मिकतामें विश्वास करनेका हम चाहे जितना भी ढिंढोरा पीटें, हमारा दृष्टिकोण नितान्त स्वार्थमय हो गया है। समाजको ये बातें पुनर्जीवन नहीं दे सकतीं। आप एक ओर अस्पृश्यताका अस्तित्व वेदोंमें प्रमाणित करते रहेंगे और साथ ही चाहेंगे कि अछूतोंका उद्धार हो जाय ; एक ओर आप नारी-समाजको पुरुषोंके साथ कर्मक्षेत्रमें उतरनेका आह्वान करेंगे और साथ ही पुरुषकी छायासे ही उनके सतीत्वके नष्ट हो जानेकी आशङ्कासे दहल जायेंगे। एक ओर भावी सन्ततिके लिए नैतिकताके उपदेश झाड़ते रहेंगे और उसीके साथ छल और दम्भको भी अपने जीवनका मूल-मन्त्र मानते चलेंगे। यह सारी स्थितियां वाचा और कर्मणा, यह विभेद सामाजिक प्रतिक्रियाओंके लिए अच्छे नहीं होते। हमारे सामाजिक पुनरुद्धारका बहुत-सा कार्य इसके कारण ही रुका-सा पड़ा है। आवश्यकता है आजके :प्रश्नोंपर अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, सन्देहरहित, सजीव एवं नैतिक दृष्टिकोणकी।

———

किन्तु....?

श्री 'पहाड़ी'

फिर वही बात :

हरीशबाबू हाजिर हैं। और मन-ही-मन चाहे विश्वनाथ कितना ही झुंझलाये, चुपके बिस्तरसे उठकर पूछा, "क्या बात है।"

"घूमने नहीं चलोगे।"

"क्या बजा है?"

"सिर्फ साढ़े पांच।"

"तब यों क्यों नहीं कहता है कि आधी रात ही घूमने चलना पड़ेगा।"

"आठ बजे तक सोते रहना भी ठीक नहीं। किस डाक्टरकी बनायी दिनचर्याकी पाबन्दी हो रही है।"

विश्वनाथने कुछ भी जवाब नहीं दिया। उसे हरीशकी जिन्दादिली पसन्द है। डाक्टरोंके इञ्जक्शनोंसे कुछ फायदा हो चाहे नहीं, हरीशकी बातें स्वस्थ होती हैं। लेकिन जनवरी-के महीनेमें तड़के, सुबह कोई आकर कहे, घूमने चलो—यह निरा पागलपन है। जानकर भी विश्वनाथ चुप ही रह गया। तकरार बढ़ानेका वह आदी नहीं है। फिर भी सवाल करना जरूरी लगा, "आज यह सुबह-सुबह घूमनेकी सनक कैसे सूझी।"

"कल नुमायशमें सीता मिली थी।"

"वह मिली थी?"

"हां, शायद कहीं रिश्तेदारीमें आयी है। और आज सुबहकी डाकगाड़ीसे वह चली जावेगी।"

"तभी यह घूमनेका शुभ मुहूर्त तूने ढूंढ़ा है।"

"मैंने!"

"इसीके लिए बेवक्त मेरा भी फजीता किया। मजेकी नींद आ रही थी। सीता तो......।"

"मैं खुद परेशान हूं। कल नुमायशमें एक 'स्टाल' पर खड़ा था। सोचा, कहीं आवारोंमें नाम न लिख लिया जावे, इसीलिए खरीदारी करनेकी कुछ ठहरायी थी। सभ्य और भले आदमीके लिए यह हितकर है। तौलिये, बनियान और सूटिंगके कपड़े देख रहा था, कि एक हल्की हंसीकी आवाज कानोंमें पड़ी। सामने देखा, सीता कुछ औरतोंके साथ खड़ी है। उसने मुझे देखकर परदा कर लिया था। मैं अवाक् रह गया। तीन सालसे जिस सीताके बारेमें कोई ज्ञान नहीं, वह इस तरह मिलेगी, किसे उम्मेद थी। पहले थोड़ा सन्देह उठा। तो भी वह सीताका ही ढांचा था। साथ दो बच्चे। चेहरेपर कुछ गम्भीरता आ गयी थी। नीचे खड़ी लड़की न जाने क्यों बार-बार—भाभी, भाभी! चिल्ला रही थी।"

"और लड़का?"

"वह तो उस पांच सालके लड़केको गोदीमें लिये हुए थी। कान्तिको तो मैं पहचान ही गया। उसकी बड़ी-बड़ी आंखोंकी डेबलियां और चेहरा बिलकुल सीताका-सा ही है। लगा, वही सीताका बचपन भी कभी रहा होगा।"

"लेकिन हरीश, कई बार तूने सीताके न देखने तककी कसमें खायी थीं। पांच सालसे जो रिश्ता टूट गया, उसे जोड़ लेनेकी सामर्थ्य भी तुझमें नहीं है। परसों ही तू दलील कर रहा था—सीताके लिए तेरे दिलमें कोई भी विद्रोह बाकी नहीं। तू उस आडम्बरसे अपनेको बरी कर, कमजोर साबित हो, अकर्मण्य भी कहलानेका कायल नहीं......।"

"यह मैं भी इनकार नहीं करता। घटनाओंपर तो मेरा अपना अधिकार नहीं। हमेशा ही हममें झगड़ा बढ़कर, सम-झौता हो जाया करता था। एक दिनकी बात है। मैं उस दिन 'हिल-स्टेशन' छोड़नेवाला था। आठ-दस दिन वहां रहकर मन नहीं लगा। सीता भी उन दिनों अनमनी रही। कभी उसने बातें नहीं कीं। हमेशा छुप-छुपकर रहना सीख लिया था। जब मैं लारीकी अगली सीटपर बैठ गया और लारी चलने लगी, देखा मैंने—सीता अपने परिवारवालोंके साथ पिछली सीटपर बैठी हुई थी। कान्ति बार-बार मेरे पास आनेको मचलती। एक बार हिम्मत कर उसने पुकारा—चाचाजी। लेकिन एक चपत खाकर रोने लगी। सीताका श्वसुर भी कुछ नाखुश लगा।"

उसकी नाखुशी ठीक तो थी हरीश। तू ठहरा लोफर।

भले आदमियोंसे तुझे कुछ भी मतलब नहीं रहता है। और आदमीके लिए प्रेम करना एक साधारण घटना है, नारीका जीवन तो मिट जाता है न। पुरुषके खूनका आपेक्षिक घनत्व अधिक होनेकी वजह, नारीसे वह बलवान भी है ही। और तू तो......।"

"मैं हूं पशु और आवारा। दुनिया-भरका विद्रोह जैसे कि मैंने बटोर लिया है। जानता है, मेरी इस सारी उच्छृङ्खलताकी जिम्मेदारी किसपर है। क्यों मेरा मन स्वस्थ नहीं और इस तरह मारा-मारा फिरता हूं।"

"वही तेरी सीता।"

"बात ठीक है। सीताने मनमें भारी अविश्वास पैदा किया है। उसका विधवा हो जाना भारी भय पैदा करता था। पहले वह दिन-भर रोती रहती थी। लेकिन दो बच्चोंके बाद भी उसकी आंखोंमें यौवनकी भूख थी। हिस्टीरियाके दौरेका उपचार काफी कठिनतासे होनेके बाद, अपनी सभ्यतासे बाहर यदि पशुओंकी दुनियामें झांकता हूं......।"

"क्या, क्या?"

"पशु-जीवनका मनोविज्ञान, क्यों, डरकी क्या बात है। उनका भी एक सरल कानून है। मधुमक्खियोंका छत्ता देखो एक रानी होती है, कई नर और बाकी सब मजदूर। सबसे सबल मर्द राजा बनता है। बाकी नर मार डाले जाते हैं। एक दिन वह मर्द भी मर जाता है। रानी अण्डे देती है। मजदूर-मजदूरनीके आगे वासनाका सवाल नहीं होता। चिड़ोंकी आवाज सुनी है, मेंढकोंकी टेंटें, पक्षियोंके गाने—सब वासनाका तकाजा है। हरएक अपने स्वरसे अपनी जातिकी मादाको मोह लेना चाहता है। जानवरोंमें कुछ नरोंके सींग होते हैं, वह भी 'सेक्स' के सवाल हल करनेको ही हैं। सबसे बलवान हिरन और बारहसींगा कई पत्नियां रखते हैं। कमजोर मार डाले जाते हैं। हम सभ्य हैं, हमारे पुरुष-नारीमें सेक्स इसीलिए तेज होता जा रहा है।"

"तब मनुष्यमें तू एक नये धर्मका प्रचार करनेकी ठान रहा है।"

"नहीं-नहीं। सीताके भीतर एक लुभावनापन मैंने महसूस किया था। जब कि काफी जान-पहचानके बाद, एक रात्रि उस सीताने अपने मकानका दरवाजा खोल दिया था, तो मैं अचरजमें रह गया। वह क्या एक बावली नारी थी।"

"तब सीताका चरित्र!"

"नारीका चरित्र न? मैंने उसका सर्वदा विश्वास माना है। व्यर्थ एक विवाद चलाना अनुचित है। नारी इतनी कोमल नहीं, जितनी गणना पुरुष जातिने की है। सीताके लिए मेरे दिलमें हमेशा आदर रहा और आज भी उतना ही है। नारीकी कमजोरीका एक वहम कभी-कभी दिलमें जरूर उठता है। यह भी आज मैं जान लेना चाहता हूं कि क्यों सीताने उस आधी रातको अपने मकानका दरवाजा खोला था। तब मुझे दुनियाका कोई ज्ञान न था। अब सवाल पूछ लेनेवाली सामर्थ्य मुझमें है। इस बातको भी ऐलानिया कहता हूं, सीताने मेरी जिन्दगी बिगाड़ डाली। व्यर्थ मुझे दुनियामें फेंक दिया। कहीं भी मेरा मन नहीं लगता है। हमेशा एक बेचैनी और अड़चन घेरे रहती है।"

"और तेरी वह दूधवालेकी लड़की हरीश!"

"लच्छी! परसोंसे लापता है।"

"चली गयी?"

"हां, मेरे आगे परसों वह बड़ी देर तक रोती रही। कहती थी—अब मेरे बच्चा होनेवाला है।".

"बच्चा!" असमञ्जसमें मैं बोला था।

"सातवां महीना है।"

"भला मुझे महीनोंका क्या ज्ञान होता। कुछ न कह, सोचा कि कहीं नौकरी अब करनी ही पड़ेगी। उस बच्चेको देखनेकी भी बड़ी ख्वाहिश थी।"

"सात महीनेके बच्चेको लेकर वह क्यों भाग गयी। कहां अब मारी-मारी डोलेगी।"

"दो साल वह मेरे साथ रही। भारी अपमान और अपवाद मैंने उसके लिए सहा। एक साधारण नौकरानीकी हैसियतसे न रख, अपनी गृहस्थीके लायक उसे बनाया था। सीताने जब एक दिन दुतकार दिया था, मुझे कुछ भी नहीं सूझा। कालेजमें तब पढ़ा करता था। यह लड़की अपने बूढ़े बापके साथ दूध देने होस्टलमें आती थी। मैं उलझ गया। भविष्यकी कोई परवाह नहीं की। उसको साथ ले लिया था। फिर हम दोनों साथ रहे। अन्दाज था कि ताजिन्दगी साथ रहेंगे, किन्तु......?"

"किन्तु नहीं......। वह भी भाग गयी है, तब जाकर तुझे आज सीताकी याद आयी। क्यों हरीश, यह बात

क्या है । सीता एक गृहस्थीके भीतरकी नारी है और लच्छी तो……।"

"नहीं, नहीं—नहीं । तुलना करनेका मुझे कोई भी अधिकार नहीं है । कल नुमायशमें सीताको खड़ी देखकर, एकाएक ख्याल आया कि सीताके अलावा कोई भी मेरी नहीं है । हमारे बीचवाला समझौता सही था । सीता भले ही विधवा हो, उसे मैं अपनी सगी गिनता हूं । इसके लिए सीता और मैंने समाजकी आज्ञा नहीं मांगी । सिर्फ एक रुकावट थी । सीताका पति दो बच्चे सीताको सौंप गया था । यदि वे दो बच्चे नहीं होते, मैं सीताको अपनी गृहस्थीमें फुसला लाता । हम दोनों एक ठीक-सी गृहस्थी चालू करते । न मैं दुनियामें इस तरह मारा-मारा डोलता, न सीताको छुप-छुपकर चलना लाजिम था । एक दिन सीतासे मैंने अपनी इस गृहस्थीकी बात कही थी ।"

"क्या बोली वह ?"

"कुछ नहीं—कुछ नहीं । स्तम्भित रह गयी थी, चुपचाप बड़ी देर आंखें फाड़-फाड़कर मुझे देखकर, घूरते कहा था—'पापी हो तुम । अन्यथा ऐसी बातें नहीं गढ़ते ।' मैं बात कहां पकड़ पाया था ।"

"चाहते होगे इस शरीरपर कब्जा करना । पुरुष हो न । लेकिन हमारी असमर्थता दैविक है । यह सब सोचते-सोचते, क्यों तुम दुनिया-भरकी बातें मन-ही-मन गढ़ा करते हो ।"

"कब कोई बात मैंने सोची है ।"

"तब यह इतनी बातें क्या कह रहे थे । मेरी गृहस्थी—विधवाकी ! राम-राम, ऐसी बात आगे मत कहना । दुनिया-के आगे सीधा मुंह खड़े रहने देनेका इरादा भी तुम्हारा नहीं है । दो बच्चे हैं । मुझे और क्या चाहिए । भगवान बच्चोंको बचा ले, बहुत है ।"

"विधवाके इस ब्रह्मचर्यपर मैं अवाक् रह गया था । पतिकी याद कर बड़े-बड़े आंसू उसके ढुलक गये थे । स्तब्ध कुछ देर मैं बैठा-का-बैठा रह गया था, कि तभी कान्ति आयी और बोली—चाचाजी ।"

"क्या है बेटी ?"

"बिलायती मिठाई नहीं लाये हो ।"

"भूल गया ।"

"रोज भूल जाते हो । अच्छा, हमारे चाचा तुम नहीं हो ।"

"कितनी मिठाई खावेगी,-सीता बोली थी । और कान्ति मांके डरसे, मुझसे चिपट गयी थी । तभी मैंने कान्तिसे पूछा था—कान्ति, तू सबसे ज्यादा किसे प्यार करती है ?"

"तुमको ।"

"सीताको नहीं ।"

"कान्तिने एक बार अपनी मांकी ओर देखा और फिर सिर हिलाकर इन्कार किया । मैंने कान्तिको उसकी मांका नाम कहना भी सिखला दिया था । वह मेरे आगे मांको सीता कहती थी । सीता फिर भी चुपचाप मलिन बैठी रही । जैसे कि उसका भीतरी विद्रोह सुलग चुका हो । कई बार वह अनमनी हो उठी और कपड़े संभालने लगी । एक बार वह कुछ मुझसे कहनेको भी पास आयी और फिर चली गयी । कोई भारी अड़चन जैसे कि बीचमें मैंने डाल दी थी । इस भारी चुप्पीसे मैं भी ऊब बैठा । पूछा-कान्ति, तू मेरे साथ चलेगी ।"

"कहां !"

"चाचीके पास ।"

"चलूंगी ।"

"और सीता ।"

"वह नहीं जावेगी । मुझ मारती है ।"

"तभी सीता हंस पड़ी थी । बोली—कहां है री तेरी चाची ?"

"देश ।"

"तब चली जा ।"

"खुशी फिर भी सीताके मनमें नहीं आयी । चेहरेका रङ्ग उड़ गया था । मैंने गृहस्थीकी उस व्यवस्थाको सौंपकर जैसे कि भारी दुःख और पीड़ा उसे पहुंचायी हो ।"

"हरि, क्या इस तरह, सीताकी लड़कीकी मार्फत, उसके जीवनमें तू पागलपन फैलाना नहीं चाहता था ।"

"मैं ! क्या ? कान्ति और सीता दोनोंको आपसमें मैं खुद पास-पास बैठाना चाहता था । जानकर कि सीताकी भारी एक जरूरत वह लड़की थी । उसे संवारनेमें ही सीता अपनी सारी बुद्धि और वक्त भी खर्च करना जान गयी थी । तब बेबी बहुत छोटा था—शायद छः-सात महीनेका ।"

"नुमायशमें कान्तिको पास बुलाकर, तूने प्यार करना नहीं चाहा ।"

"कान्ति बच्ची है । भूल गयी है । और आश्चर्यकी बात

तो यह है, कि सीताने मुझे देख, औरतोंकी ओट ले ली थी।"

"तब तुझे कैसे मालूम हुआ कि वह कल जा रही है।"

"मैंने उसकी बातें सुन ली थीं। सीता अपनी किसी सहेली-से यह कह रही थी।"

"तब तो मैदान फतह कर लिया।"

"कुछ भी बात समझमें नहीं आती है। उस दिन जब मैं जानेको था, सीता बोली—रातको आओगे। तुम्हारी गृहस्थीकी बातपर विचार करना पड़ेगा।"

"सीताने कहा था?" विश्वनाथने हरीशको घूरा।

"सीताकी उदासी मुझे डस गयी थी। मैं सीतासे माफी मांग लेना चाहता था। कसूरवार तो था ही। और आधी रात को सीताने बुलाया था। सीता पीली पड़ गयी थी। उसका सारा चेहरा धुला हुआ था। सुफेद धोतीमें वह थी। उसका आभूषण-हीन मुंह देख मैं डर गया। मैं मेजसे लगी कुर्सीपर बैठ गया था। सीता पलंगपर लेटकर, बच्चेको थपथपाती रही। मैं चुप अवाक् था। सीताको देखनेका साहस न हुआ। आधी रात। सीताके इस करतबपर बार-बार डर जाता था। तभी सीता बोली—'गलतफहमी हममें हुई है। मैं अपनी इस गृहस्थीसे सन्तुष्ट हूं। तुम पुरुष हो, सबल हो।' अनायास उसकी आंखोंसे आंसू बहने लगे। मैं ऐसी स्थिति-से परिचित नहीं था। मैंने सीताको कुछ भी नहीं समझाया। वह सीता आखिर मुझसे क्या चाहती थी। क्या मेरा उससे सरोकार था। मैं उसका एक साधारण परिचित था। रिश्ते-वाली कोई भी हैसियत मेरी अपनी निजी नहीं थी। उसकी पीड़ाका अन्दाज अक्सर लगाया करता था। कुछ भी मैं बोला नहीं। चुपचाप सीढ़ियोंसे नीचे उतर गया था। नीचे-से मैंने देखा था कि सीता अपने जीनेमें खड़ी है—वह खड़ी ही रही।"

"बिलकुल नयी उलझन है!"

"इस सीताने ही मुझे पंगु बनाकर जीवन चलानेको मज-बूर किया। अपने उत्तरदायित्वको भूल गयी। उसे शायद यह मालूम नहीं कि मेरा अपना निजी कोई भी व्यक्तित्व नहीं है। मैं तो निपट चुका हूं। कुछ शरीरपर प्राणोंका मोह है, इसीलिए जीवित हूं, अन्यथा कोई भी उत्साह नहीं। आज किसी 'अपने' के पास पड़े रहनेको दिल तड़पता है। दुनिया और दुनियादारीसे ऊब उठा हूं। कहीं ठहरनेको मन नहीं करता। कुछ भी ठीक नहीं लगता। कोई अपना ऐसा नहीं, जिसे सारी बात सौंप निश्चिन्त रह सकूं। यदि सीता जरा सावधान हो चाहती, मैं ऐसा नहीं होता। मैं इतना निकम्मा नहीं था। फिर भी......।"

"हरीश, सीताको कोसना भी ठीक नहीं होगा। कौन जाने, वह क्या-क्या भुगत रही हो।"

"सीताने ही अपना वादा पूरा नहीं किया। उसने हमेशा अपने सुख-दुःखके हाल चिट्ठीमें लिखनेका वादा किया था। वह भूल गयी। मैंने कई चिट्ठियां डालकर याद दिलायी, फिर भी कोई जवाब नहीं मिला।"

"शायद उसे मौका नहीं मिलता हो?"

"मौका, झूठ बात है। वह खुद नहीं चाहती। उस दिन वह 'हिल-स्टेशनसे' साथ-साथ लारीमें आयी थी। स्टेशनपर कहा था उसने—मुझे चिट्ठियां मत लिखा कर, मैं जवाब नहीं दूंगी।"

"और तुमको बात लग गयी।"

"क्या करता मैं। दिलकी पीड़ा बढ़ गयी थी। सीताके उस अन्यायने मुझे निर्जीव बना डाला। उन्हीं दिनों लच्छी दूध देने होस्टल आया करती थी। उसकी शोहरत भी थी। लच्छी मेरे साथ रहनेको तैयार हो गयी। मैं कुछ क्या करता। साथ अपने उसे कर लिया।"

"सीता जानती है?"

"उस 'हिल-स्टेशन' के बच्चे-बच्चेको मालूम है। यह चर्चा हरएकके कानमें पड़ी। मेरी इस आवारागर्दीपर सारा समाज नाखुश हो गया। उस सबकी परवाह न करके भी मैंने सोचा था, हमेशा लच्छीके साथ रहूंगा। इन दो सालोंमें मैंने लच्छीको सब काम-काज भी सिखला दिया था। वह हर तरह घरके भीतर-बाहर निभने लगी थी। उस होनेवाले बच्चेके साथकी जिम्मेदारीके लिए भी मैं तैयार था।"

"तब वह भाग क्यों गयी।"

"खुद मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। उसके मनकी बात मैं कभी निकाल नहीं सका। लच्छीको हर तरह खुश रखने-की कोशिश मैंने की, फिर भी वह चली गयी। बातका कुछ भी अन्दाज मैं नहीं लगा सका हूं।"

"उसकी खोज:की।"

"सब जगह ढूंढ़ आया हूं।"

"तब ?"

"वह यह कहती थी कि उसकी शादी एक जगह तय हो चुकी है। उसकी ससुरालवालोंने उसके लिए गहने बनवाये थे। उन गहनोंको भी कई बार उसने पहना था। उन गहनों-की एवजमें काफी रुपये देकर मैंने उसे साथ रखा था। वह अपने होनेवाले भावी पतिका मखौल भी कई बार मेरे आगे उड़ाया करती थी। एक-एककर उसके गहने बेचनेकी मजबूरी मेरे आगे आयी। वह नाखुश रहने लगी। कितना ही उसे समझाता, कि मां-बापके खुश होते ही लाखोंकी जायदादकी मलकिन वह बन जावेगी। फिर भी गहनोंका अफसोस वह अपने मनसे नहीं हटा सकी। परसों वह कुछ झगड़ पड़ी थी। उसकी झेंवरियां बेचकर जब लौटा, तो वह बोली—मैंने गलती की, जो तुम्हारे साथ भाग आयी। वहां होती, यह सब देखना नहीं होता।"

"तब वहीं क्यों नहीं चली जाती।" मैंने मजाक किया।

'चली जाऊंगी। क्या आंखें दिखलाते हो।'

"अधिक बात मैंने नहीं की। बाहर आकर बहुत सोचा और तय पाया कि हमारी सामाजिक व्यवस्था एक दिन कड़ी नहीं रहेगी। पशुओंकी तरह अन्त होगा। जहां न गृहस्थ है, न कोई कानून। सिर्फ अपने आगेकी सृष्टिके लिए, वहां नर और मादाकी गणना है। उसके भीतर न स्वार्थ है, न कोई और तत्व। हमारा ज्ञान और यह इतनी सारी व्यवस्था गलत ही न साबित हुई। पशुओंमें न अपना है, न पराया। सारा धन्धा-रोजगार-सा नहीं है कि आड़की जरूरत पड़े। वह सारी बुद्धि मैं पा लेना चाहता था। नहीं तो लच्छीको इस तरह चला जाना नहीं होता, न उसे अपनी गृहस्थीमें रख लेनेवाला स्वार्थ ही पैदा होना जरूरी रह जाता। तुम्हीं सोचो कि बेकार हमारी सभ्यताने नारी-का मूल्य बढ़ा दिया है। इसीलिए तो एक वेश्या कीमतकी भूखी होती है।"

"क्या-क्या ? हरीश क्या कहते हो। लच्छीवाला बर्ताव और सीताका, कुछ ऐसा नहीं कि हरएकपर लागू हो। न इन सारे चालू सामाजिक नियमोंकी विवेचना करनी ही ठीक होगी।"

"नहीं जानते तुम, लच्छी कहां चली गयी है।"

"अपने पिताके घर। और जायेगी कहां। छोटे घरकी लड़की ठहरी। उसकी दूसरी शादी हो ही जावेगी। यह तो उनके यहां मामूली बात है।"

"तुम्हारी यह धारणा गलत है। वह अपने उस आदमी-के पास गयी है, जिससे उसकी शादी तय हुई थी। मेरे साथ चले आनेके बाद भी, उसका ख्याल वह भूल नहीं सकी। हम लोग ठहरे सभ्य श्रेणीके लोग। उसे अपनेसे मेल खाते व्यक्तित्वकी जरूरत थी। मेरे बाहरी टीमटामवाले व्यक्तित्व-पर अधिक दिनों तक वह रीझी नहीं रह सकी। एक दिन मां बन जानेपर, अपना अपराध उसे ज्ञात हो आया। यह भी वह समझी कि भावुकताकी वजह एक गलत आदमीका आश्रय उसने लिया है। अब उस सही आदमीके पास जाकर वह माफी मांग लेगी।"

"माफी ?"

"उन लोगोंमें सहृदयताका बर्ताव होता है। वहीं उसे जगह मिलेगी। और अपने आदमियोंके बीच रहकर, उसे खुशी भी होगी।"

"क्या ?"

"तुम शायद यह नहीं जानते होगे कि उसको बचपनसे गाय-भैंसोंका ज्ञान था। गायें के तरहकी होती हैं। कौन घास किस मौसममें दी जानी चाहिए। यदि उनको यह बीमारी होगी, कौन-सी दवा दी जानी चाहिए। उस समाजकी बातें किताबोंमें नहीं मिलती हैं। कई बार उसने एक गाय पालने-की चाह प्रकट की। वह सब काम निभा लेनेको कहती थी। अपने भावी पतिके गाय-भैंसोंकी तादाद भी उसे मालूम थी। उन पशुओंपर उठते, उसके दिलके कुतूहलका कोई भी जवाब मेरे पास नहीं था। मैं कभी-कभी ऊब जाता। उसके असन्तोषको जानकर भी चुप रहना सीखा था। यह पर-वशता थी। पहले एकाएक वह बहाना पा मेरे साथ चली आयी। जब उसने सोचना शुरू किया, अनुचित मेरा साथ लगा। मैं अपनी किताबें व अखबार पढ़ा करता, वह अपनी गाय-भैंसोंवाली दुनियामें लीन रहती थी। और अवसर पाकर ही......।"

"हरि-हरि......।"

"क्यों, क्या बात है।"

"और वह बच्चा ?"

"बच्चा तो होगा ही। इसे अपवाद वह समाज नहीं

गिनता। वहां पुरुष और नारी दोनोंका कसूर यह गिना जाता है। लच्छीका मान नहीं घटेगा, वह बचपनकी गलती आगे जीवनमें तुफैल बनकर खड़ी नहीं होगी। वे कड़ा बर्ताव नहीं बरता करते हैं। वह पति भी लच्छीको पाकर फूला नहीं समावेगा। एक व्यर्थके नैतिक ढोंगकी परवाह वे नहीं किया करते हैं। चलोगे स्टेशन ?"

"स्टेशन !"

"सीताको देख आवें।"

"हरीश।"

"विश्वनाथ, सीताको देखनेके बाद तुम मुझे सही-सही समझ सकोगे।"

"तुम्हारी सीता और लच्छीको तुमसे सुनकर ही तसल्ली हो जाती है। वे जिन्दा रहें—चिरकाल तक।"

"मौत तो सिर्फ तुमको आवेगी। और तो सब अमर हैं न।"

"तू स्टेशन जावेगा।"

"जरूर-जरूर। तुम भी चलो। सीतासे सारी बातें पूछूंगा। बहुत कुछ उसे समझाना भी है। लच्छीकी बातें भी उसे सुनानी हैं। यह सरासर धोखा उसने दिया है।"

"धोखा !"

"तब क्या यह है।"

"खैर, सीता तुमसे बातें करेगी।"

"मैं उसके आगे खड़ा होकर सवाल पूछूंगा। सब्र मुझे नहीं है।"

"लेकिन हरीश।"

"क्या—क्या विश्वनाथ !"

"यह पशुओंका समाज नहीं है।"

"होने दो।"

"यहां कायदे-कानून हैं।"

"और लच्छीका समाज ?"

"जाने दे उसे। क्या तुझे स्टेशनपर देखकर सीताको खुशी होगी।"

"तो कहनेकी जरूरत क्या थी कि वह उस गाड़ीसे जा रही है।"

"वह चाहती थी कि तुम स्टेशन आओ, लेकिन डर गयी। वह असहाय है। उसके अपने हाथमें कुछ नहीं है। कान्ति बीमार रहती है। उसे 'लीवर' की बीमारी है। वह लड़का भी बहुत कमजोर है।"

"क्या विश्वनाथ ? तुम कैसे जान गये हो।"

"कल 'वाइफ' से उसने सारी बातें कही थीं।"

"भाभीसे ?"

"तुम्हारी भाभी तुम्हारी सारी दास्तान जानती है। मैं उससे कह चुका हूं। कल वहां बैठने भी वह गयी थी।"

"क्या कहा था सीताने ?"

"अपना ही दुखड़ा रोती रही।"

"फिर——।"

"यह भी कहा कि वे शादी कर लें। इस तरह मारे-मारे फिरना अनुचित है।"

"क्या ! वह ऐसा नहीं कह सकती है। झूठ बात है। केवल एक दिखलावा है।"

"सच सब कुछ है। उसने हाथ जोड़कर कहलाया है कि तुम स्टेशन मत आना।"

"मैं तो जाऊंगा।"

"जानेसे मैं रोकता नहीं हूं......।"

"वही समाज, वही सब कुछ, किन्तु......?..."कहकर हरीश चुपचाप कुर्सीपरसे उठ खड़ा हुआ। उसका चेहरा मुर्देकी तरह सुफेद पड़ गया था।

———
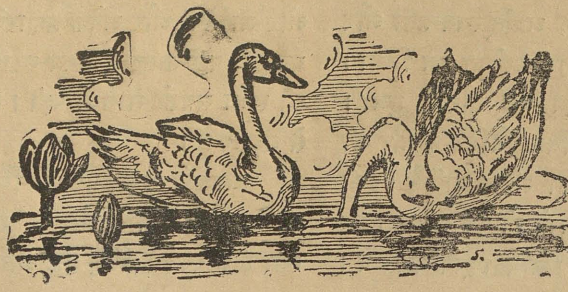
सामाजिक और राजनीतिक

श्री विष्णु

आज हम शङ्काके युगमें रहते हैं। अडिग और अखण्ड श्रद्धा किसीमें नहीं है। हर वस्तु और हर कार्यके पहले एक बहुत बड़ा 'क्यों ?' और 'कैसे ?' हम देखते हैं। यह जागृति है अथवा पतन, इसपर भी विवाद हो सकता है और विवादका होना यही सूचित करता है कि दोनों अवस्थाओं (जागृति अथवा पतन) की सम्भावना है। प्रश्न होने न होनेका नहीं है, बल्कि माप और सीमाका है; लेकिन इतनी बुद्धि मानवमें नहीं है, इसी कारण विश्वमें सङ्घर्ष हुआ है और अनादि काल तक होता रहेगा।

यही समस्या सामाजिक अथवा राजनीतिक क्रान्ति (या सुधार) के सम्बन्धमें विचार करते समय सामने आ जाती है। लेकिन यह केवल बुद्धिका प्रश्न नहीं है। इस प्रश्नका अप्रत्यक्ष कल्पनासे भी कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारे युगकी अथवा भूतकालकी जो घटनायें हमारे सामने हैं, उन्हींके आधारपर इसका सहज निर्णय हो सकता है।

समाजका अर्थ है समूह, यानी व्यक्तियोंके समूहका नाम समाज है। काल, देश, जाति और धर्मके अनुसार व्यक्तियोंके अनेक समाज हैं। समाजके सङ्गठनके लिए नियम और विधान भी हैं। जो भी वस्तु अस्तित्वमें आती है, उसका आधार अवश्य होता है, नहीं तो वह जी न सकेगी। इसीलिए मानवने जिस दिन समाजका निर्माण किया, उसी दिन उसके जीवनके लिए व्यवस्था भी की। न जाने कब और कैसे पुरुष और स्त्रीका प्रथम मिलन हुआ ? इसी प्रथम मिलनपर समाजकी नींव खड़ी है। मानव मूलतः स्वतन्त्र और स्वार्थी जीव है। प्रत्येक पुरुष और स्त्रीने अपनी-अपनी स्वतन्त्रता और स्वार्थका कुछ भाग समाजको दिया, अर्थात् स्वतन्त्रता और स्वार्थका आपसमें साझा करके उपयोग करनेका प्रण किया। प्रारम्भिक दशामें यह बिलकुल स्वाभाविक तौरपर हुआ। पुरुष जानता था, स्त्रीमें उसका आनन्द निहित है और स्त्री जानती थी, पुरुषके बिना अब उसका जीवन नहीं है। इसी कारण दोनों अपने-अपने स्वार्थको अपने ही एक बड़े स्वार्थके लिए छोड़कर एक-दूसरेका काम भी प्रसन्नतापूर्वक करते थे।

मानवने अपने सुख और सद्भावनाके लिए अपनेको समाजके बन्धनमें डाला था, लेकिन उसका यह स्वप्न पूरा नहीं हुआ। मानवके आन्तरमें, जिसे मन कहते हैं, तीन गुणोंका मिलन है—सत, रज, तम। जिस प्रकार जीवनकी रक्षा करनेवाली वायुमें आक्सिजनके साथ-साथ नाइट्रोजन और कार्बोलिक ऐसिड गैस भी है, उसी प्रकार मानवके मनमें सतके साथ रज और तम भी है। जब तक इन गुणोंकी मात्रा ठीक रहती है, मानव और मानव द्वारा निर्मित समाज ठीक रहता है। जिस समय किसी एककी कमी या ज्यादती हो जाती है, उसी समय जीवनका सन्तुलन गिर जाता है। सन्तुलनका गिरना समाजमें अव्यवस्था पैदा कर देता है और इसी अव्यवस्थाको दूर करनेके लिए सुधार या क्रान्तिकी जरूरत है।

विकासके प्रारम्भिक कालमें ऐसा ही हुआ। असन्तुलित समाजमें व्यक्तियोंके स्वार्थ टक्कर खाने लगे। उस समय जो इस टक्करसे ऊपर उठे, उनके मनमें इसे दूर करनेके विचार पैदा हुए। ये ही विचार कालके साथ-साथ अनेक नियमोंमें बदल गये। विवाह, वर्ण, स्त्री और पुरुषके अधिकार, कुटुम्ब आदि संस्थाओं और अधिकारोंका जन्म इसी टक्करसे बचनेका विचार था। धीरे-धीरे और अनन्त वर्षोंमें जाकर ये प्रणालियां विकसित हुईं। इनमें निरन्तर परिवर्तन भी होता रहा। फिर एक समय आया, जब मानवके स्वाभाविक गुणोंका सन्तुलन यहां भी गिर गया। आखिर मनुष्यने ही तो इन नियमोंका विधान किया था। सन्तुलनके बिगड़नेपर संस्थायें दूषित हो गयीं। अनेक प्रकारके विवाह, नाना वर्ण और जातियां और अनेक प्रकारके नियम शक्तिशाली पुरुषोंने बनाये। पशु-जगत्‌के मत्स्य-न्यायके आधारपर शक्तिशालीकी सत्ता सबको माननी पड़ी। मानव भूल गया कि वह पशुसे बढ़कर है।

समाजको इस प्रकार विकारग्रस्त होते देखकर कुछ सात्विक मनुष्योंके मनमें द्वन्द्व चलता रहा और उन्होंने व्यवस्था ठीक रखनेके लिए कुछ और नियम बनाये। ये अप्रत्यक्ष

शक्तिके आधारपर थे। उनका सम्बन्ध स्वर्ग और नरकसे था। नियमका पालन करनेसे स्वर्ग मिलेगा, यह प्रलोभन मानवको दिया गया और नियमका उल्लङ्घन करनेपर नरकका भय दिखाया गया। पूजा, अनुष्ठान, व्रत और यज्ञ इन सबका आधार यही समाज-सुधार था; परन्तु अप्रत्यक्ष मन चिरस्थायी तो नहीं होता। शक्तिशाली मानवने प्रत्यक्षके सामने अप्रत्यक्षको भुला दिया। पूजा, अनुष्ठान, व्रत और यज्ञ आदि विधानोंके अर्थ उसने अपने स्वार्थके लिए लगाये और उनको इस विधिसे सञ्चालित किया कि वे उसीका स्वार्थ सीधा कर सकते थे। विश्वके इतिहासमें वह समय प्रत्येक देश और जातिमें आया, जब धर्मके नामपर रक्तके सागर बहाये गये, धर्मके नामपर मानव-जीवनके साथ होली खेली गयी। उसी धर्मके नामपर, जो मनुष्य और मनुष्य-समाजको विकार-रहित करनेके लिए था।

ऊपर हमने देखा कि समाज और धर्मके नियमको पालन करानेके लिए कुछ मनुष्योंके हाथमें शक्ति थी। यह शासन-प्रणालीका बीज था, यद्यपि आगे आनेवाली राज-व्यवस्थासे यह अवस्था भिन्न थी; क्योंकि इसकी नींव सतोगुणपर आश्रित थी। सामाजिक और धार्मिक नियमोंका सम्बन्ध बहुत करके मनुष्यके आन्तरिक जीवनसे था। वाह्य जीवनकी रक्षाके लिए भी कुछ नियम मानव-समाजमें प्रचलित थे। किसी न किसी रूपमें एक वर्ग, जिसका काम नागरिक व्यवस्था करना था, प्रत्येक मानव—भूखण्डमें पनप रहा था। कालान्तरमें धर्म संस्थाके दूषित हो जानेपर इसी राजनीतिक शक्तिने समाजकी व्यवस्थाका अधिकार लिया। यह अधिकार बलप्रयोगके आधारपर था। यहां मनुष्यके आन्तरिक गुणोंसे अपील नहीं की जाती थी, न अप्रत्यक्ष शक्तिका भय या प्रलोभन था। इस बलप्रयोगको व्यवहारिक रूपमें लानेके लिए न्याय, कानून और दण्ड-व्यवस्थाकी सृष्टि हुई। न्यायने कहा—'मनुष्य स्वतन्त्र है। उसे जीनेका हक भी है। एक मानव दूसरेपर अधिकार नहीं कर सकता। जो मानव नियमोंका पालन नहीं करेगा, वह दण्डका अधिकारी होगा।' यह बात देखनेमें बड़ी सुन्दर थी; परन्तु मानवके आन्तरिक इतिहासने फिर अपनेको दुहराया। शक्ति-सम्पन्न मानवने कानूनके मनमाने अर्थ लगाये और जो कमजोर थे, उन्हें पनपनेका हक नहीं दिया। उन्हें नष्ट कर दिया अथवा सिसकनेको जीता छोड़ दिया। इस प्रकार न्यायके मूल सिद्धान्तकी हत्या कर दी गयी। प्रो० हेरल्ड लास्कीके शब्दोंमें हम मान लेते हैं कि "शासन करनेवालोंमें बुद्धिमत्तापूर्वक या न्यायपूर्वक काम करनेकी इच्छा होती है; परन्तु जिन-जिन लोगोंका जीवन भिन्न-भिन्न प्रकारका है, वे विचार भी भिन्न प्रकारसे करते हैं और समष्टि रूपसे समाजके हितसाधनके लिए कौन-से विधि-निदेश अन्ततः अभीष्ट हैं, इस समस्यापर विचार करनेके लिए प्रत्येक वर्ग अपने मस्तिष्कके भीतर कुछ अस्पष्ट और अर्धसंज्ञात तर्क रखता है और उसी दृष्टिसे विचार करता है।...हम सब अपने अनुभवोंके बन्दी हैं।" तब यह बुद्धिमत्ता और न्याय विभिन्न मानव—वर्गोंके अनुभवकी ढाल लेकर आपसमें टकराते और समाजको नष्ट करते रहे।

ये सब बातें शीघ्रतासे नहीं घटित हुईं। धीरे-धीरे अनन्त वर्षोंमें ये परिवर्तन हुए। मानव जान भी न पाया और जहां उसने जाना, वहीं विरोध और क्रान्तियां हुईं। इन सब बातोंका सिलसिलेवार संक्षेपमें वर्णन करनेका मतलब केवल यही है कि धार्मिक हो अथवा राजनीतिक, प्रत्येक सत्ताका उदय समाजका सुधार करनेके लिए हुआ था। वे स्वतन्त्र रूपमें कुछ भी नहीं हैं। धर्म तो ईश्वर और मानवके बीचकी वस्तु है। समाजका उससे कुछ भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। इसी प्रकार नागरिक व्यवस्थाको नियन्त्रित करनेवाली राजनीतिक सत्ताकी मौलिक महत्ता भी कुछ नहीं है। लेकिन ऐसा कहकर राजनीतिक शक्तिको हटाया नहीं जा सकता। वह तो आत्महत्या करना होगा। मानवके पास शरीर और आत्मा दोनों हैं। एकके बिना उसका अस्तित्व नहीं है। समाज-नीति मानवकी आत्मा है और राजनीति शरीर। सुन्दर और स्वस्थ शरीरमें आत्माका निवास होता है। शरीरके अशक्त हो जानेपर आत्मा क्षीण हो जाती है। दूसरी ओर जब आत्मा मलीन हो जाती है, तो शरीर स्वयं दुर्बल हो जाता है। पौष्टिक भोजन भी उसे जीवन नहीं दे सकते। जिसकी आत्मा मलीन नहीं हुई है, वह आंख खुली रखकर शरीरको स्वस्थ और सुन्दर बना सकता है, लेकिन जिसकी आत्मा मर चुकी है, वह शरीरकी रक्षा नहीं कर सकता। यह दोनोंका भेद है। इसीको लक्ष्य करके शायद फर्डिनेण्ड लासेल ने लिखा है—"शासन-पद्धति-सम्बन्धी प्रश्न मुख्यतः अधिकारके प्रश्न नहीं, वरन् शक्तिके प्रश्न होते हैं। किसी

देशकी वास्तविक शासन-पद्धतिका अस्तित्व उस देशमें पायी जानेवाली शक्तिकी वास्तविक दशामें ही होता है। इसीलिए राजनीतिक रचनाओंका मूल्य और स्थिरता तभी होती है, जब वे समाजमें कार्यतः विद्यमान शक्तियोंकी अवस्थाओंको ठीक-ठीक प्रकट करती हैं।" इसीलिए जो भी शक्ति अपनी सफलता चाहती है, उसे पहले समाजकी शक्तिको माप लेना जरूरी है। जिन देशोंने गुलामीके बन्धन तोड़े हैं या विश्वमें सिर उठाया है, उन्होंने प्रथम इसी सामाजिक शक्तिका सञ्चय किया था। इतिहासके पन्नोंमें ऐसी अनेक घटनाओंका वर्णन आया है। अरब जातिकी अद्भुत राजशक्तिका कारण हजरत मुहम्मदका मुसलमानी मत था, जिसने उस क्षीण जातिमें सामाजिक क्रान्ति पैदा करके उसे ऊपर उठा दिया। इंगलैण्डने प्यूरीटिनिज्मके द्वारा राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। जर्मनीमें लूथरने जो सुधार-घोषणा की, उसने आगे बढ़कर समस्त यूरोपमें राजनीतिक उथल-पुथल मचा दी थी। रूसमें भी महात्मा टाल्स्टायके विचार राजक्रान्तिके लिए एक बड़ा साधन बने थे। भारतमें भी अभी-अभी ब्रह्मसमाज और आर्यसमाजकी सामाजिक क्रान्तियां-कांग्रेसको राजक्रान्तिके लिए मैदान तैयार करनेके लिए ही हुई थीं। पुरातन भारतमें तथागत बुद्धकी सामाजिक क्रान्ति की नींवपर चन्द्रगुप्त और अशोकके महान् साम्राज्य स्थापित हुए थे। गुरु नानककी सामाजिक विचार-धारा गुरु गोविन्दके समयमें अद्भुत राजनीतिक शक्तिका कारण बनी। महाराष्ट्रमें शिवाजीकी राजक्रान्तिसे पहले महाराष्ट्र साधु-सन्त समाजकी आत्मा जगा चुके थे।

(२)

इस समस्यापर दूसरे पहलूसे विचार करना उचित होगा। ऊपर हम कह चुके हैं कि राजनीतिक शक्तिका विकास सामाजिक जीवनको नियन्त्रित रखनेके लिए हुआ था। राजतन्त्रमें समाजपर विधि-निर्देश द्वारा नियन्त्रण रखा जाता रहा है, उसमें समाजके रोगोंको समूल दूर करनेका कोई उपाय नहीं होता। समाजमें ऐसे अनेक रोग हैं, जिनपर राजशक्तिका अधिकार ही नहीं होता। राज्य यह तो कह सकता है कि विधवा स्त्रीका उत्पन्न पुत्र नाजायज है; पर वह यह नहीं कह सकता कि विधवा स्त्रीको विवाह करनेका उतना ही अधिकार है, जितना कुमारीको। वह एक भङ्गीको ब्राह्मणके स्थानपर बैठानेका अधिकार नहीं देता। वह एक वैश्य पुरुषसे ब्राह्मण नारीमें उत्पन्न पुत्रको पिताकी जायदादपर अधिकार नहीं जमाने देगा, क्योंकि पुत्र अवैध है; परन्तु राजसत्ता यह नहीं कर सकती कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भङ्गी इन सबमें गुणकर्मानुसार विवाह आवश्यक कर दे। ऐसी अनेकों बातें हैं। तब यह स्पष्ट है कि राजसंस्थाके अधिकार सीमित हैं और उनका वास्तविक विधायक समाज है। समाजमें जो शक्तिशाली थे, उन्होंने कुछ नियम बनाये और स्वनिर्मित राजसंस्थाको सौंप दिये कि वह बलप्रयोग द्वारा उनका पालन समस्त जनतासे करावे। उनकी रक्षाके लिए शास्त्र और स्मृतियां भी उन्होंने रचीं और मानव-उद्धारका दावा करके मानव-संहार कर डाला। इससे भी आगे जो शक्तिशाली थे, उन्होंने स्वयं अपने बनाये कानूनकी अवहेलना की; पर न्याय उन्हें दण्ड न दिला सका। यह बात विवाद पैदा करती है। विवाद हम नहीं चाहते, क्योंकि उसका अन्त नहीं है; पर इतना स्पष्ट है कि राजतन्त्र अपनेमें कुछ भी नहीं है।

सन् १९१२ में होनेवाली इलाहाबाद कांग्रेसके प्रधान मि० डब्ल्यू० सी० बनर्जीने कहा था—"मैं उन लोगोंसे सहमत नहीं, जो कहते हैं कि जब तक हम अपनी सामाजिक पद्धतिका सुधार नहीं करते, तब तक हम राजनीतिक सुधारके योग्य नहीं हो सकते। मुझे इन दोनोंके बीचमें कोई सम्बन्ध नहीं दीखता।......क्या हम (राजनीतिक सुधारके लिए) इसलिए योग्य नहीं, क्योंकि हमारी विधवाओंका पुनर्विवाह नहीं होता और दूसरे देशोंकी अपेक्षा हमारी लड़कियां छोटी उम्रमें ब्याह दी जाती हैं? या हमारी पत्नियां या पुत्रियां हमारे साथ गाड़ीमें बैठकर हमारे मित्रोंसे मिलने नहीं जातीं? या क्योंकि हम अपनी बेटियोंको आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज नहीं भेजते (हर्ष-ध्वनि)।"

मि० बनर्जी उन्हीं लोगोंमेंसे थे, जो अपने पक्षके लिए भोले लोगोंको भड़काया करते हैं। स्त्री जातिकी स्वतन्त्रतासे आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज जानेका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आजादीका किसी भी दुर्गुणसे सम्बन्ध नहीं है। जब कोई आजादी मांगता है, तो वह आजादीकी मर्यादाको जानता है और यदि आजादी पाकर कोई आत्म-हत्या करता है, तो करे। स्त्रियोंको आजादी देनेसे वे

व्यभिचार करेंगी, इसी काल्पनिक आशङ्कासे उन्हें आजादीसे रोकना तो पाप है। हम मानते हैं, आजादीका दुरुपयोग करनेसे वे उच्छृङ्खल बनेंगी, परन्तु साथ ही यह भी तो सत्य है कि आजादीके बिना जीवन नहीं है।

हम बहुत आगे बढ़ गये। मि० बनर्जी जैसोंको सीधा-सा उत्तर दिया जा सकता है। सिन्धको मोहम्मद बिन कासिमने जीता था। यह मुसलमानोंकी भारतपर पहली विजय थी। मानो यह भारतकी निरन्तर दासताकी चेतावनी थी और इसका कारण था जाति-पांतिका भेद। दाहिरकी सेनामें चौहानोंको क्षत्रिय नहीं माना गया और वे रुष्ट हो गये। सिकन्दर जब आया था, तो नन्दवंशमें भी यही घटना घटी थी। राजवंशको दासियोंके साथ अपनी कामवासना तृप्त करनेका अधिकार तो था, पर उसके फलस्वरूप उत्पन्न पुत्रोंको कुछ भी अधिकार नहीं था। यदि तब आर्य-जातिमें चाणक्य जैसे पुरुष न होते, तो शायद भारतकी दासताकी तारीख बहुत पुरानी हो गयी होती। ऐसे लोगोंके कार्यका प्रायश्चित्त आज गांधीजी कर रहे हैं। अछूतोद्धार कांग्रेसका एक मुख्य प्रोग्राम है। उनसे मतभेद रखनेवाले लोग आज भी हैं। परन्तु अधिकांश उनमेंसे वे ही हैं, जो मानव-मात्रके अधिकार एक मानते हैं और जो साम्यवादके द्वारा एक नयी सामाजिक प्रणालीको जन्म देना चाहते हैं। उनकी बात वादकी है। उससे हमें कभी विरोध नहीं। राजा स्वयं यह कार्य करे अथवा हरिजन-सङ्घ अथवा कोई और संस्था; परन्तु यह निश्चित है कि इस समस्याको सुलझाये बिना कोई देश स्वतन्त्रताकी ओर नहीं बढ़ सकता।

आजकी सभ्यताके युगमें जब मानव-एकताके अमर प्रयत्न हो रहे हैं, हमारे भारतमें लाखों मनुष्य हैं, जो नीच कहलानेवाली जातियोंमें जन्म लेनेके कारण (१) मन्दिरमें देव-दर्शनको नहीं जा सकते, (२) वे सुन्दर और रङ्गीन कपड़े नहीं पहन सकते, (३) उनके बच्चे उच्च वर्गवालोंके साथ एक स्कूलमें नहीं पढ़ सकते और इससे भी भयङ्कर युग अभी-अभी बीता है, जब उनके चलनेके लिए सड़कें भी अलग थीं। पेशवाके राज्यकालमें तो उन्हें गलेमें हांडी लटकाकर चलना पड़ता था, जिससे वे सड़कपर थूक न सकें और आर्य-पुरुषोंके पैर उनके थूकपर न पड़ सकें। वे अपने पीछे झाड़ू बांधते थे, जिससे उनके पद-चिन्ह मिटते जायें और आर्य-जातिके पैर उन दूषित मानवोंके पद-चिन्होंपर न पड़ सकें।

इन्हीं अवस्थाओंको सामने रखकर एक समाज-सुधारक भी पूछ सकता है—क्या अपने पैरोंको काटकर तुम भागनेका साहस कर सकते हो? क्या इतने वर्गको जीनेका अधिकार न देकर भी तुम अपने लिए आजादी मांग सकते हो? राजनीतिके पास इसका कोई उत्तर नहीं है। वह तो पंगु है। यह मानकर भी कि यह अन्याय है, वह समाजकी अपेक्षा करेगी। समाजके अधिकारी आकर कहेंगे कि हम अछूतोंके लिए मन्दिर खोलना चाहते हैं, तो राज्य उसका पालन करवा सकता है।

एक और बात कही जाती है कि वर्तमान असमताका कारण आर्थिक है। ऐसा कहनेवाले मानते हैं कि राजनीति समाप्त हो चुकी है और केवल आर्थिक प्रश्न संसारके सामने है। लेकिन हम कहते हैं कि जो आर्थिक असमता आज हम देखते हैं, उसका कारण सामाजिक रोग हैं। समाजके अनेक वर्ग, वर्ण और जातियोंके भेदने ही एक मानवको अनन्त धनका स्वामी तथा दूसरेको टुकड़े-टुकड़ेका मोहताज बनाया है। साम्यवादी इस असमताको मिटानेके लिए कहते हैं कि वैयक्तिक आर्थिक लाभको मिटा दिया जावे। यह सिद्धान्त तो सुन्दर है, परन्तु इसका आश्रय बलप्रयोगपर है। आर्थिक समता कायम कर देनेपर भी यह निश्चित नहीं कि मनुष्यमें ये विषमतायें नहीं रहेंगी। वे तो रहेंगी। हम देखें तो सुन्दर और असुन्दर, बली और निर्बलकी असमता भी कम भयङ्कर नहीं है। इसका तो एकमात्र निदान सामाजिक क्रान्ति ही है कि सब मानव मूलतः एक हैं। धनी और निर्धन, बली और निर्बल, सुन्दर और असुन्दर सबके स्थान और अधिकार एक हैं। उनमें रोटी, बेटी, खानपान आदि सब व्यवहार बिना किसी भेदभावके हो सकते हैं। इस ओर जितनी भी सफलता मानवके प्रयत्न पा सकते हैं, वही चिरस्थायी होगी, अन्यथा एक शक्तिके प्रयत्न दूसरी शक्तिके प्रयत्नों द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं। एक बात हम फिर कह दें कि साम्यवादके उद्देश्योंसे हमारा विरोध नहीं है। वह तो हमारी सामाजिक क्रान्तिका एक अङ्ग है, लेकिन शक्तिके प्रयोगकी बात हमें अपने उद्देश्य प्राप्त न करने देगी, यह हमारा निश्चित मत है। कानूनसे शिक्षा और संस्कारमें

अधिक बल है। और फिर केवल बल ही तो नहीं है। बल तो तर्कमें भी बहुत है, लेकिन उसमें जीवन कहां है। जीवन तो उसे श्रद्धा ही दे सकेगी। तब तर्क यानी बुद्धिके साथ श्रद्धाका मिलन सच्ची शक्तिका उदय है। शिक्षा और संस्कारके साथ यह नियम और कानूनका मिलन है। आजके युगका सन्देश एक पक्षका पोषण नहीं है, वह तो विभिन्न तत्त्वोंमें एकरसतासे देखनेका आदेश करता है। डा० सर राधाकृष्णनने एक बार कहा था— 'हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था असमतामूलक है। जब तक इससे अधिक अच्छी व्यवस्था और सुस्थिति हम नहीं उत्पन्न कर सकते, तब तक पशुशालायें, अनाथाश्रम और औषधालय हमारी यातनाओंको बढ़ानेके सिवा और कुछ नहीं कर सकेंगे। इनकी अपेक्षा तो हम सब भूखों मर जायें और हमारा देश निर्वंश हो जाये, यही अच्छा है।'

सच तो यह है कि जो जीनेका अधिकार छीनना चाहता है, उसे जीनेका हक ही क्या है? क्या यह सम्भव नहीं है कि हम अछूतोंको आज भी इसी प्रकार सताते रहें, तो एक दिन वे हमारे विरुद्ध हमारे विरोधियोंसे मिल जायेंगे और हमारा नाश कर देंगे। जो सामाजिक सुधारके विरोधी हैं, वे सम्भवतः इसका मूल्य नहीं जानते। वे राजनीति भी नहीं जानते।

लेकिन समाज-सुधार या क्रान्तिका प्रश्न केवल अछूतोंका प्रश्न तो नहीं है। अनेक जातियां हममें हैं। जाति-पांतिके कारण जो भेदभाव और मनोमालिन्य मानव-मानवके बीचमें पैदा हो चुका है, वह हमें राज-व्यवस्थाके लिए एकमत कैसे होने देगा? हमारी स्त्री जाति अपनेको भूल ही बैठी है। अनन्त वर्षोंसे पददलित होते-होते उन्हें अज्ञानने इतना जकड़ा है कि वे प्रकाशमें आनेसे भी डरती हैं। स्वामी दयानन्द और ब्रह्मसमाजके आन्दोलनने जब उन्हें सचेत किया, तभी वे गांधीजीके आह्वानपर देशके लिए मरनेको आतुर हो उठी थीं।

इसके अतिरिक्त वेश्याओंका समाजमें स्थान, समष्टिगत व्यभिचार, धर्मकी स्थिति, रोटी-बेटीका प्रश्न, विधवाकी स्थिति, विवाह-संस्थाका दुराचार, विदेश-यात्रा आदि अनेक गम्भीर समस्यायें हैं। इनमेंसे कुछ तो कालके चक्रमें फंसकर टूट चुकी हैं। लेकिन अभी जो बाकी हैं, वे किसी भी जातिके जीवन-मरणका प्रश्न हैं। इनका विस्तृत विवेचन वादका प्रश्न है, अभी तो केवल यही दिखाना है कि रोगी और निर्जीव समाज स्वतन्त्रताका उपयोग नहीं कर सकते और स्वतन्त्रता ले भी ली, तो वह जनहित न कर सकेगी। संस्कृतिविहीन स्वतन्त्रता तो हेय है, यह हमारा मत है। इसीलिए हम कहते हैं कि ये प्रश्न आवश्यक हैं। और उनका उत्तर मिलना आवश्यक है।

लक्ष्यको कौन भूलता है; पर मार्गकी जो रुकावटें हैं, उनसे जूझे बिना भी वहां कौन पहुंचा है? रुकावटसे भय हो, यह मानवका गुण नहीं है। वह रुकावटको कुचल दे, उसे भूलकर आगे बढ़नेकी चेष्टा करे, यही उसकी जागरूकता है। जागरूकता यदि समाजमें है, तो वह अपना मार्ग ढूंढ़ लेगा। उसे राजनीतिक स्वतन्त्रताकी अपेक्षा नहीं है। सच तो यह है कि मानवकी स्वतन्त्रताके सामने राजनीतिक स्वतन्त्रताका मूल्य ही नहीं है।

क्रान्तिका आरम्भ मानवके अन्दरसे हो, पर इस क्रान्ति शब्दसे धोखा न हो। यह क्रान्ति रक्तकी नहीं, केवल दृष्टिकोण, नैतिक मूल्य और मापदण्ड बदलनेकी क्रान्ति है, सबसे बढ़कर अपनेको पहचाननेकी क्रान्ति है कि मैं मैं हूं। जैसा मैं हूं, वैसे ही दूसरे हैं। मुझे अपने बलपर जीना है। मुझे चिन्ता नहीं करनी कि अदृष्ट शक्ति मेरी सहायता करती है या नहीं। मैं अदृष्ट शक्तिका विचारक नहीं, केवल अपना विचारक हूं। जब ऐसा होगा, तो समाजकी विभिन्नतासे हमें भय न होगा; क्योंकि तब वह जीवनको शक्ति देगी और विषमताको नष्ट करेगी।

———

लाशोंका कारखाना

श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

कहावत है कि युद्ध छिड़नेपर सत्य सबसे पहले उसका शिकार होता है—"When war is declared, Truth is the first casuality." और इसमें सन्देह नहीं कि युद्ध छिड़नेपर राष्ट्रोंको सत्यासत्यका निर्णय करनेका ध्यान नहीं रह जाता, बल्कि जान-बूझकर मिथ्या प्रचार करनेका भी प्रयत्न किया जाता है।

युद्धकालमें जब अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिहिंसा और प्रतियोगिता काफी बढ़ जाती है, जब देशवासियोंसे हानिप्रद खबरोंको छिपाने और उनके उत्साहको बढ़ानेवाली बातोंके ही प्रचार करनेकी आवश्यकता होती है, जब तटस्थ देशोंको आकर्षित करने एवं शत्रुओंको धोखा देनेकी आवश्यकता होती है, तब राष्ट्रोंके लिए झूठकी बहुत बड़ी उपयोगिता है।

गोवेल्सने एक बार कहा था कि मिथ्या-प्रचारके मानी हैं कि प्रचार इस ढङ्गसे किया जाय कि प्रचारकको स्वयं उस मिथ्याके सत्य होनेका भ्रम और फिर उसमें विश्वास हो जाय।

व्यक्तिके जीवनमें जो सच है, विशाल पैमानेपर राष्ट्रके जीवनमें भी वही सच है। मनुष्यकी झूठ बोलनेकी आदत कभी कम नहीं होगी, पर झूठ बोलनेकी आदतसे भी बढ़कर उसकी विश्वास करनेकी आदत है। झूठी अफवाहोंमें जो दिलचस्पी होती है, वह साधारण नहीं। सत्य सम्भवतः उतना आकर्षक न हो, जितना अर्द्ध-सत्य। इसीलिए अबोध जनतामें अपना उल्लू सीधा करनेके ख्यालसे राष्ट्रों द्वारा तरह-तरहके प्रचार किये जाते हैं।

मिथ्या-प्रचारके कई रूप होते हैं। पहला, बिलकुल सीधा-सा तरीका है कि सरकारी तौरपर कुछ खास बातोंके प्रचारकी आवश्यकता समझकर उन्हें प्रचारित किया जाय। जैसा कि एक फ्रेञ्च राजनीतिज्ञने एक बार कहा था कि जब तक दो राष्ट्रोंके सैनिक एक-दूसरेके विरुद्ध शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित खड़े रहेंगे, तब तक मशीनगनों और गोलियोंकी भांति ही मिथ्या-प्रचारक राजनीतिज्ञ भी बने रहेंगे।

मिथ्या-प्रचार होते देखकर उसे बिना रोके बढ़ने देना, किसी वक्तव्यके शब्दों अथवा पंक्तियोंको इस प्रकार निकाल देना जिससे अपना हित-साधन हो, जान-बूझकर घटना-विशेषको अतिशयोक्ति अथवा अत्यन्त कम करके कहना, नकली फोटो प्रचारित करना, क्योंकि 'केमरा झूठ नहीं बोलता' के अनुसार वैसे फोटोको विश्वसनीय समझना, अत्याचार सम्बन्धी मनगढ़न्त बातें, सैनिकोंको आत्मसमर्पण करनेसे रोकनेके लिए शत्रुओं द्वारा गिरफ्तार सेनापर होनेवाले भीषण अत्याचारों और यन्त्रणाओंकी कहानियां प्रचारित करना, मनगढ़न्त कहानियोंका प्रचार करना आदि मिथ्या-प्रचारके कितने ही तरीके हैं, जिन्हें विभिन्न राष्ट्र अपनाते हैं।

इन मिथ्या-प्रचारोंकी सफलता इस बातपर भी निर्भर करती है कि प्रचार करते समय इस बातका ध्यान रखा जाय कि उनका प्रचार कैसी जनताके लिए किया जा रहा है। उदाहरणार्थ धार्मिक लोगोंके बीचमें यह प्रचार सफल होता है कि अमुक राष्ट्र जहां-जहां विजय प्राप्त करता है, वहांके धार्मिक स्थानोंको जलाता जा रहा है और इसके साथ कुछ जले हुए धर्मस्थलोंके फोटो जनतामें उस राष्ट्रके विरुद्ध भीषण भावना उत्तेजित कर देंगे। लेकिन यही प्रचार नास्तिकोंमें उस राष्ट्रके प्रति सराहनाकी भावना भर देगा। बुद्धिजीवियोंके बीचमें इस बातका प्रचार करना आवश्यक होता है कि अमुक युद्ध किन महान् आदर्शोंके लिए लड़ा जा रहा है। हिटलर कहता है, उसका उद्देश्य है शान्तिकी स्थापना; पर दूसरे राष्ट्र उसके मार्गमें बाधक हो रहे हैं, इसीलिए यह युद्ध हो रहा है! युद्धकालमें इस प्रकारके निरर्थक वाक्य अक्सर जनताकी आंखोंमें धूल झोंकनेके लिए कहे जाते हैं।

सरकारों द्वारा जहां इस प्रकारके प्रचार स्वेच्छापूर्वक किये जाते हैं, वहीं युद्धकालीन अफवाहोंकी भी कमी नहीं रहती। किसी और समय ऐसी अफवाहोंमें कोई विश्वास करे या न करे; पर ऐसे समय, जब सत्यासत्यका निर्णय करना काफी कठिन रहता है और जब उसके लिए कोई उतना

व्यग्र भी नहीं रहता, ऐसी अफवाहें अबाध गतिसे बढ़ती चलती हैं। अफवाहोंमें एक खास विशेषता यह भी होती है कि वे अपने आप रास्ता खोजती हैं। यद्यपि ऐसी भी अफवाहें होती हैं, जिनसे किसीका खास सम्बन्ध हो या न हो, पर दिलचस्प होनेके कारण उन्हें लोग स्वतः फैला देते हैं। युद्धकालमें अखबारों द्वारा भी कभी-कभी कितनी ही ऐसी बातें फैलायी जाती हैं, जिनमें पाठकोंका मनोरञ्जन करनेके अतिरिक्त और कोई उद्देश्य नहीं रहता और जब एक बार ऐसी कोई बात सामने आयी, तब मनुष्यकी युद्धकालीन भावुकताके कारण उन्हें बढ़ते देर नहीं लगती।

आज एक महायुद्ध चल रहा है, जिसमें सदाके युद्धकी भांति ही मिथ्या-प्रचारमें भी नवीनतायें प्रकट होंगी; पर अभी उनके सत्यासत्यका निर्णय करना असम्भव है। विगत महा-युद्धके दिनोंमें भी ऐसा ही हुआ था। कितनी ही खबरें तो उन दिनों ऐसी उड़ीं, जिनके सम्बन्धमें वास्तविक जानकारी वर्षों बाद हो सकी।

विगत महायुद्धमें प्रचलित ऐसी कितनी ही बातोंको लेकर ब्रिटिश पार्लमेण्टके एक सदस्य आर्थर पोन्सबीने एक पुस्तक लिखी है, जिसमें लेखकने प्रामाणिकताके साथ ऐसी बातोंका संग्रह किया है। इन पृष्ठोंमें उक्त पुस्तकके आधार-पर ऐसी कुछ बातें यहां दी जा रही हैं। इन बातोंके देनेका, उक्त लेखकके ही शब्दोंमें, "व्यक्ति-विशेष अथवा अधिका-रियोंपर न तो दोषारोपण करना है और न राष्ट्र-विशेषको राष्ट्र-विशेषकी अपेक्षा अधिक दोषी अथवा झूठा प्रमाणित करना है।" जैसा कि हमने कहा है, इस प्रकारकी बातों-के फैलनेकी जिम्मेदारी कभी-कभी जिम्मेदार व्यक्तियोंपर होती भी नहीं। वे स्वतः किसी अज्ञात स्रोतसे निकलती और स्वतः आकाशबेलिकी तरह पनपती और बढ़ती चलती हैं।

विगत महायुद्धमें जैसी बेसरकी बातें उड़ीं, उनमें सबसे अधिक उत्तेजक और सनसनीखेज बात थी जर्मनोंकी 'लाशों-की फैक्टरी'-सम्बन्धी अफवाह। सारे संसारमें यह अफवाह तूफानकी तेजीसे फैली। और संसारके अनेक विख्यात पत्रों, व्यक्तियों एवं ब्रिटिश पार्लमेण्टमें इसको लेकर वर्षों दिलचस्पी बनी रही। पहले-पहल १९१७ में यह अफवाह उड़ी और १९२५ में जाकर इसका अन्त हुआ, जब जर्मन सरकारके वक्तव्यपर विश्वास कर ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीने पार्लमेण्टमें इसे सदाके लिए दफना दिया। हमारे महाराज बीकानेरने भी २१ अप्रैल १९१७ को लन्दन 'टाइम्स' में लिखकर इसपर घृणा प्रकट की थी।

कहानी यों बतायी जाती है कि जर्मनोंने यह सोचा कि लड़ाईमें मरे हुए व्यक्तियोंकी लाशें बेकार न जाने पायें, इस-लिए लाशोंकी एक फैक्टरी खोलकर उनसे और कामों-के लिए चर्बी निकालकर बाकी शरीरसे खाद तैयार की जाय।

इस सम्बन्धमें १६ अप्रैल १९१७ को 'टाइम्स' ने लिखा था :—"फरवरी १९१७ में जर्मनी छोड़ते हुए एक अमेरिकन कौन्सलने स्विटजरलैण्डमें कहा था कि जर्मन मुर्दोंसे ग्लिसरिन चुआ रहे हैं।"

उसी दिनके पत्रमें यह भी निकला :—"बर्लिनके 'लोक-लेञ्जियर'के संवाददाता हर कार्ल रोजनेरने विगत मङ्गलवारको पहली बार इस बातको स्वीकार करते हुए लिखा कि जर्मन लोग मृत सैनिकोंकी लाशोंका कैसा उपयोग करते हैं। एवरिङ्ग कोर्टसे जाते हुए एक बदबू-सी उठती है, मानो कुछ जल रहा है। यह वह स्थान है, जहां 'शव सदुपयोग समिति' (Corpse Exploitation Establishment) है। लाशोंसे जो चर्बी निकाली जाती है, उसका लुब्रिकेटिङ्ग तेल बनाया जाता है और फिर शरीरको मशीनके भीतर डालकर पशुओंके खानेके लिए उसका बुरादा निकाल लिया जाता है और जो बच रहता है, वह खादके काम आता है। कोई भी वस्तु बरबाद नहीं होने दी जाती।"

इस कहानीका प्रचार चाहे जैसे हुआ हो—लेकिन उस समय यह 'कहानी' मानी भी नहीं जाती थी—पर इसका उपयोग प्रचारार्थ किये जानेके सुझाव तत्काल दिये जाने लगे थे। सी० ई० बनकरीने १८ अप्रैलके 'टाइम्स' में ऐसा ही सुझाव पेश करते हुए तटस्थ देशों तथा पूर्वमें इसके प्रचारकी बात कही थी, जिससे बौद्ध, हिन्दू तथा मुसलमान इस घृणा-पूर्ण कार्यसे स्तम्भित रह जायें। वैदेशिक विभाग, इण्डिया आफिस तथा औपनिवेशिक विभागसे इसके ब्राडकास्ट करनेका भी सुझाव पेश किया गया था और उसके दूसरे दिन १९ अप्रैलके 'टाइम्स'में इस प्रकारके और भी पत्र प्रकाशित हुए थे।

२४ अप्रैल १९१७ के 'टाइम्स'में ई० एच० पार्करका एक

पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमें ३ मार्च १९१७ के 'नार्थ चाइना हेरल्ड'में प्रकाशित पेकिङ्गमें जर्मन मिनिस्टर तथा चीनी प्रीमियरकी एक बातचीतका भी प्रसङ्ग था, जिसमें कहा गया था : "......लेकिन बातचीतका सिलसिला भङ्ग हो गया, जब एडमिरल वान हिङ्कने लाशोंसे चर्बी निकालनेकी वैज्ञानिक प्रक्रियाकी बात बतायी। उसने बड़े तपाकके साथ यह बात बतायी कि जर्मन लाशोंसे चर्बी निकाल रहे हैं, और ऐसे रासायनिक पदार्थ तैयार कर रहे हैं, जिनकी बारूद बनानेमें आवश्यकता होती है। चीनी प्रीमियर यह सुनकर दङ्ग रह गये थे।"

लाशोंकी इस जर्मन फैक्टरीकी बात केवल पत्रों तक ही सीमित नहीं रह गयी थी। पार्लमेण्टमें भी इसको लेकर कितनी ही बार प्रश्नोत्तर हुए थे। ३० अप्रैल १९१७ को हाउस आव कामन्समें जो प्रश्नोत्तर हुए थे, उनसे इस बात-पर काफी प्रकाश पड़ता है।

मि० रोनाल्ड मैकनिलने प्राइम मिनिस्टरसे पूछा कि क्या वे मिश्र, भारत तथा साधारणतः समस्त पूर्वमें इस बातको यथासम्भव अधिकसे अधिक प्रचारित कर सकेंगे कि जर्मन लोग अपने मरे हुए सैनिकों तथा दुश्मनोंके सैनिकोंकी लाशें सुअरोंके खानेके लिए एकत्र कर लेते हैं।

मि० डिलनने एक्सचेकरके चान्सलरसे पूछा कि क्या उनका ध्यान इस देशमें विस्तृत रूपसे प्रचारित इस समाचार-की ओर गया है कि जर्मनोंने लाशोंसे चर्बी निकालनेके लिए बहुत-सी फैक्टरियां खोल रखी हैं? क्या लार्ड कर्जन जैसे कितने ही प्रमुख व्यक्ति भी इसका समर्थन करते हैं और क्या सरकारके पास इसमें विश्वास करनेके लिए काफी प्रमाण हैं? अगर उसे इस बातका पता हो, तो क्या सरकार हाउसको इस सम्बन्धकी सारी बातें बतायेगी?

लार्ड राबर्ट सेसिल : उक्त दोनों प्रश्नोंके उत्तरमें सर-कारको इससे अधिक कोई जानकारी नहीं कि जर्मन अख-बारोंमें ये बातें प्रकाशित हुई थीं और उन्हींसे इस देशके अखबारोंने उद्धृत की हैं। जर्मनीमें सैनिक अधिकारियोंके दूसरे कार्योंको देखते हुए उनके इस कार्यपर अविश्वास किया जाय, ऐसी कोई बात नहीं दिखाई पड़ती। आम तौरपर प्रचलित होनेके कारण इस बातको सम्राट्की सरकारने प्रकाशित होने दिया है।

मि० मैकनील : जर्मनी द्वारा ही प्राप्त इस कहानीका पूर्वमें प्रचार करनेके लिए क्या सरकार कोई व्यवस्था करेगी?

लार्ड सेसिल : इस सम्बन्धमें जो बातें की जा चुकी हैं, उनसे अधिक कुछ करना इस समय वाञ्छनीय नहीं है।

मि० डिलन : तो इसका अर्थ क्या हम यह समझें कि इस बातकी सच्चाईका सरकारके पास कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है और इसकी सत्यतामें उसका विश्वास नहीं है। और इसकी छानबीन करनेके लिए उसने कोई कोशिश नहीं की। क्या सरकारका ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित हुआ है कि ऐसे वक्तव्योंका मिनिस्टरोंकी स्वीकृतिसे—अगर ये बातें असत्य हैं, जैसी कि वास्तवमें ये हैं—प्रकाशित होने देना न केवल घृणित, बल्कि इस देशके लिए अत्यन्त हानिकारक भी है।

लार्ड सेसिल : सदस्य महोदयको सम्भवतः उन बातोंकी जानकारी है, जिनकी हमें नहीं है। मैं तो सिर्फ उन्हीं वक्तव्यों-के आधारपर कुछ कह सकता हूं, जो अखबारोंसे प्राप्त हुए हैं। मैं हाउसको पहले ही बता चुका हूं कि इससे अधिक हमें कुछ भी नहीं मालूम। हमारे पास तो 'लोक लेञ्जियर'से उद्धृत 'टाइम्स'का वक्तव्य है। ये बातें पत्रोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं और यही हमारी समूची जानकारी है।

मि० डिलन : क्या लार्ड महोदयका ध्यान 'फ्रैङ्क फर्तुर जीतुङ्ग' तथा दूसरे प्रमुख जर्मन पत्रोंमें प्रकाशित उन तथ्यों-की ओर आकर्षित हुआ है, जिनमें इस बातकी सारी बिधियां बतायी गयी हैं कि किस प्रकार उक्त फैक्टरियोंमें लाशोंको उबालकर, चर्बी निकाली जाती है। यह कहानी सच्ची है या झूठी, इसका पता लगानेके लिए क्या सरकार कोई कारवाई करना चाहती है।

लार्ड राबर्ट सेसिल : इस सरकारका न तो यह काम है और न इसके लिए यह सम्भव ही है कि वह इस बातका पता लगाये कि जर्मनीमें क्या हो रहा है। सदस्य महोदयने अपना सुझाव पेश करनेमें किसी औचित्यसे काम नहीं लिया है। जहां तक 'फ्रैङ्क फर्तुर जीतुङ्ग'के लेखका सवाल है, मैंने उसे देखा नहीं है। पर मैंने इस सम्बन्धमें जर्मन सरकारके वक्तव्यको देखा है। लेकिन जर्मन सरकारके किसी भी वक्तव्यको मैं कोई महत्त्व नहीं देता।

मि० डिलन : मैं पूछना चाहता हूं कि सम्राट्के मिनि-

स्टर, युद्ध-मन्त्रिमण्डलके एक सदस्यको, ऐसी अफवाहोंपर स्वीकृति देनेके पहले क्या इसकी जानकारी हासिल करनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए थी।

लार्ड सेसिल : मेरा ख्याल है कि मन्त्रिमण्डलका कोई भी सदस्य इस देशके एक प्रमुख पत्रमें प्रकाशित वक्तव्यपर अपनी रायजनी कर सकता है। उसने सिर्फ इतना ही किया था और उसने उसके लिए अपने ऊपर जिम्मेदारी नहीं ली थी। (एक सदस्य : ली थी।) मुझे पता चला है कि उसने जिम्मेदारी नहीं ली थी। उसने कहा था—"जैसा कि पत्रोंमें कहा गया है।"

मि० ओथवेट : मैं जान सकता हूं कि लार्ड महोदयको इस बातकी जानकारी है कि इस प्रकारके समाचारोंके प्रचार (प्रतिवाद) से ब्रिटिश जनतामें चिन्ता बढ़ गयी है, जिसके बच्चे युद्ध-क्षेत्रमें मारे गये हैं—और जिसका ख्याल है कि उनकी लाशोंका भी यही उपयोग किया गया होगा। क्या इसी आधारपर सरकारका यह कर्तव्य नहीं हो जाता कि वह इसके सम्बन्धमें पता लगाये।"

१७ मई १९१७ के 'टाइम्स'ने राइख्स्टागमें दिये गये हर जिमरमैनके एक वक्तव्यका उल्लेख किया था, जिसमें कहा गया था कि यह अफवाह झूठी है और सर्वप्रथम फ्रान्सीसी अखबारोंने यह अफवाह उड़ायी।

हाउस आव कामन्समें २३ मई १९१७ को एक वक्तव्य मि० आस्टिन चेम्बरलेनने दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि भारतको इसकी रिपोर्ट दी जायगी।

लन्दनके सुप्रसिद्ध हास्यरसके पत्र 'पञ्च'में इस फैक्टरीका एक व्यंग्य चित्र प्रकाशित हुआ था, जिसके नीचे लिखा था :

कैसरने (१९१७ में) रंगरूटोंमें भाषण करते हुए कहा था, "और इस बातको मत भूलो कि तुम्हारा कैसर जीवित या मृत, किसी भी अवस्थामें तुम्हारा उपयोग कर लेगा।"

कुछ ही दिनोंके भीतर सारे संसारमें यह अफवाह फैल गयी। लन्दन 'टाइम्स' ने २२ अक्टूबर १९२५ को अपने न्यूयार्कके संवाददाताकी रिपोर्ट यों प्रकाशित की थी :—

ब्रिगेडियर-जेनरल चार्टेरिसकी नेशनल आर्ट्स क्लबकी एक दुर्भाग्यपूर्ण वक्तृतासे यहां बड़ी ही दुःखद भावना उत्पन्न हो गयी।

इस सम्बन्धमें कुछ राजनीतिज्ञोंने यों राय प्रकट की थीः—

लायड जार्ज : मेरी नजरसे यह कहानी समय-समयपर विभिन्न रूपोंमें गुजरी। मैंने न तो उस समय इसमें विश्वास किया था और न अभी करता हूं। ब्रिटिश प्रचार विभागकी ओरसे इसका प्रचार कभी नहीं किया गया, बल्कि उसने तो उसे ठुकरा दिया।

मि० मास्टर मैन : हमने कभी भी इस कहानीको सच नहीं माना और न अधिकारियोंने ही इसे विश्वसनीय समझा। हमने इसे अपने प्रचारका साधन नहीं बनाया। हमने तो सिर्फ उन बातोंका प्रचार किया, जिनका पता हमें लग सका था।

मि० मैकफर्सन : मैं उस समय युद्ध-विभागके आफिसमें था, जब यह कहानी सुनाई पड़ी। और जब यह कहानी सुनाई पड़ी, तब हमें इसकी सत्यतामें कभी सन्देह नहीं हुआ। हमें मालूम नहीं कि किसने इसे ईजाद किया, पर हमें इसकी सत्यतामें तनिक भी सन्देह होता, तो किसी भी प्रकार इसका उपयोग हमने न किया होता।

वर्षों यह कहानी प्रचलित रही और इस बातका पता लगानेकी कोशिश नहीं की गयी कि इसकी वास्तविकता क्या है। हाउस आव कामन्समें २४ नवम्बर १९२५ को एक वक्तव्य देते हुए सर एल० वर्थिंगटन इवान्सने कहा था : प्रश्न यह नहीं है कि कहानी सच है या झूठ। मेरा सम्बन्ध सिर्फ इस बातसे है कि हमें जो जानकारी थी, उसीपर युद्ध विभागने काम किया। अगर इस बातके प्रमाण नहीं मिलते, तो निश्चय ही इसका रूप बदल जाता; पर मैंने तत्कालीन अधिकारियों द्वारा प्राप्त जानकारियोंके आधारपर ही काम किया था।

इस प्रकार कितने ही वर्षों तक युद्ध-कालकी यह कहानी अपनी विचित्रता लिये फैलती रही। और मजा यह है कि वर्षों लोगोंमें इसके प्रति दिलचस्पी कम नहीं हुई। अन्तमें २ दिसम्बर १९२५ को हाउस आव कामन्समें आस्टिन चेम्बरलेनने मि० आर्थर हैण्डर्सनके एक प्रश्नके उत्तरमें कहा था :—

युद्ध-सचिवने सप्ताह-भर पहले हाउस आव कामन्समें १९१७ में प्रचलित लाशोंकी फैक्टरीके सम्बन्धमें आपके सामने वक्तव्य दिया था। उन्होंने बताया था कि किस प्रकार १९१७ में सम्राट्की सरकारको इसके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त हुई थी। जर्मन सरकारकी ओरसे जर्मन रीख-

के चान्सलरने अब मुझे इस बातकी घोषणा करनेका अधिकार दिया है कि उक्त कहानी बिल्कुल बे-बुनियाद है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सम्राट्की सरकारकी ओरसे मैं इस वक्तव्यको स्वीकार करता हूं और आशा करता हूं कि इस झूठी रिपोर्टका सदाके लिए अन्त हो जायगा।

और तब इसका वास्तवमें अन्त हो गया।

लाशोंकी इस फैक्टरीके सम्बन्धमें और भी कितने ही वक्तव्य कितने ही देशोंमें दिये गये थे। आम जनताके अतिरिक्त सरकारें भी इसमें कुछ कम दिलचस्पी नहीं लेती थीं।

विगत युद्धमें इस प्रकारकी कितनी ही अफवाहें उड़ती थीं, जो दिलचस्पीके लिहाजसे एकदम अनोखी होती थीं। लेकिन केवल उसी युद्धकी नहीं, प्रत्येक युद्धकालकी यह एक साधारण बात है।

———

यूरोपीय राजनीतिमें स्वीडन

श्री रामाधीन अग्निहोत्री, बी० ए०, बी० टी०

यूरोपके सभी छोटे-बड़े राष्ट्र एक ओर निरस्त्रीकरणकी चर्चा चलाते रहे, और दूसरी ओर लुक-छिपकर अथवा लोकमतको ठुकराकर स्पष्ट रूपसे अपनी पाशविक शक्ति बढ़ानेमें अहर्निशि संलग्न रहे। ज्यों ही जर्मनीने मित्र-राष्ट्रोंकी अन्तिम चेतावनीका तिरस्कार कर पोलैण्डपर तूफानी हमला कर दिया, त्यों ही सारे यूरोपमें सनसनी फैल गयी, निर्बल राष्ट्रोंपर भारी आतङ्क छा गया और उनके सिरपर भयका भूत सवार हो गया। राष्ट्रीय सेनाओंको युद्धके पैमानेपर लानेके लिए यूरोपके सभी देशोंने सैन्य-सञ्चालन तथा आम भर्तीके अहकाम जारी कर दिये। समयके साथ युद्धका क्षेत्र विस्तृत होता गया और साथ ही लड़ाईमें भयङ्करता भी आती गयी। ग्रीष्म-कालके प्रारम्भ होते ही गत ९ मार्चको जर्मनीने एक साथ ही अचानक डेनमार्क तथा सुदूरस्थ नार्वेपर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण दोनों देशोंके लिए घातक सिद्ध हुआ। डेनमार्कमें स्थित जर्मन सेनायें दक्षिणी स्वीडनसे अब केवल १० मील चौड़े बाल्टिक सागरके मुखद्वार 'सुण्ड' से ही पृथक् रह गयीं। इस प्रकार स्वीडन अपने जीवन-पड़ोसी नार्वेके पराजित हो जानेपर तीन दिशाओंसे जर्मनीकी तूफानी सेनाओंसे घिर गया। ऐसी विकट परिस्थितिमें स्वीडनका युद्धसे परे रहना कठिन-सा प्रतीत होने लगा। परन्तु सौभाग्यसे उसकी भौगोलिक स्थिति, समयोचित सतर्कता तथा दो सबल पड़ोसी राष्ट्रों—नात्सी जर्मनी और साम्यवादी रूस—को समान रूपसे प्रसन्न रखनेकी कुशल नीतिने उसे कुछ कालके लिए हर हिटलरकी शनि-दृष्टिसे अछूता बचा दिया। परिणामतः युद्धकी काली घटायें उत्तरसे हटकर पश्चिममें हालैण्ड, बेलजियम और लक्सेम्बर्गपर जाकर छायीं और उन्हें एक सप्ताहके अन्दर ही काल-कवलित कर लिया।

स्वीडनको अपनी रक्षाकी तैयारी करनेका यह स्वर्ण अवसर मिल गया। इस समय जब दो बड़े मूजियोंमें खटपट हो रही है, तब वह अपने बचनेकी झटपट फिक्र कर रहा है। स्वीडन इस समय अपने रक्षाके साधनोंमें उसी प्रकार लगा हुआ है, जिस प्रकार 'म्यूनिक सन्धि' के पश्चात् ब्रिटेन तन, मन और धनसे लगा था। वायुयान-विध्वंसक तोपों और अपनी राजधानी स्टाकहोमके हवाई हमलोंको रोकने तथा नगरको रिक्त कर देनेकी प्राकृतिक शक्तिमें स्वीडन सानुपातिक दृष्टिसे सन् १९३९ के पूर्व ब्रिटेनसे कहीं अधिक अच्छी दशामें है।

स्थल सेना—स्वीडनमें फौजोंकी भर्ती देशव्यापी सेवाके सिद्धान्तपर निर्भर है। परन्तु सैनिक शिक्षा देनेके लिए कुछ स्वेच्छानुसार भर्ती हुए पदाधिकारियोंकी एक स्थायी सेना देशमें रहती है। अनिवार्य 'सैनिक सेवा' का कार्य बीस वर्षकी आयुसे आरम्भ होता है, और इस सेवाका अन्त पैंतालीस वर्षकी उम्रके बाद होता है। प्रथम पन्द्रह वर्ष तक पुरुष सक्रिय सेनाके सैनिक रहते हैं, तत्पश्चात् अन्तिम ग्यारह वर्ष तक 'लैण्ड स्टार्म' नामक रक्षित सेनाके सदस्य रहते हैं; पर आवश्यकता पड़नेपर सैन्य-सेवा-हित किसी भी क्षण बुलाये जा सकते हैं। पैदल सेनाके साधारण सिपाहियोंको प्रारम्भमें १७९ दिनकी शिक्षा दी जाती है; पर विशेषज्ञोंको २२९ दिनकी शिक्षा देनी पड़ती है। घुड़सवारों, तोप-

न्दाजों तथा इञ्जीनियरोंका शिक्षण-काल २०० दिनका होता है। पैदल सेनाको दो बार पचीस-पचीस दिनोंके लिए पुनः सैनिक शिक्षा देनेके लिए बुलाया जाता है; परन्तु घुड़सवारों, इञ्जीनियरों और तोपन्दाजोंको दो बार तीस-तीस दिनकी शिक्षा प्राप्त करनेको बुलाया जाता है।

देशकी सम्पूर्ण पैदल सेना चार भागोंमें विभक्त है। सारे देशमें २२ पैदल सेनायें, ४ रिसाले और ७ तोपखाने हैं। सन् १९३७ के उपलब्ध आंकड़ोंके अनुसार स्वेडिश सेनामें १७४० सेनानी और ७२८२ स्वयं भर्ती हुए छोटे अफसर थे। उसी वर्ष देशमें अनिवार्य रूपसे सैनिक शिक्षा पानेवालोंकी संख्या ४०,००० थी। सम्प्रति सक्रिय सेनाके रजिस्टरोंमें मुन्दर्ज सिपाहियोंकी कुल तादाद ५,७५,००० है; और 'रक्षित सेना' में सर्व प्रकारके सैनिकोंकी संख्या २,८०,००० है। १९३७-३८ के राष्ट्रीय बजटमें स्वीडनकी शान्तिप्रिय सरकारने १७१,०००,००० क्रोनर (क्रोनर=१ शि० १॥ पे०) की व्यवस्था स्थल, जल तथा वायु-सेनाओंके लिए की थी।

ऋतुकालके अनुसार स्वीडनकी शान्ति-कालकी सेनामें ३४,००० से ६०,००० के बीच सैनिक घटा-बढ़ा करते हैं। इनमेंसे केवल १९,००० सैनिक देशकी स्थायी सेनामें रहते हैं। इस प्रकार वार्षिक सेनामें समयानुकूल १५,००० से लेकर ४१,००० सैनिकोंका अन्तर पड़ा करता है। इन आंकड़ोंको दृष्टिगत रखते हुए कोई भी पाठक स्वेडिश स्थायी सेनाको ६० लाखसे अधिक जनसंख्याके देशके लिए, जहां केवल 'सैनिक सेवा' ही अनिवार्य नहीं, वरन् जहां सदियोंसे सैनिक परिपाटी चली आती है, नगण्य कह सकता है। परन्तु नात्सी आक्रमणके भयसे भयभीत होकर इस समय सारे देशमें सैन्य-सञ्चालन कर दिया गया है, जिसके फलस्वरूप देशकी वर्तमान स्थायी सेना शान्ति-कालकी सेनासे लगभग चौगुनी बढ़ा दी गयी है, अर्थात् १,५०,००० हो गयी है। सैनिक पदाधिकारियोंकी गणनाके अनुसार स्वीडन किसी भी भावी युद्धमें ४,००००० से अधिक सिपाहियोंको दो-चार दिनोंके अन्दर रणस्थलमें उपस्थित कर सकता है।

नौ-सेना—स्वीडनकी नौ-सेनामें, जो इस समय जर्मनी द्वारा बाल्टिक सागर तथा निकटवर्ती खाड़ियोंमें प्रचुर मात्रामें सुरङ्गें बिछा देनेके कारण बहुत कुछ अंशोंमें निरर्थक-सी हो गयी है, ११ तट-रक्षक लड़ाकू जलपोत, १४ बिध्वंसक, ३१ टारपीडो जहाज, लगभग २० पनडुब्बियां, सुरङ्गें बिछानेवाला एक जहाज तथा अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित १ क्रूजर है। इनके अतिरिक्त अनेकों बोझा ढोनेवाले व्यापारिक जहाज और नाविकोंको शिक्षा देनेवाले छोटे-छोटे जहाज हैं। नवीन योजना (१९३८—४३) के अनुसार ३ क्रूजर, ४ टारपीडो जहाज, ३ जलमग्न नौकायें, १ डिपो जहाज और १२ मोटर टारपीडो जहाजोंका निर्माण द्रुतगतिसे हो रहा है। सन् १९३७ के अन्तमें स्थायी नौ-सेनामें ३१० बड़े अफसर ६०० वारण्ट अफसर तथा ३२०० अन्य छोटे पदाधिकारी तथा नाविक थे। इन श्रेणियोंके अतिरिक्त देशमें अनिवार्य रूपसे भर्ती किये हुए नाविक तथा रक्षित नौ-सेनाके सदस्य हैं।

तोपखाना—शाही समुद्रतटीय तोपखानेका प्रबन्ध नौ-सेनाके सुपुर्द है, और उसकी देख-रेख एक जनरलकी अध्यक्षतामें होती है। देशकी रक्षाके लिए समुद्रतटपर अनेकों सुदृढ़ दुर्ग बने हुए हैं, जिनमेंसे विशेष उल्लेखनीय 'वैक्सहोम' 'कार्ल्सक्रोना' तथा 'हेन्सो' हैं, जो क्रमशः देशकी सुरम्य राजधानी स्टाकहोम, पश्चिमतटीय सुविख्यात बन्दरगाह गोथेनबर्ग और 'हार्नोसैण्ड' की रक्षा करते हैं। तटीय तोपखानोंके रक्षार्थ गाटलैण्ड द्वीपमें एक फौज तैयार की जा रही है। नवीन सङ्गठनके अनुसार तोपखानोंके स्थायी कर्मचारियोंमें अनिवार्य तथा रक्षित सिपाहियोंके अतिरिक्त १४० अफसर, २२० वारण्ट अफसर और ९४० छोटे पदाधिकारी तथा सिपाही हैं।

हवाई सेना—स्वीडनको युद्धके समय शत्रुके हवाई आक्रमणोंसे अपने नागरिकोंकी रक्षाके लिए चिन्तित होनेका कोई कारण नहीं, क्योंकि देशकी जनसंख्याका केवल ३५ प्रतिशत नगरों तथा कस्बोंमें बसता है। आवश्यकता पड़नेपर उसे केवल ३,०००,०० व्यक्ति देशके एकमात्र विशाल नगर स्टाकहोमको खाली करनेमें निकालने पड़ेंगे। परन्तु यह संख्या देशकी सम्पूर्ण जनसंख्याका केवल ५ प्रतिशत है। साथ ही उसके पास अगणित उत्तम वायुयान-नाशक तोपें हैं।

स्वीडनकी हवाई सेनाका अध्यक्ष एक उच्च पदाधिकारी होता है, जिसकी सहायताके हेतु एक हवाई अमला रहता है। वायुयान-सञ्चालनकी क्रिया तथा वायु-युद्धकी विधि

सिखानेके लिए देशमें एक हवाई स्कूल भी है। सन् १९३७ के अन्तमें वायुयानों तथा सर्वकोटिके उड़ाकुओंकी संख्या क्रमशः २६० और १००० थी। इस समय देशकी हवाई सेना सात छोटे-छोटे दस्तोंमें बटी हुई है। इनमेंसे ४ दस्ते बम बरसानेवाले, २ पैदल या नौसेनाके सहयोगमें शत्रुकी खोज करनेवाले और केवल १ दस्ता आकाशमें युद्ध करनेवाला है। तीनों प्रकारके वायुयानोंकी यह भारी विषमता विशेषतया हवाई हमलोंका सामना करनेके समय हृदयमें खटकनेकी चीज है।

सैनिक परिपाटी—किसी भी देशकी रक्षाका प्रश्न सैनिकोंकी संख्यासे ही हल नहीं हो जाता। इसके लिए सैनिक परिपाटीकी भी आवश्यकता है। आजसे लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व वीर स्वीडोंने अपनी खोयी हुई स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेके लिए डैनिशोंके विरुद्ध तलवार उठायी थी। तबसे शान्तिमय जीवन व्यतीत करते रहनेके कारण उनका राष्ट्रीय लक्ष्य युद्ध द्वारा राज्य-विस्तार नहीं, वरन् स्वदेशकी रक्षा करना है। सन् १९३६ तक वह अनन्त शान्ति और संसारव्यापी निश्शस्त्रीकरणकी आशा करता रहा, जिसके कारण उसकी सरकार उत्तरोत्तर साम्यवादी प्रजातन्त्रात्मक और शान्तिप्रिय होती गयी। जो धन और युद्धकी सामग्री रंगरूटोंकी पूरी वार्षिक सेनाके सिखानेमें खर्च करनी पड़ती, उसे स्वीडन अपनी शान्तिपूर्ण नीतिके कारण बचाता रहा। लगभग दस वर्ष तक उसने अपनी सम्पूर्ण सेनाको फौजी झण्डेके नीचे न बुलाया। जैसा कि ऊपर कह आये हैं, स्वीडनके पैदल सिपाहियों तथा विशेषज्ञोंका प्रारम्भिक सैनिक शिक्षाकाल क्रमशः १७५ और २२५ दिनोंसे अधिक नहीं है। इन आंकड़ोंकी तुलना जब हम फिनलैण्डके सानुपातिक १२ तथा १८ महीनोंसे करते हैं, तब वहांकी निर्बलता स्वयंसिद्ध हो जाती है। जितना अधिक कोई स्कैण्डिनेवियामें ठहरता है, उतना ही अधिक वह महसूस करता है कि यूरोपके उत्तरी देशोंमें केवल फिनलैण्डने ही अपनी रक्षाकी समस्यापर गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिया है।

स्वीडनके प्रमुख सैनिक विशेषज्ञ कर्नल ब्राटने देशकी रक्षा-प्रणालीकी इसी मौलिक निर्बलतापर अपनी तर्जनी रखी है। इस अल्पकालीन सैन्य-सेवासे उत्पन्न निर्बलताको दूर करनेके लिए 'स्थायी सेना' के पदाधिकारी सदैव प्रयत्नशील रहे हैं, और आज भी यथाशक्ति कोशिश कर रहे हैं। इसके साथ ही वहांके सैनिकोंके लड़ाई करनेके हथियार पुराने ढङ्गके हैं, जिनका सुधार शीघ्रतासे किया जा सकता है। यहांकी सेना मोटरों तथा मशीनगनोंसे सुसज्जित आधुनिक कालकी सेनाओंके विरुद्ध युद्ध करनेमें सर्वथा अयोग्य है। अब मौजूदा प्रश्न यह है कि स्वीडन अपनी सेनाओंकी उन्नति किस प्रकार कर रहा है। देशकी राजधानीके आसपास नित्यप्रति सैनिक प्रदर्शन ही इसका एकमात्र उत्तर है। वह शान्तिपूर्वक अपनी रक्षित सेनाओंको बुला रहा है और उन्हें सैनिक शिक्षा दी जा रही है, जो उन्हें युद्धके प्रथम आघातको सहन करनेके लिए योग्य बनायेगी। अन्य लोग बन्दूक चलानेकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिए हर प्रकारसे बाध्य किये जा रहे हैं। अन्तमें विभिन्न रायफल क्लबोंका राष्ट्रीय सेनामें एकीकरण हो जाना, जिसमें देशका प्रत्येक स्वस्थ नवयुवक सक्रिय भाग लेगा, अवश्यम्भावी है।

स्वीडनका स्वदेश-रक्षाके लिए नैसर्गिक झुकाव अन्य तटस्थ राष्ट्रोंके लिए अनुकरणीय है। वह सदैव रूससे डरता रहा है, अतएव उसने अपने पूर्वीय तटपर ही रक्षाके तमाम साधन जुटाये हैं। रूसी राहुसे ही बचनेके लिए उसने अपनी उत्तरी सीमापर 'बोडेन'के किलेका निर्माण किया है, जो आर्कटिकसे आनेवाले मार्गकी भली भांति रक्षा करता है। यहीं समुद्र-तटसे चालीस मील दूर इसने देशान्तरमुखी प्रमुख रेलें बनायी हैं, ताकि आवश्यकता पड़नेपर वह शीघ्रातिशीघ्र अपनी सेनायें तथा युद्धकी सामग्री वहां भेज सके। धुर दक्षिणमें माल्मोंका प्रसिद्ध बन्दर है, जो रेल द्वारा गोथेनबर्गसे जुड़ा हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देशमें यातायातके मुख्य साधन हैं, जनतामें पर्याप्त सतर्कता है, चारों तरफ काफी फौजी तैयारी है, और सबसे अधिक उसमें स्वदेश-रक्षाके लिए स्वाभाविक झुकाव है।

उपर्युक्त साधन और गुण ही यदि एकमात्र वर्तमानकालीन युद्धमें विजय पानेके उपकरण होते, तो बहुतेरे देशोंको इतनी शीघ्रतासे जर्मनीके सम्मुख नतमस्तक होनेकी नौबत न आती। मिथ्याभिमानसे अपनेको सबल समझनेवाले राष्ट्र अपने निर्बल शत्रुको चारों ओरसे घेरकर आर्थिक युद्धमें पराजित करना ही अपनी रणचातुरी समझते हैं। इसलिए यह परमावश्यक है कि आक्रामक तथा आक्रान्त

दोनों ही अपनी युद्धोपयोगी सामग्रीके लिए स्वावलम्बित हों।

स्वीडनमें खाद्य तथा पेय पदार्थोंकी उपज पर्याप्त होती है। अतः उसे अपनी आवश्यकताओंके लिए किसी दूसरेका मुंह ताकना नहीं पड़ता। प्रति वर्ष उसे केवल २० सहस्र टन गेहूं विदेशोंसे मोल लेना पड़ता है। दक्षिणी स्वीडनकी कृषि-उपयोगी समतल भूमि आवश्यकता पड़नेपर नात्सियोंके लिए अनाजकी उत्तम मण्डी सिद्ध होगी। मध्य स्वीडनमें पशु-पालनका कार्य बहुतायतसे होता है। सन् १९३६ में देश-में ६,२०,००० घोड़े, २९,६२,००० मवेशी, ४,९०,००० भेड़ें और उनके बच्चे तथा १३,००००० सुअर थे। अतएव यह पूर्णतया स्पष्ट है कि लड़ाईके कालमें स्वीडनको मांस, मक्खन तथा पनीर आदिके लिए दूसरेका मुखापेक्षी नहीं होना पड़ेगा। स्टाकहोम और गोथेनबर्गके अक्षांशोंमें देशके विशाल कोणधारी बनोंका आरम्भ होता है। राजधानीके उत्तरमें डैनमोराका प्रसिद्ध खनिज प्रदेश है, जहां लोहा आदि युद्धो-पयोगी खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। यहीं ग्रङ्गेसबरीकी प्रसिद्ध लोहेकी खानें हैं, जहां प्रति वर्ष लगभग १० लाख टन कच्चा लोहा निकाला जाता है और आक्सेलोखण्डके बन्दरसे विदेशोंको भेजा जाता है। इसी प्रदेशमें बोफर्सकी सुविख्यात फैक्टरियां हैं, जहां देशकी आवश्यकताके लिए हथियार तथा गोली, बारूद आदि युद्धकी सामग्री तैयार की जाती है।

इस धनाढ्य प्रदेशके उत्तरमें केवल शीतकटिबन्धीय बन हैं। यहीं स्वीडनकी उन्नतिशील लैपलैण्डकी लोहेकी खानें हैं, जहांकी वार्षिक उपज १ करोड़ १० लाख टन है और जो जर्मनीके भावी आकर्षणका प्रमुख कारण कही जाती हैं। मध्य स्वीडनपर प्रभुत्व स्थापित कर लेनेका अर्थ वहांके तमाम कारखानों तथा वहांकी विशाल युद्ध-सामग्रीको छीन लेना है। यह प्रदेश प्रति वर्ष १ करोड़ ९० लाख पौण्डकी लागतका माल तैयार कर निर्यातके रूपमें बाहर भेजता है। निश्चय ही यह अत्यन्त लाभदायक व्यापारोपयोगी वस्तुओं-के उत्पादनका केन्द्र है, जिनसे जर्मनी बाल्कन देशोंसे लाभ-पूर्ण व्यापार कर सकता है। मध्य और उत्तरी स्वीडन प्रति वर्ष ४ करोड़की कीमतका कागज, लकड़ीका गूदा तथा लकड़ी बाहर भेजता है। यह रकम देशके कुल निर्यात-का लगभग ४९ प्रतिशत है, और नात्सियोंके आकर्षणका द्वितीय कारण हो सकती है। इस वृहत् सूचीकी पूर्तिके लिए यह बताना आवश्यक है कि स्वेडिश सरकारके पास विदेशी सरकारोंकी २० करोड़ पौण्डकी लम्बी रकम जमा है। विजित नार्वेका भी थोड़ा-सा सोना इसके पास जमा है।

स्वीडनका एकमात्र आयात, जिसकी उसे वास्तवमें चाह रहती है, ६० लाख टन कोयला है। इसे वह प्रति वर्ष इंगलैण्ड से खरीदता है। देशमें कोयलेकी कमी अभीसे महसूस होने लगी है। वर्तमान युद्धके कारण इंगलैण्डसे कोयला खरीदनेमें बड़ी कठिनाई पैदा हो गयी है। ऐसी परिस्थितिमें कच्चे लोहे-के बदले जर्मनी स्वीडनको कोयला भेजता रहेगा। इस प्रकार स्वीडन और जर्मनी दोनों ही अपनी-अपनी आवश्यकताओं-के लिए एक-दूसरेपर आश्रित हैं। स्वीडनसे लोहेका वार्षिक निर्यात अधिकसे अधिक १ करोड़ २० लाख टन है। इसमेंसे केवल जर्मनीने सन् १९३८ और १९३९ में प्रति वर्ष ८०-९० लाख टन लोहा खरीदा। इस समय जर्मनी और भी अधिक अपनी लोहेकी आवश्यकताके लिए स्वीडनपर निर्भर है; क्योंकि मित्र-राष्ट्रोंके घेरेके कारण फ्रान्स, स्पेन, उत्तरी अफ्रीका आदिसे उसके पास लोहा आना असम्भव हो गया है। ऐसी दशामें स्वीडनकी लोहेकी खानोंमें जर्मनीका स्वार्थ बढ़ गया है, और अब जर्मनीके हाथों लोहेका बेचना अथवा न बेचना केवल स्वीडनकी स्वेच्छापर ही नहीं निर्भर है। उसे अपने देशको हर हिटलरके क्रोधानलसे बचानेके लिए इच्छा रहते या न रहते हुए भी लोहेका भेजना जारी रखना पड़ेगा। इस समय उसकी स्वतन्त्रता उसके दो प्रबल पड़ोसी जर्मनी तथा रूसकी दयादृष्टिपर ही निर्भर है। दोनोंसे ही मैत्री रखनेमें उसका कल्याण है। एक राष्ट्रके भी मित्र होने-पर, दूसरा राष्ट्र इसपर चढ़ाई करनेकी मूर्खता न करेगा; क्योंकि ऐसी दशामें दो नये मित्रोंमें ही भीषण युद्ध छिड़ सकता है, और समस्त यूरोपको आपसमें बांटनेके उनके मन्सूबोंपर पानी फिर सकता है।

भाग्य या भूख ?

श्री मोहनसिंह सेंगर

देवकी बाबू हाथ धोकर खाना खानेके लिए आसनपर आ बैठे थे और उनकी पत्नी थाली परोस रही थी। सहसा थाली परोसना रोककर सुभद्राने कहा—"वह देखो। सुना तुमने ? आवाज आयी न ?"

"फिर वही आवाज ! आवाज ! काहेकी आवाज ?" झुझलानेके स्वरमें देवकी बाबूने कहा—"जब देखो तब वही आवाजकी रट लगी रहती है। मैं पूछता हूं, तुम्हें हो क्या गया है, सुभद्रा ? जब देखो तब वही लोगोंका राम-रसरा। कभी यह आवाज आयी, कभी वह आवाज आयी। मैं पूछता हूं, तुम्हें इससे मतलब ?"

"मतलब कैसे नहीं ?" तेवर चढ़ाकर थाली परोसते हुए सुभद्राने कहा—"अरे पड़ोसी न सही, पर इन्सानके नाते तो तुम्हारा कुछ फर्ज है ? मैं इतने दिनोंसे तुमसे कह रही हूं कि यह पड़ोसी रोज अपनी औरतको मारता-पीटता है। मुझसे यह नहीं देखा-सहा जाता। या तो जाकर उसे समझाओ-बुझाओ या फिर यह मकान ही छोड़ दो।"

"धीरे बोलो, धीरे,"—दबी हुई आवाजमें देवकी बाबूने कहा—"कहीं वह सुन न ले, वर्ना लेनेके देने पड़ जायंगे। खामखा बैठे-बिठाये झगड़ा करवाओगी।"

"झगड़ेकी इसमें बात ही क्या है ?" थाली परोसकर पतिके आगे सरकाते हुए सुभद्राने कहा।

"झगड़ेकी बात तो है ही। तुम कैसे कह सकती हो कि वह अपनी औरतको मारता है ? सुनी-सुनाई बातोंपर विश्वास……"

"सुनी-सुनाई बातोंपर विश्वास मैं नहीं करती;"—बीचमें ही बात काटकर सुभद्राने कहा—"पर अपने ही कानोंपर अविश्वास कैसे किया जाय ? यह जो रोज धमाधम् होती है, क्या सब हवाका या मेरे कानोंका ही फितूर है ?"

"न हो, पर धमाधम् उस पड़ोसीकी औरतके पिटनेकी ही होती है, यह कैसे मान लिया जाय ? अक्सर ऊपर छतपर खेलते हुए बच्चे जब इधर-उधर दौड़ते हैं, तब भी ऐसा शब्द होता है।"

"लेकिन रातको १०-१०, १२-१२ बजे किसके बच्चे छतपर खेलते और दौड़ते हैं ? तुमने तो जैसे मुझे बिलकुल पागल ही समझ रखा है।"

"हर्गिज नहीं। ऐसा समझता, तो तुम्हारे साथ शादी ही क्यों करता ?" मुस्कराते हुए देवकी बाबूने कहा—"लेकिन सुभद्रा, तुम यह नहीं सोचतीं कि इस जमानेमें भला कौन शरीफ आदमी अपनी औरतपर हाथ उठाता है ?"

"जी हां, क्यों नहीं ? इस अभागे देशमें अब भी ऐसे नर-पिशाचोंकी कमी नहीं है, जो अपनी औरतोंपर हाथ उठानेमें सङ्कोच करें।"

"देखो, हमने तो तुमको कभी फूलकी छड़ी तकसे नहीं छुआ।"

"छूते कैसे ? मैं कोई मोम या मिट्टीकी तो बनी हूं नहीं।"

"अच्छा-अच्छा, फिर, कहो भी, क्या बात है ?"

"अभी भी क्या कुछ कहनेको बाकी रह गया है ? इतने दिनोंसे तो तुमसे कह रही हूं; पर तुम्हारे कानपर जैसे जूं तक नहीं रेंगती। उल्टा बहस कर मुझे ही झुठलानेकी कोशिश करते हो। जाने तुम भी कैसे आदमी हो ! तुम्हारा दिल है या पत्थर ?"

"तो फिर तुम्हीं बताओ, क्या करूं ? बैठे-बिठाये उससे झगड़ा मोल लूं ? अगर मान भी लें कि वह अपनी औरतको पीटता है, तो हम क्या करें ? जब वह उसकी औरत है, तो वह चाहे उसे पीटे, चाहे प्यार करे, चाहे और कुछ। किसी तीसरे आदमीको उनके मामलेमें दखल देनेका क्या अधिकार ?"

"जब आप जैसे समझदार आदमी ही ऐसा कहते हैं, तो कुपढ़ और मूर्खोंके बारेमें क्या कहा जाय ? आखिर पुरुष जो हुए ! पतिके अबाध और असीम अधिकारोंकी दुहाई देनेमें हर पुरुषका स्वार्थ जो है। लेकिन क्या औरतोंके जी-जान नहीं है ? उनको कुछ भी अधिकार नहीं ? पुरुष उनका मनमाना उपयोग या दुरुपयोग करें और वे चूं भी

नहीं करें ? क्या उन्हें केवल जुल्म और ज्यादती सहने-भरका 'अधिकार' है ?''

देवकी बाबूने सुभद्राके चेहरेके बदलते हुए रङ्गसे भावी सङ्कटकी आशङ्काको भांप लिया। अभी वे उसके पीहर जानेके अल्टिमेटमका सामना करनेको तैयार न थे। हंसकर बात टालनेके विचारसे बोले—''लेकिन अधिकारोंकी बहस खानेके बाद भी तो हो सकती है।''

''वह तो किसी भी वक्त हो सकती है;''—तेवर चढ़ाकर सुभद्राने कहा—''लेकिन बहस करता कौन है ? तुम सब पुरुष-पुरुष एक हो। सारे अधिकारोंका ठेका तो तुम्हींने ले रखा है न ? औरत पिटती है, तो पिटे; जलील और अपमानित होती है तो हो, तुम्हें इससे क्या ?''

इस बार कुछ भी कहनेका साहस देवकी बाबूको नहीं हुआ। कुढ़ा करके वे चुपचाप बैठकमें चले गये।

(२)

देवकी बाबूके सामनेवाला मकान मनहूस है या उसमें भूतोंका आवास है या कोई खास खराबी है, ऐसा तो कभी सुना नहीं गया। फिर भी न मालूम क्यों, उसमें आकर रहनेवाला कोई भी किरायेदार ६-७ महीनोंसे ज्यादा उसमें न टिका। इसका ठीक-ठीक कारण तो आज भी एक पहेली बना हुआ है। मुहल्ले-भरमें यह बात एक खासे अच्छे तज़किरेका आधार बन गयी है और इस मकानमें आनेवाले हर आदमीकी सूरत-शक्ल और गति-विधिको मुहल्लेवाले असाधारण कुतूहलसे देखते हैं।

इस बार एक बङ्गाली बाबूके जानेके बाद कौन किरायेदार आकर उस मकानमें रहा है, यह किसीको नहीं मालूम। सुना है कि नया किरायेदार एक नौजवान बाबू है और साथमें एक औरत भी है, जो शायद उसकी बीवी है। मकानके इतिहासने आस-पासके लोगोंको उनके प्रति जितना उत्सुक बनाया था, उससे कहीं अधिक उत्सुकता पैदा हुई उनके रहन-सहनके रहस्यपूर्ण ढङ्गसे। वे कब घरमें होते थे और कब बाहर, यह बहुत कम लोगोंको ही मालूम होता था। घरका दरवाजा या तो भीतरसे बन्द होता था या उसमें बाहरसे ताला लगा होता था। ऊपरके कमरेकी सब खिड़कियां और दरवाजे हर वक्त बन्द रहते थे। रोशनदानसे दिखाई पड़नेवाले प्रकाशसे मालूम होता था कि कमरेमें रोशनी हो रही है। कभी-कभी तो बाहर ताला पड़ा होता था और भीतर रोशनी हो रही होती थी। इससे पैदा हुई उत्सुकताको लोग यह कहकर शान्त कर लिया करते थे कि शायद बाहर जाते समय वे लोग बिजली बत्ती गुल करना भूल गये होंगे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि बाहर ताला पड़ा होने और ऊपरके कमरेमें रोशनी होनेके साथ ही साथ वहांसे कभी-कभी किसीके रोने या जोर-जोरसे बोलने-बतलानेकी भी आवाज आ जाती थी। बिजलीकी बत्ती भी न मालूम कितनी बार जलती और बुझती रहती थी।

इस सम्बन्धमें सबसे अधिक उत्सुक थे देवकी बाबू और उनकी पत्नी सुभद्रा। अपने इन पड़ोसियोंकी चर्चा उनकी दिनचर्याका एक अङ्ग-सा बन गयी थी। इसे लेकर रोज कमसे कम एक बार हंसी-मजाक या बहस जरूर होती थी। ताले और रोशनीकी असम्बद्धता इस रहस्यको जैसे और भी गहन बनाती जा रही थी। कई बार सुभद्राने देवकी बाबूसे इसके सम्बन्धमें ठीक-ठीक जानने और कुछ करनेको कहा, पर उनकी समझमें ही नहीं आया कि क्या करें ? अगर कुछ समझमें आ भी जाता, तब भी बदनामीके डरसे कुछ करनेका साहस वे अपनेमें नहीं पा रहे थे। कांटेके तारमें उलझे हुए कुरतेको निकालनेके लिए धोतीको हिलगा लेना वे बुद्धिमत्ता नहीं समझ रहे थे। इसीलिए चुप थे। पर सुभद्राके तकाजे कम नहीं हो रहे थे।

उस दिन जब देवकी बाबू दफ्तरसे जरा देरसे लौटे, तो देखा कि सुभद्रा छतपर खड़ी हुई ईंटोंकी जालीमेंसे सामनेवाले मकानकी ओर बड़ी तन्मयतासे देख रही है। वहां कोई भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। खिड़कियां और दरवाजे सब यथापूर्व बन्द थे। रोशनदानसे प्रकाश बाहर झांक रहा था।

हाथसे इशारा करके सुभद्राने देवकी बाबूको अपने पास बुलाया और चुपकेसे उनके कानके पास मुंह करके कहा—''यहां चुपचाप खड़े होकर जरा सुनो, क्या हो रहा है ?''

दोनों सांस रोककर चुपचाप खड़े हो गये। किवाड़ बन्द होनेसे सामनेवाले मकानमें दिखाई तो कुछ भी नहीं दिया, पर किसीके लात-घूंसोंसे पिटने और सिसकनेकी आवाज जरूर आ रही थी। कभी-कभी किसीके कुछ बोलनेका भी आभास होता था; पर कौन क्या कह रहा है, यह साफ़-

साफ सुनाई नहीं पड़ रहा था। देवकी बाबूको जैसे अपने कानोंपर विश्वास नहीं हो रहा था। सांस रोके हुए वे सब कुछ बड़े ध्यानसे सुन रहे थे। बीच-बीचमें उन्हें ऐसी आहट भी मालूम होती थी, जैसे किसीका सिर फर्श या दीवारसे टकरा गया हो। अधिक देर तक वे वहां खड़े न रह सके। चुपचाप कमरेमें जाकर कपड़े बदलने लगे।

कुछ क्षण बाद सुभद्राने कमरेमें प्रवेश किया और बत्ती जलायी। जब दोनोंने एक-दूसरेके चेहरेकी ओर देखा, तो उन्हें ऐसा लगा कि आज उनके भाव एक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न नहीं हैं। सुभद्राकी आंखोंका पानी साफ झलक रहा था। वह गुमसुम बिजलीके स्विचके पास पड़े हुए सोफेपर पड़ रही। देवकी बाबूके मुंहसे जैसे आज कोई शब्द ही न निकल रहा हो। साहस कर, भर्रायी हुई आवाजमें, वे बोले—"सुभद्रा, जरा इसकी औरतसे कुछ हाल-हवाल तो मालूम करो कि बात क्या है, शायद फिर कुछ किया जा सके।"

"लेकिन कैसे करूं? मैंने तो बहुतेरी कोशिश की, मगर उसकी तो कभी सूरत ही दिखाई नहीं देती। मकानका दरवाजा तो हमेशा बन्द ही रहता है। फिर भी कुछ तो होना ही चाहिए।"

"देखो, कुछ सोचेंगे।" कहकर देवकी बाबू नीचे जानेको जीनेकी तरफ चल दिये।

(३)

सुभद्रा किसी कार्यवश ज्यों ही दरवाजेपर आयी, उसकी नजर सामनेवाले दरवाजेके पास खड़ी हुई एक मंझले कदकी दुबली-पतली स्त्रीपर पड़ी, जो अपने मैले-कुचैले वस्त्रोंको एक साफ सफेद चादरसे ढंके खड़ी थी। सुभद्राके पांवोंकी आहट पाकर उसने आंखें ऊपर कीं और दूसरे ही क्षण फिर नीचे कर लीं। सुभद्राने इस मौकेको हाथसे न खोनेका निश्चय कर एक तीर छोड़ा—

"बड़े भाग्य कि आज तुम्हारे दर्शन हो गये बहन!"

पर सामने खड़ी हुई स्त्रीने कुछ नहीं कहा। न आंखें ही ऊपर कीं।

सुभद्राने दूसरा तीर छोड़ा—"आज कहां जा रही हो, बहन?"

इस बार उसने अपनी शर्मीली आंखें ऊपर उठायीं और बड़े कातर स्वरमें केवल एक शब्द कहा—"अस्पताल।"

"क्यों, क्या कुछ तबियत खराब है?" सुभद्राने पूछा।

उत्तरमें कुछ कहनेके बजाय उसने आंखें फिर नीची करके स्वीकृतिमें सिर हिला दिया।

"तो क्या अकेली ही जाओगी?" सुभद्राने फिर प्रश्न किया।

"नहीं,"—उसी तरह आंखें नीची किये हुए कातर स्वरमें वह बोली—"वे साथ जा रहे हैं। तांगा लाने अड्डे तक गये हैं।"

"तुम कभी इधर क्यों नहीं आतीं?" सुभद्राने पूछा।

सुभद्राका वाक्य पूरा होते न होते उसका पति तांगा लेकर आ पहुंचा। उसकी बातका उत्तर वह नहीं दे सकी। सुभद्रा किवाड़की ओटमें हो गयी। दोनोंको लेकर तांगा चल पड़ा—अस्पताल या न मालूम और कहीं!

तांगेके लौटनेकी आशासे सुभद्रा घरका थोड़ा-बहुत काम करके बार-बार दरवाजेके पास आती और कुछ न पाकर फिर लौट जाती। ज्यों ही किसी घोड़ेकी टापोंसे तांगेके आनेकी आहट-सी होती, वह द्वारपर आ जाती और इच्छित व्यक्तियोंको तांगेमें न पाकर फिर लौट जाती। इस तरह उसके कोई डेढ़ घण्टे तक परेड करनेके बाद आखिर वही तांगा लौटा। पर इस बार दोनों साथ ही उतरे और भीतर जाकर दरवाजा बन्द कर लिया, इससे सुभद्राको अपनी पड़ोसिनसे बातचीत करनेका अवसर नहीं मिल सका। इसपर वह कुछ खिन्न और निराश-सी हुई।

इसके बाद तो सुभद्राने प्रायः दरवाजेके पास ही बने रहनेका जैसे नियम-सा बना लिया। जब भी कोई तांगा आता-जाता, वह अपने पड़ोसियोंसे भेंट होनेकी आशासे दरवाजे तक आती और फिर निराश होकर लौट जाती। इस तरह कई दिन, हफ्ते और महीने बीत गये; पर सुभद्राको फिर कभी अपने पड़ोसियोंके दर्शन नहीं हुए। कभी-कभी तो सुभद्राको यह भी आशङ्का होने लगती कि कहीं वे मकान छोड़कर चले न गये हों—क्योंकि मार-पीटकी 'धमाधम्' अब बहुत कम हो गयी थी; लेकिन ऊपरके कमरेके बन्द दरवाजे और रोशनदानमेंसे छनकर आनेवाली रोशनी इस आशङ्काको निर्मूल और निराधार बना देती थी।

(४)

घरके सहनमें आराम-कुर्सीपर बैठी हुई सुभद्रा कुछ बुन रही थी। नीचे रखी हुई डलियामें कुछ सलाइयां और ऊनका

एक गोला पड़ा था। उसकी दोनों आंखें दोनों हाथोंकी गतिपर स्थिर थीं। सहसा पीछेसे किसीके धीरेसे खांसनेकी आवाज आयी। सुभद्राने मुड़कर देखा। उसे अपनी पड़ोसिनको पहचाननेमें देर न लगी। "अरे, तुम आज इधर कैसे भूल पड़ीं?" कहते हुए वह हकबकाकर उठ खड़ी हुई। आगन्तुकाको हाथ पकड़कर कुर्सीकी ओर खींचते हुए वह बोली—"बैठो बहन, तुम्हारे तो फिर कभी दर्शन भी न हुए। मुझे तो तुमसे बहुत-सी बातें करनी थीं।"

आंखें नीची किये हुए कातर स्वरमें वह बोली—"बैठने या बातें करनेका यह समय नहीं है। मैं आपको एक कष्ट देने आयी हूं।"

"कष्ट कैसा, जो काम हो निःसङ्कोच कहो, बहन। आखिर मैं हूं किसलिए?"

"उनकी तबियत रातसे बहुत खराब है। कै-पर-कै कर रहे हैं। आप किसी दवा या डाक्टरका प्रबन्ध कर सकेंगी?"

"हां, हां, क्यों नहीं। मैं अभी नौकरको भेजकर डाक्टरको बुलवाये देती हूं। तुम उनके पास चलो।"

अपनी पड़ोसिनको विदा कर सुभद्राने नौकरके द्वारा डाक्टरको बुलवा भेजा। डाक्टरने आकर मरीजको देखा और बतलाया कि चिन्ताकी कोई बात नहीं, शराब अधिक पीनेका यह परिणाम है। उसने नुस्खा लिख दिया। नौकर शीघ्र ही दवा लेकर वहां दे आया।

कोई दो-ढाई घण्टे बीते होंगे कि सुभद्राने देखा, उसकी पड़ोसिन फिर आ रही है। इस बार उसकी आंखें नीचेकी ओर नहीं झुकी हैं। उसके नीले अधरोंपर फीकी-सी एक मुस्कराहट है। बड़ी विनम्रतासे हाथ जोड़कर वह बोली—"आपने आज उनकी जान बचा दी, वर्ना मैं अकेली असहाय अबला भला क्या करती? आपका यह एहसान मैं कभी भी न भूलूंगी।"

"छोड़ो भी इन बातोंको। अब तो बैठोगी न? उनकी तबियत अब कैसी है?"

"अब तो अच्छी है।"—जमीनपर बिछी शीतलपाटीपर बैठते हुए उसने कहा—"उन्हें दवासे आराम पहुंचा मालूम होता है, इसीसे नींद आ गयी है। अब मैं थोड़ी देर यहां बैठ सकती हूं।"

"लेकिन बहन, तुम अपना नाम तो बताओ। मैं क्या कहकर तुम्हें सम्बोधित करूं?"

"इसकी कोई खास जरूरत न हो, तो जाने ही दीजिये। आपके मुंहसे 'बहन' शब्द सुनकर मेरी छाती प्रसन्नता और गर्वसे फूल जाती है। कितना प्यारा लगता है यह शब्द!"—कुछ रुककर—"पर नहीं, आप-जैसी सतवन्ती और आदर्श गृहिणीकी बहन मुझ-जैसी पतिता कैसे हो सकती है? आप मुझे आजसे प्रेमा कह सकती हैं।"

सुभद्राने देखा—आगन्तुकाकी आंखें भर आयी हैं। उसके नीले अधरकी मुस्कराहट अदृश्य होकर जैसे अपनी नग्न कंपकंपी-भर छोड़ गयी है। उसके होठों, कपोलों, ललाट और कानोंके पास चोटोंके लाल-नीले निशान उसके गोरे शरीर पर दर्पणके मैलकी तरह सुस्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं। उसका प्रफुल्ल यौवन जैसे असमय ही जराजीर्ण होनेकी होड़ कर रहा हो। शरीरके घावों और मैले वस्त्रोंके रूपमें जैसे उसका विवर्ण सौन्दर्य अपनी मूक कथा स्वतः कह रहा था। आंखोंमें उमड़े हुए आंसुओंका उपसंहार तो जैसे सुभद्राके लिए दुःसह हो चला था। कुर्सीसे उठकर प्रेमाके पास बैठते हुए वह बोली—"यह तुम्हारा क्या हाल है, बहन?"

आंचलके छोरसे अपनी आंखें पोंछकर कृत्रिम मुस्कराहटसे प्रेमाने कहा—"कोई खास बात तो नहीं। इधर कई दिनोंसे स्वास्थ्य ठीक नहीं रह रहा है।"

"लेकिन तुम्हारी देहके ये निशान भी क्या अस्वस्थताकी ही वजहसे हैं?"

प्रेमा चुप रही। इसका कोई जवाब वह नहीं दे सकी।

"तुम तो बहन ऐसी सख्त निगरानीमें रहती हो कि शायद जेलके कैदी या पिंजरेके पञ्छी भी न रहते होंगे।"

इस बार भी प्रेमा कुछ न बोली।

"यह जो तुम्हारे साथ रहते हैं, यह कौन हैं?"

"यह तो मेरे......" सहसा प्रेमा रुक गयी। फिर कुछ क्लान्त-से स्वरमें बोली—"मेरे पति ही हैं।"

"लेकिन पति इतना क्रूर कैसे हो सकता है, बहन। यह रोज-रोजकी मार-पीट मुझसे तो सुनी नहीं जाती—न मालूम तुम कैसे सहती होगी?"

प्रेमा कुछ कहना चाहती थी, पर उसके मुंहसे जैसे कोई शब्द ही न निकल रहा हो। नीची आंखें किये वह चुपचाप

बैठी रही। सुभद्राने चिबुक पकड़कर जब उसका मुंह ऊपर उठाया, तो देखा कि उसकी आंखोंसे बड़े-बड़े मोतियोंके-से आंसू ढुलक रहे हैं। नीले पड़े हुए उसके होंठ भय और अन्तसके तूफानके कारण कांप रहे थे। सुभद्रा उसकी इस मुख-मुद्राको अधिक देर न देख सकी। उसकी आंखें बरस पड़ीं और प्रेमाको अपनी छातीसे लगाकर वह बोली—"मेरी भोली बच्ची, तू मुझे ही धोखा देनेकी कोशिश क्यों कर रही है ? सारी बातें मुझसे साफ-साफ क्यों नहीं कहती ? शायद मैं तेरी कुछ सहायता कर सकूं।"

"आपको भला धोखा देनेकी धृष्टता मैं कैसे कर सकती हूं ? सच बात तो यह है कि मुझे कुछ कहनेका साहस ही नहीं होता। अपनी इस दुरवस्थाका कारण मैं स्वयं और मेरी नासमझी है।"

"फिर भी, कुछ पता तो लगे कि बात क्या है ?"

"मैं लाहौरके एक प्रतिष्ठित घरानेकी लड़की हूं। यह जो मेरे साथ रह रहा है, मेरा पति नहीं है। इसका नाम राम······नहीं प्रकाश है। यह हमारे घरके पास ही रहता था। अपनी नासमझी और इसके प्रलोभनोंसे मैं इसके चक्करमें फंस गयी। हम दोनों एक-दूसरेको 'प्रेम' करने लगे। इस रहस्यका भण्डाफोड़ हो जानेके डरसे यह मुझे एक दिन चुपकेसे दिल्ली भगा लाया। यहां लाकर इसने मेरे साथ जो कुछ किया, वह बयानके बाहर है।"

यह कहकर प्रेमा फफक-फफककर रोने लगी। कुछ संभलकर उसने फिर कहना शुरू किया—"घरसे भागते समय मैं जो कुछ जेवर और रुपये-पैसे लायी थी, वह थोड़े ही दिनोंमें खत्म हो गये। अब हाथ तङ्ग हो चला। प्रकाशने इधर-उधर नौकरीकी बहुत तलाश की, पर अच्छी योग्यता न होनेसे इसमें कोई सफलता नहीं मिली। और कोई उपाय न देख इस नर-पिशाचने मुझे वेश्या-वृत्ति स्वीकार करनेपर मजबूर किया। पहले तो मैं इसके लिए राजी नहीं हुई, पर जब इसने और इसके मित्रोंने लगातार कई दिनों तक मुझे बुरी तरह मारा-पीटा और मेरी मिट्टी खराब की, तो मेरे सामने इस पाप-कर्मके लिए तैयार होनेके सिवा और कोई रास्ता ही नहीं रहा। पिछले दो-तीन महीनोंमें इसने मेरी जो दुर्दशा की है, वह मैं आपको जबानसे वर्णन कर नहीं बतला सकती। जरा यह देखिये—"कहकर प्रेमाने अपना जम्पर ऊपर उठाया। उसके सीनेके घावों और मारके निशानोंको देख सुभद्राने कांपकर अपनी आंखें बन्द कर लीं।

दोनों थोड़ी देर तक चुपचाप बैठी-बैठी आंसू बहाती रहीं। फिर प्रेमाने आंचलके छोरसे आंसू पोंछे और उठते हुए कहा—"अब जाती हूं। शायद उन्हें दवा देनी होगी। मौका मिला, तो फिर आऊंगी। मुझे इस नरकसे निकालनेकी आप कोई कोशिश करें—वर्ना सड़ तो रही ही हूं।"

"लेकिन बहन, तुमने अपने घरका पता तो बताया ही नहीं। बताओ तो तुम्हारे माता-पिताको खबर ही कर दें। शायद वे ही तुम्हारा उद्धार कर सकें।"

"नहीं, उनका नाम-पता मैं जान-बूझकर बताना नहीं चाहती। मेरा भाग आना क्या उनके लिए कम बदनामीका बायस होगा ? मैं या आप जानती हैं कि यह मेरी गलती और बेवकूफी है, पर दुनिया तो उन्हींको दोष देगी ? फिर मेरा उस घरमें वापस जाना समाजके कितने कर्णधारोंको सह्य और सुखकर होगा ? वह तो बल्कि जलेपर नमक छिड़कना होगा।"

"अच्छी बात है। मैं ही कुछ करूंगी।"

एक गहरा निःश्वास छोड़कर प्रेमा चली गयी।

(९)

प्रेमाके हाथसे चायका प्याला लेते हुए प्रकाशने कहा—"जाओ, जरा देखो दरवाजा कौन खटखटा रहा है ?"

प्रेमाने जाकर ज्यों ही दरवाजा खोला, देवकी बाबू खड़े दिखाई दिये। दरवाजा आधा खुला छोड़ एक लम्बा-सा घूंघट खींच वह पीछे हट गयी। देवकी बाबूने आंखें नीची किये हुए कहा—"प्रकाशकी तबियत अब कैसी है ? मैं आ सकता हूं ?"

"जी हां, खुशीसे तशरीफ ले आइये।" भीतर चारपाईपर बैठे-बैठे ही प्रकाशने कहा।

प्रेमा दूसरे कमरेमें चली गयी। देवकी बाबूने भीतर पहुंचकर प्रकाशकी चारपाईके पैतानेके कोनेपर बैठते हुए कहा—"कहिये, अब आपकी तबियत कैसी है ? जी कुछ हल्का हुआ ?"

"जी हां, अब तो काफी फर्क नजर आता है।"—बनावटी मुस्कराहटके साथ प्रकाशने कहा।

"आजकल मौसम बदल रहा है, इसलिए खाने-पीनेका एहतियात न रखनेसे वैसे ही हालत खराब होनेका अन्देशा रहता है।"

"जी हां, जी हां, बिलकुल। आप तो खुश हैं?"

"ईश्वरकी कृपा है।"

"और सुनाइये, क्या हाल-चाल है?"

"कोई खास तो नहीं। आज दफ्तरकी छुट्टी है, इसलिए सोचा, आपको चलकर देख ही आऊं। घरसे कई बार कहा भी, मगर आजकल कामका इतना दबाव है कि दम मारने तककी फुर्सत नहीं। इसीलिए आ नहीं सका। आप तो इतने सङ्कोचशील हैं कि इतने दिनोंसे यहां रहनेके बावजूद कभी सलाम-बन्दगी भी नहीं।"

"जी हां, बेशक। मुझे भी इसके लिए सख्त अफसोस है। लेकिन इधर मुझे बाहर इतना ज्यादा रहना पड़ा कि रातको १०-११ बजेसे पहले कभी घर लौटा ही नहीं। उस वक्त भला किसी शरीफ आदमीको क्या तकलीफ दी जाय।"

"तकलीफकी इसमें क्या बात है? वह घर और यह घर कोई दो थोड़े ही हैं। आप मुझे अपने बड़े भाईकी जगह समझें। जब जिस चीजकी जरूरत हो, आप बिना किसी झिझक या तकल्लुफके कह सकते हैं।"

"क्यों नहीं। भला इसमें तकल्लुफकी क्या बात?"

दस-दस रुपयेके दो नोट जेबसे निकालकर प्रकाशको देते हुए देवकी बाबूने कहा—"यह आपके खर्चके लिए हैं। मेरा अनुमान है कि आपका हाथ इन दिनों काफी तङ्ग होगा। फिर जब जरूरत पड़े, आप मुझसे कह सकते हैं।"

नोटोंकी ओर देखकर देवकी बाबूसे प्रकाशने कहा—"लेकिन जब मुझे जरूरत होगी, आपसे मांग लूंगा। इस वक्त तो कतई जरूरत नहीं है।"

"नहीं, यह सब कुछ नहीं। आपको इन्हें रखना ही होगा। अब मैं चलता हूं। फिर आऊंगा।" यह कहकर देवकी बाबू उठे और चुपचाप जीनेकी ओर चल दिये।

दो-एक क्षण चुपचाप प्रकाश सामने पड़े हुए नोटोंकी ओर देखता रहा। इतनेमें ही भय-विह्वल हरिणीकी तरह इधर-उधर देखती हुई प्रेमा वहां आ पहुंची। नोटोंको देखकर आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नतासे बोली—"ओहो, आज तो रुपये बरसे हैं, रुपये?"

"हां बरसे हैं। ले, ले जाकर अपने सिरपर मार ले।"—दोनों नोटोंको प्रेमाके सामने फेंकते हुए प्रकाशने कहा—"मालूम होता है, तूने इनके यहां जाकर सारा रोना रोया है। वर्ना इन्हें कैसे मालूम कि हमारे पास खानेतकको पैसे नहीं? और न मालूम किस मकसदसे देवकी बाबू यह रुपये दे गये हैं?"

"तुम हर वक्त दूसरोंपर शक ही किया करते हो। मैंने तो किसीसे कुछ भी नहीं कहा। वे क्या नहीं जानते कि तुम इतने दिनोंसे बीमार हो। काम-धन्धा भी कोई खास नहीं। इसीसे दे गये कुछ रुपये। और उनका मकसद क्या हो सकता है?"

कुछ देर चुप बैठे रहनेके बाद प्रकाशने कहा—"मालूम होता है कि तू मुझे यहां भी बे-फिक्रीसे न रहने देगी?"

बिना कुछ जवाब दिये प्रेमा जिस दरवाजेसे आयी थी, उसीमें होकर दूसरे कमरेमें चली गयी।

(६)

देवकी बाबू जब दफ्तरसे लौटे, तो सुभद्राने उन्हें बताया कि उनके पड़ोसी न मालूम कब मकान छोड़कर चले गये? पिछले ३ महीनोंका किराया भी, सुनते हैं, उन्होंने नहीं दिया। मकान-मालिकके मुंशीसे यह जानकर उन्हें और भी आश्चर्य हुआ कि युवकका नाम प्रकाश नहीं, रामचन्द्र था या.उन्हें उसने ऐसा ही बतलाया था। उन्हें और सुभद्राको इस बातका अफसोस तो हुआ कि वे प्रेमाके उद्धारके लिए कुछ भी नहीं कर सके, पर अब तो हो ही क्या सकता था? उसका अपना भाग्य!

प्रेमा और प्रकाशका उन्हें फिर कोई पता नहीं लगा। कुछ दिन बाद उनकी निगाह वहींके एक दैनिक पत्रके स्थानीय-समाचारोंके कालममें छपी निम्न खबरपर पड़ी—

"दुराचारके खानगी-अड्डोंका पुलिस इन दिनों बड़ी सरगर्मीसे पता लगा रही है। कल रातको उसने रामचन्द्र नामके एक 'शरीफ आदमी' के घरपर छापा मारा और उसे अपनी औरतसे पेशा करवाने और उसकी कमाईपर रहनेके जुर्ममें गिरफ्तार किया!"

इस तरहकी खबरें इस कालममें वे पहले भी कई बार पढ़ चुके हैं, पर न मालूम क्यों आज इसे पढ़कर वे अपने आंसू न रोक सके!

———

अछूतोद्धारके कुछ प्रचण्ड उपाय

श्री सन्तराम, बी० ए०

इस कलिकालमें जो अकेला है, असङ्गठित है, जो अपने भाइयोंके साथ मिलकर नहीं रहता, वही दुर्बल है। उसका पराभव, वरन् विनाश अवश्यम्भावी है। मुट्ठीभर लोग भी जब दृढ़तापूर्वक सङ्गठित हो जाते हैं, तो बहुसंख्यक जातिका मुंह मोड़ देते हैं। सङ्गठित असत्य भी असङ्गठित सत्यको दबा लेता है। भारतमें हिन्दुओंकी दुर्दशाका मूल कारण इसी सिद्धान्तकी अवहेलना है। हिन्दुओंने अपनी दुर्दशापर कभी इस दृष्टिसे विचार ही नहीं किया। वे चिरकालसे अपनेको बेगाना बनाते आ रहे हैं, अपने बन्धु-बान्धवोंको धक्के देकर और ठोकरें मारकर हिन्दू-समाजसे बाहर ढकेलते आ रहे हैं; बेगानोंको, वरन् बाहर निकले हुए अपने ही बन्धुओंको अपनानेका कभी इन्हें विचार तक नहीं आता। इनका सारा तत्त्वज्ञान ही फूट, जुदाई और पृथक्त्वका तत्त्वज्ञान है। इनको प्रत्येक वस्तुमें भिन्नता दिखलानेमें ही प्रसन्नता होती है। ये राष्ट्रको चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—और अगणित उपवर्णोंमें, स्त्रीको तीन प्रकारों—पद्मिनी, चित्रिणी और शङ्खिनी—में, पुरुषको तीन भेदों—शश, वृष और अश्व—में बांटकर ही आनन्दित होते हैं। ये एक ईश्वरमें तो सब भूतोंको देख सकते हैं; परन्तु सब भूतोंमें एक ईश्वरको देखना इन्होंने नहीं सीखा। इसीलिए ये सामूहिक जीवनकी महत्ताको स्वीकार न करके सारा बल व्यक्तिगत पवित्रतापर ही देते हैं। इस व्यक्तिगत पवित्रताका भाव इनमें यहां तक बढ़ गया है कि आज यह कहावत है—तेरह चूल्हे और नौ कन्नौजिये।

सहस्रों वर्षोंसे अछूत और भील लोग भारतमें रहते आ रहे हैं। परन्तु सवर्ण हिन्दुओंको कभी इनको राष्ट्रका अङ्ग बनानेका विचार तक नहीं आया। जिस प्रकार वे रामायणकालमें हिन्दू-समाजसे बिलकुल अलग थे, आज भी उसी प्रकार पृथक् पड़े हैं। हिन्दुओंने इस इस भयका कभी अनुभव ही नहीं किया। उन्हें यह विचार तक नहीं आया कि इस प्रकार अलग पड़े रहनेसे ये लोग भी एक दिन हमारे राष्ट्रके लिए भारी भयका रूप धारण कर सकते हैं। अब जब वे ईसाई और मुसलमान होने लगे हैं, तो हिन्दुओंके कानपर भी जूं-सी रेंगने लगी है। परन्तु इस भयकी गम्भीरताका उन्होंने अभी तक भी यथोचित रूपसे अनुभव नहीं किया। इसीलिए वे अस्पृश्यता-निवारणके नामपर जो उपाय कर रहे हैं वे केवल कामचलाऊ हैं; उनसे अस्पृश्यताकी जड़ नहीं कट सकती; हां, कुछ कालके लिए अछूतोंका हाहाकार चाहे बेशक बन्द हो जाय तो हो जाय। परन्तु हिन्दू राष्ट्रके शाश्वत कल्याणके लिए यह आवश्यक है कि अस्पृश्यताका महारोग सदाके लिए दूर हो जाय। अछूत लोग ईसाई या मुसलमान बनकर सवर्ण हिन्दुओंके लिए कहीं भारी सङ्कटका कारण न हो जायं, यदि इसी भावसे उनके आंसुओंको पोंछनेका दिखलावा किया जायगा, तो इसका फल सिवा पश्चात्तापके और कुछ न होगा। कारण यह कि काठकी हण्डिया बहुत दिन नहीं चढ़ सकती।

अछूतपन स्वयं कोई रोग नहीं, यह वर्ण-भेद-रूपी महाव्याधिका एक बाह्य लक्षण है। वर्ण-भेद क्रमिक अछूतपन (graded untouchability) है। इसमें ब्राह्मणसे लेकर भङ्गी तक सभी हिन्दू एक-दूसरेके लिए अछूत हैं, अन्तर केवल उनकी अस्पृश्यताके अंशका है। उनमेंसे कोई कम अछूत है और कोई अधिक। इसलिए जब तक जाति-भेदका समूल नाश नहीं होता, तब तक अस्पृश्यताका मूलोच्छेदन सम्भव नहीं। हरिजन-सेवक-सङ्घके प्रधान मन्त्री श्रीयुत अमृतलाल व० ठक्करने भी इस सत्यको सङ्घकी सन् १९३२-३३ की रिपोर्टमें इन शब्दोंमें स्वीकार किया है—"परन्तु भारतमें आजकल जिस प्रकारकी अस्पृश्यता प्रचलित है, यद्यपि उसका सम्बन्ध मैले काम करने और मैला भोजन खानेके साथ है, तो भी ये बातें उसका आधार नहीं। संस्थाके रूपमें, यह वर्ण-भेदका युक्ति-सङ्गत परिणाम है। यह वर्ण-भेद हिन्दू सामाजिक सङ्गठनका एक अङ्ग प्रतीत होता है। इसलिए अस्पृश्यताका मूलोच्छेद केवल वर्तमान वर्ण-भेदको मिटा देने या कमसे कम उसका रूपान्तर कर देनेसे ही हो सकता है। हमारा सङ्घ इनमेंसे कोई भी काम नहीं

कर रहा है, क्योंकि हमारा उद्देश्य अधिक परिमित है।"

अस्पृश्यता-निवारणकी दो रीतियां हो सकती हैं। कुछ सवर्ण हिन्दू यह माने बैठे हैं कि अस्पृश्यताका सम्बन्ध अछूत व्यक्तिके अपने व्यक्तिगत आचरणके साथ है। यदि वह दरिद्र एवं दुखी है, तो इसका कारण यह है कि वह अवश्य पापी एवं दुराचारी है। इस सिद्धान्तको मानकर इस विचारके समाज-सुधारक सारा बल अछूतोंमें वैयक्तिक सद्गुण उत्पन्न करनेपर देते हैं। इसलिए ये लोग अछूतोंमें मादक द्रव्योंके त्याग, व्यायाम, स्वच्छता, सहयोग, पुस्तकालयों और स्कूलोंका प्रचार करते हैं। उनकी धारणा है कि इससे अछूत अधिक अच्छे और पुण्यात्मा बन जायंगे।

परन्तु इस प्रश्नके समाधानकी एक और रीति भी है। उसका आधार यह सिद्धान्त है कि मनुष्यका दुःखी या सुखी, दुरात्मा या पुण्यात्मा होना उस परिस्थिति और अवस्थापर निर्भर करता है, जिसमें रहनेके लिए वह विवश होता है। यदि कोई व्यक्ति दुःखी अथवा दरिद्र है, तो इसका कारण यह है कि उसकी परिस्थिति अनुकूल नहीं। निस्सन्देह इन दोनों रीतियोंमेंसे पिछली रीति अधिक ठीक है। पहली रीतिसे हो सकता है कि इने-गिने कुछ दलित उस वर्गके समतलसे ऊपर उठ जायं, जिसमें उनका जन्म हुआ है। परन्तु यह रीति सारी अछूत जातिको साधारण रूपसे ऊपर नहीं उठा सकती। दलितोद्धार-मण्डलों, हरिजन-सेवक-सङ्घों और आर्यसमाजियोंका उद्देश्य अछूत जातिके थोड़े-से लड़कों या अटकलपच्चू कुछ लोगोंकी सहायता करना नहीं, वरन् सारी अछूत जातिको उठाकर उच्च समतलपर ले जाना होना चाहिए। इसलिए इन संस्थाओंको अपनी शक्ति ऐसे कामोंमें नष्ट नहीं करनी चाहिए, जिनका उद्देश्य अछूतोंमें वैयक्तिक सद्गुण उत्पन्न करना है। इसके विपरीत इनकी सारी शक्ति उस कार्यक्रमपर लगनी चाहिए, जिससे अछूतोंकी सामाजिक परिस्थितिमें परिवर्तन हो सकता है। इसके लिए कतिपय क्रियात्मक उपाय ये हैं :—

१. नागरिक अधिकारोंका अभियान

अस्पृश्यता-निवारक सङ्घोंको सबसे पहले जो काम हाथमें लेना चाहिए, वह यह है कि वे समूचे भारतमें अछूतोंको उनके नागरिक अधिकार दिलाने—यथा ग्राम-कूपसे जल भरने, स्कूलमें भरती होने, टांगा आदि वाहनोंमें बैठने—के लिए मुहिम जारी करें। ग्रामोंमें ये काम करनेसे ही हिन्दू-समाजमें वह आवश्यक सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न हो सकती है, जिसके बिना अछूतोंके लिए समताकी सामाजिक स्थिति प्राप्त करना कभी सम्भव न होगा। परन्तु इन अछूतोद्धारकोंको यह जान लेना आवश्यक है कि यदि नागरिक अधिकारोंका यह अभियान चलाया गया, तो इन्हें किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। कुछ वर्ष हुए जब बम्बई प्रान्तके कोलाबा और नासिक जिलोंमें डीप्रेसड क्लासिज इन्स्टीट्यूट और सोशल इक्वालिटी लीगने ऐसी मुहिम जारी की थी, तो वहां क्या कुछ घटनायें घटित हुई थीं? सबसे पहले तो अछूतों और सवर्ण हिन्दुओंमें फिसाद होंगे। उनमें सिरफटौल होगा और फौजदारी मुकद्दमे चलेंगे। इस द्वन्द्वमें अस्पृश्योंको बहुत हानि उठानी पड़ेगी, क्योंकि अधिकार-प्राप्त लोग सदा उनके विरुद्ध होंगे। दूसरी बात यह है कि ज्यों ही ग्रामवासी देखेंगे कि अछूत हमारी समताका पद प्राप्त करनेका उद्योग कर रहे हैं, वे सम्भवतः तत्काल अछूतोंका पूर्ण बहिष्कार कर देंगे। हमें हिंसा, कष्ट, बेकारी एवं अनशनकी वे कहानियां भूली नहीं, जो अछूतोंने स्टार्ट कमेटीके सामने सुनायी थीं। श्री० अमृतलाल व० ठक्कर भी उस कमेटीके सदस्य थे। यह शस्त्र कितना कठोर है और अछूतोंके अपनी पतित अवस्थासे ऊपर उठनेके उद्योगोंको रोकनेमें इसकी शक्ति कितनी भयङ्कर है, इस विषयमें कुछ अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं।

हमने केवल दो ही ऐसी रुकावटोंका उल्लेख किया है, जो समाज-सुधारकोंको दूर करनी पड़ेंगी, तभी सामाजिक अधिकारोंका यह अभियान सफल हो सकेगा। समाज-सुधारक संस्थाओंको गांवोंमें कर्मचारियोंकी एक सेना रखनी होगी, जो अछूतोंको उनके अधिकारोंकी प्राप्तिके निमित्त युद्ध करनेके लिए उत्साहित करेगी और देहातमें उत्पन्न होनेवाले कानूनी झगड़ोंको सफल बनानेमें अछूतोंको सहायता देगी। यह कार्य-प्रणाली इतनी अमोघ है कि निःसङ्कोच भावसे यह कहा जा सकता है कि अछूतोद्धारक संस्थाओंको शेष सब बातोंके सामने इस कामको आधार-भूत और प्रमुख समझना चाहिए। यह सत्य है कि इस कार्यक्रमपर आचरण करनेसे सामाजिक गड़बड़ और मार-पीट होनेकी भारी

आशङ्का है, परन्तु इससे बचना किसी प्रकार सम्भव नहीं। इस गड़बड़से डरनेसे अस्पृश्यताकी जड़ उखाड़नेमें कभी सफलता नहीं हो सकती।

जो लोग यह समझे हुए हैं कि सवर्ण हिन्दुओंमें चुपचाप युक्तियुक्त विचारोंका प्रचार होते रहनेसे उनकी कट्टरता एवं मूर्खता दूर हो जायगी और वे छूतछातको छोड़ देंगे, वे भारी भ्रममें हैं। कट्टरपन्थी सवर्ण हिन्दुओंमें चुपके-चुपके बुद्धि-सङ्गत विचारोंका सञ्चार करनेसे अछूत जातियोंका उद्धार नहीं हो सकता। सबसे पहली बात तो यह है, शेष सब मनुष्योंकी भांति सवर्ण हिन्दू दलितोंसे छूतछात करनेमें रूढ़िका दास है। प्रायः लोग किसी मनुष्यके उपदेश अथवा प्रचारके कारण ही अपने उस आचरणका परित्याग नहीं कर देते, जिसकी उनमें प्रथा है। परन्तु जब इस रूढ़ि-मूलक आचरणके पीछे धर्मकी व्यवस्था भी हो या मान ली गयी हो, तो केवल प्रचार और उपदेश, यदि इस आचरणका प्रतिवाद न किया जाय और इसके मार्गमें बाधा न उपस्थित की जाय, मनपर कोई भी प्रभाव उत्पन्न किये बिना हवाके साथ ही कुहरेकी भांति उड़ जाता है। अछूतोंका उद्धार केवल तभी हो सकता है, जब सवर्ण हिन्दुओंको सोचनेके लिए बाध्य किया जाय और अनुभव कराया जाय कि इन्हें अपने आचरणको अवश्य बदलना पड़ेगा। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब आप उनके रूढ़ि-मूलक आचरणके विरुद्ध प्रत्यक्ष रूपसे कार्यवाही करके सङ्कट उत्पन्न कर दें। यह सङ्कट उन्हें सोचनेके लिए बाध्य करेगा। जब एक बार वे सोचना आरम्भ कर देंगे, तो फिर वे किसी दूसरी रीतिकी अपेक्षा अपनेको बदलनेके लिए अधिक उद्यत हो जायंगे। अछूतोद्धारके विरोधियोंको यथासम्भव बहुत कम चिढ़ाने अथवा दूसरे शब्दोंमें न्यूनतम बाधा और चुपके-चुपके बुद्धि-सङ्गत विचारोंका सञ्चार करनेकी नीतिमें बड़ा दोष यह है कि इससे सवर्ण हिन्दुओंको सोचनेके लिए विवश नहीं होना पड़ता और न सङ्कट ही उपस्थित होता है। महाड़के चौदर तालाब, नासिकके कलारम मन्दिर और मलाबारके गुरुवयूर मन्दिरके सम्बन्धमें प्रत्यक्ष रूपसे कार्यवाही करनेसे थोड़े ही दिनोंमें जो परिणाम हुआ है वह, सुधारक लोग चाहे दस लाख दिन तक उपदेश करते रहते, कभी न होता। मुसलमानोंके सम्बन्धमें आज हिन्दुओंका और विशेषतः कांग्रेसका जो अति उदार भाव हम देख रहे हैं, वह कभी न होता, यदि मुसलमान कांग्रेस और हिन्दुओंको अपने विषयमें विचार करनेके लिए बाध्य न कर देते। इसलिए यह परम आवश्यक है कि अस्पृश्यता-निवारणका दम भरनेवाली संस्थायें अस्पृश्योंको सामाजिक अधिकार दिलानेके लिए प्रत्यक्षतः कार्यवाही करनेके इस अभियानको हाथमें लें। इस अभियानमें जो कष्ट और कठिनाइयां आयेंगी, उनका हमें ज्ञान है। गत अनुभवके आधारपर हम कह सकते हैं कि यदि सुधारक लोग इस कार्यमें सफलता चाहते हैं, तो शान्ति और व्यवस्थाकी उत्तरदायी शक्तियोंका उनके पक्षमें होना आवश्यक है। इसीलिए जान-बूझकर इसमें मन्दिर-प्रवेशका कार्यक्रम सम्मिलित नहीं किया गया और इसे सामाजिक प्रकारके सार्वजनिक अधिकारों तक ही सीमित रखा गया है। इन अधिकारोंकी रक्षा करना गवर्नमेण्टका कर्तव्य है।

सबके लिए समान अवसर

अस्पृश्यता-निवारक सङ्घोंको दूसरा काम यह करना चाहिए कि अछूतोंके लिए उन्नतिके समान अवसर दिये जायं। अछूतोंको समान अवसर न मिलनेका कारण उनका अछूतपन है। कौन नहीं जानता कि गांवों एवं नगरोंमें अछूत भाई भाजी-तरकारी और दूध-मक्खन आदि बेचकर दूसरे लोगोंकी भांति आजीविका नहीं चला सकते। सवर्ण हिन्दू ये खाद्य-पदार्थ एक अहिन्दूसे मोल ले लेगा, परन्तु दलित हिन्दूसे नहीं।

नौकरीके सम्बन्धमें अछूतकी दशा बहुत ही बुरी है। सरकारी विभागोंमें उसके लिए रुकावट है। उसे कुछ दिन पहले तक कान्स्टेबल, वरन् हरकारा तक नहीं बनाया जाता था। कला-कौशलमें भी उसकी दशा कुछ अच्छी नहीं। अमेरिकामें नीग्रोकी भांति, उसे समृद्धिकालमें सबसे पीछे नौकर रखा जाता और दुरवस्थामें सबसे पहले निकाल दिया जाता है। यदि कहीं वह पैर जमा भी ले, तो उसकी उन्नतिकी सम्भावना क्या है? अहमदाबाद और बम्बईकी मिलोंमें उसे सबसे कम पारिश्रमिकवाले विभागमें सीमित रखा जाता है, जहां वह केवल २५) मासिक कमा सकता है। अधिक पारिश्रमिकवाले विभाग, जैसे कि बुनाई-विभाग, उसके लिए स्थायी रूपसे बन्द हैं। कम वेतनवाले विभागोंमें

भी वह सर्वोच्च पदपर नहीं पहुंच सकता। अफसरका पद सवर्ण हिन्दूके लिए रक्षित रहता है। अछूत कर्मचारी चाहे कितना ही निपुण और पुराना क्यों न हो, सदा उसके अधीन ही बना रहता है। जिन विभागोंमें फुटकर कामके अनुसार वेतन दिया जाता है, वहां भी वह सामाजिक भेदके कारण सवर्ण हिन्दू श्रमिक-जितना नहीं कमा सकता। लपेटनेके विभाग और रीलिङ्ग डिपार्टमेण्टमें काम करनेवाली अछूत जातिकी मजदूर स्त्रियोंको बहुधा यह शिकायत बनी रहती है कि नायकिनें कच्चा माल सब स्त्रियोंमें एक समान या उचित अनुपातसे बांटनेके बजाय साराका सारा सवर्ण हिन्दू मजदूरनोंमें ही बांट देती हैं और उन्हें खाली हाथ बैठे रहना पड़ता है। अस्पृश्यता-निवारक सङ्घोंको उचित है कि वे इस आचरणकी निन्दामें लोकमत उत्पन्न करके और असमताकी आवश्यक घटनाओंपर कार्यवाही करनेके लिए समितियां स्थापित करके इस प्रश्नको हाथमें लें। रुईके कारखानोंमें बुनाई-विभाग अछूतोंके लिए खुल जानेसे बहुत-से अछूतोंको अच्छी आजीविका हाथ लग जायगी। सवर्णोंकी बहुत-सी प्राइवेट कम्पनियां और फर्म अछूतोंको उनकी योग्यताके अनुसार विभिन्न काम देकर उनकी बड़ी सहायता कर सकते हैं।

सामाजिक सम्पर्क

अन्ततः, अस्पृश्यता-निवारक संस्थाओंको चाहिए कि वे उस घिन और मचलीको दूर करनेका प्रयत्न करें, जो सवर्ण हिन्दू अछूतोंके प्रति अनुभव करते हैं और जिसके कारण ये दो विभाग एक-दूसरेसे इतने पृथक् रहे हैं कि सर्वथा भिन्न और जुदा अस्तित्व बन गये हैं। इसमें सफलता प्राप्त करनेकी सर्वोत्तम रीति दोनोंमें अधिक घनिष्टता उत्पन्न करना है। किसी कार्यमें मिलकर सम्मिलित होनेसे ही वह अजनबीपनका भाव दूर हो सकता है, जो दो व्यक्ति एक-दूसरेसे मिलनेपर अनुभव करते हैं। इसकी सर्वोत्तम रीति यह हो सकती है कि सवर्ण हिन्दू अछूतोंको अपने घरोंमें अतिथि या सेवकके रूपमें प्रविष्ट करें। इस प्रकार जो सच्चा सम्पर्क स्थापित होगा, वह दोनोंको सम्मिलित जीवनसे परिचित कर देगा और उस एकताके लिए मार्ग तैयार करेगा, जिसके लिए हम सब यत्नवान हैं। परन्तु खेद है कि बहुत-से सवर्ण हिन्दू, जो अपनेको अछूतोद्धारके समर्थक प्रकट करते हैं, इसके लिए तैयार नहीं।

महात्माजीके दस दिनके उस अनशन व्रतमें, जिसने समूचे भारतको हिला दिया था, वली पारली और पहाड़में अनेक सवर्ण हिन्दू नौकरोंने इसलिए काम छोड़ दिया था कि उनके स्वामियोंने अछूतोंको भाई बनाकर छूतछातकी प्रथाको तोड़ दिया था। आशा थी कि वे लोग नौकरोंकी स्ट्राइकको तोड़कर पथ-भ्रष्ट हिन्दुओंके लिए अपने-अपने नगरोंमें उदाहरण प्रतिष्ठित करेंगे। परन्तु उन्होंने इसके बजाय कट्टरपन्थियोंके साथ सन्धि करके उनको पुष्ट किया। नहीं कह सकते कि अछूतोंके ऐसे फसली दोस्त उनके कहां तक सहायक होंगे। विपत्तिग्रस्त लोगोंको इस बातसे बहुत कम सान्त्वना मिल सकती है कि उनके भी हितचिन्तक हैं, यदि वे हितचिन्तक सहानुभूति दिखानेके सिवा और कुछ नहीं करते। अछूतोंको इन सवर्ण हिन्दू हितचिन्तकोंपर तब तक विश्वास न होगा, जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि यदि उन्हें अछूतोंके लिए अपने बन्धु-बान्धवोंसे लड़ना पड़े, तो वे उनसे ठीक उसी प्रकार लड़नेको तैयार हैं, जिस प्रकार अमेरिकामें नीग्रो लोगोंको दासत्वसे छुड़ानेके लिए उत्तरके गोरे अपने ही बन्धु-बान्धव दक्षिणके गोरोंके साथ लड़े थे। परन्तु इस बातको अलग रखते हुए भी यह आवश्यक प्रतीत होता है कि अछूतोद्धारक संस्थायें अछूतों और सवर्ण हिन्दुओंके बीच सम्पर्क स्थापित करनेकी आवश्यकता उपर्युक्त रीतिसे हिन्दुओंके हृदयपर अङ्कित कर दें।

कर्मचारी

इस कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए कर्मचारियोंकी एक बड़ी सेना रखनी पड़ेगी। सामाजिक कार्यकर्ता नियुक्त करना कदाचित् एक छोटा-सा प्रश्न समझा जाय, परन्तु वास्तवमें देखा जाय, तो इस कार्यके लिए उपयुक्त मनुष्योंका निर्वाचन एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बात है। किसी कामको करानेके लिए पैसे लेकर काम करनेवाले बहुतेरे मिल जाते हैं। परन्तु ऐसे भाड़ेके टट्टू अस्पृश्यता-निवारक सङ्घका उद्देश्य पूरा नहीं कर सकते। महात्मा टालस्टायका कथन है—"जिनके हृदयमें प्रेम है, वही सेवा कर सकते हैं।" हमारी रायमें अछूत जातियोंमेंसे लिये हुए कार्यकर्ता इस कसौटीपर अधिक खरे

उतर सकते हैं। इसलिए किसे कार्यकर्ता नियुक्त करना चाहिए और किसे नहीं, इस बातका निर्णय करते समय प्रश्नके इस अंशको भी दृष्टिमें रखना चाहिए। यह नहीं कहा जा सकता कि अछूतोंमें ऐसे लुच्चे नहीं, जो सामाजिक सेवाको अपनी अन्तिम शरण बनाते हैं। परन्तु स्थूल रूपसे कहें, तो कह सकते हैं कि अछूतोंमेंसे लिया हुआ कर्मचारी इस कामको प्रेमसे करेगा। और यह बात अस्पृश्यता-निवारक संस्थाओंकी सफलताके लिए परम आवश्यक है।

दूसरी बात यह है कि कई ऐसी संस्थायें हैं, जो किसी श्रेणी अथवा उद्देश्यका विचार छोड़कर समाज-सेवाके काममें लगी हुई हैं। यदि इनको कुछ सहायता मिल जाय, तो वे अस्पृश्यता-निवारणका काम भी परिशिष्टके रूपमें करनेको तैयार हो सकती हैं। परन्तु इस प्रकारका किरायेपर कराया हुआ काम कोई स्थायी प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकता। काम करनेवालोंके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि उनका सारा ध्यान एक काम और केवल एक ही काममें लगा हो। हम ऐसी संस्थायें और सङ्घ चाहते हैं, जिन्होंने जान-बूझकर अपनेको संकुचित बनाया हो, ताकि वे अपने कामके लिए उत्साह रख सकें। यह काम यदि किसीको देना हो, तो उन लोगोंको देना चाहिए, जो शेष सब काम छोड़कर केवल अछूतोंके काममें ही लगनेको तैयार हों।

यह बात कदाचित् बालफोरने कही थी कि ब्रिटिश-साम्राज्यको कोई राजनियम नहीं, वरन् प्रेम ही बनाये रख सकता है। यही बात हिन्दू-समाजपर भी समान रूपसे चरितार्थ होती है। अछूत और सवर्ण हिन्दुओंको किसी कानूनसे, विशेषतः पृथक् निर्वाचनके बजाय सम्मिलित निर्वाचनसे, इकट्ठा नहीं रखा जा सकता। केवल एक ही बात इनको संयुक्त रख सकती है और वह है प्रेम। परिवारसे बाहर, केवल न्यायसे ही प्रेमका द्वार खुलना सम्भव है। इसलिए अस्पृश्यता-निवारक संस्थाओंका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे देखें कि सवर्ण हिन्दू अछूतके साथ न्याय करता है। यदि वह न करता हो, तो उससे कराया जाय। यदि ये संस्थायें ऐसा नहीं कर सकतीं, तो इनका होना और न होना दोनों बराबर है।

गीत

कब हंसे ये प्राण मेरे ?
कल्प बीते मौन, कब—
पूरे हुए अरमान मेरे ?
कब हंसे ये प्राण मेरे ??

साधना नीरव हृदयकी
हो सकी कब सफल ? आकुल
कब मिटी तृष्णा प्रणयकी ?
कब खिले मानस-विपिनमें
सुख-मुकुल अम्लान मेरे ?
कब हंसे ये प्राण मेरे ??

एक युगसे मैं अकिञ्चन
कर रहा जिन प्रिय पदोंपर
प्रेम - पुष्पाञ्जलि समर्पण ;
कब मिले उस देवताके
कुछ मधुर वरदान एरे ?
कब हंसे ये प्राण मेरे ??

—जितेन्द्रकुमार।

समाज किधर जा रहा है ?

श्री कस्तूरमल बांठिया, बी० काम०

पूर्वी और पाश्चात्य संस्कृतिका हमारे देशमें आज घोर सङ्घर्ष चल रहा है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि जीवनके प्रत्येक ही क्षेत्रमें पाश्चात्य संस्कृति पौर्वात्य संस्कृतिपर आज इतना अधिक आतङ्क जमाती जा रही है जिसकी कुछ हद नहीं। यह सङ्घर्ष मानवीय शक्ति द्वारा रोका जा सकेगा अथवा इसमें पौर्वात्य संस्कृति अपना रूप अविकल रख सकेगी, यह कहनेकी कोई हिमाकत नहीं कर सकता। और न यही कोई बतला सकता है कि इस सङ्घर्षसे निकलनेवाली नवीन संस्कृतिका अन्तिम रूप क्या होगा; अस्तु।

सामाजिक क्षेत्रमें इस सांस्कृतिक सङ्घर्षने कितनी उथल-पुथल मचा दी है, यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि इसका स्पष्ट आभास हम अपने जीवनके प्रत्येक पहलूमें आज पाते हैं। एक बात जो इस सङ्घर्षमें हम पूर्णतया स्पष्ट देख पा रहे हैं, वह यह है कि इस सङ्घर्षने हमारे संस्कारोंको परिमार्जन किये बिना ही हमारे रहन-सहनमें घोर परिवर्तन कर दिया है।

यह तो आप मानेंगे ही कि भारतीय समाजमें तुर्याश्रमी संस्कार कूट-कूटकर भरे हुए हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, ये चार व्यवस्थायें जबसे हमारे पूर्वज ऋषियोंने प्रचलित कीं, तबसे आज तक बराबर मान्य हैं। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास भले ही गौण रूप धारण कर जायें, जैसा कि आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं; परन्तु गृहस्थाश्रम व्यवस्थाका भङ्ग कदापि न हो पावे, इसीलिए जान पड़ता है, हमारे ऋषि-महर्षियोंने ये दो विधान किये होंगे कि कन्या अविवाहित न रहे और पिण्डदान न करनेवाले पुत्रके अभावमें मृतात्मा पितृ-लोकमें अशान्त रहे।

पुत्र-प्राप्ति जीवनका एक ऐसा ध्येय बना दिया गया था कि उसके लिए बहुपत्नीत्व भी, जिसे आजका सभ्य संसार हीन और घृणास्पद मान रहा है, उपयुक्त मान लिया गया था और आज भी हमारे संस्कार इसको छोड़नेमें कुण्ठित होते हैं। चाहे महर्षियोंका इन व्यवस्थाओंके स्थापित करनेमें तबकी समाज-व्यवस्थाकी पुष्टिका ही हेतु रहा हो, परन्तु हम हिन्दू कहलानेवाले आज भी अपना यही परम धर्म माने हुए हैं कि माता-पिताका अपने पुत्र-पुत्रियोंको कुंवारे रहने देना, अपने लिए घोर पाप बटोरना है। अतः चाहे लड़के-लड़की गृहस्थी संभालनेके बिलकुल ही अयोग्य क्यों न हों, फिर भी हम येन-केन-प्रकारेण उनकी गृहस्थी बसा ही देते हैं और अपने आपको एक बड़े ऋणसे उऋण हुए समझते हैं।

पर पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृतिके सङ्घर्षने हमारे नवयुवक और नवयुवतियोंके गार्हस्थ्य-सम्बन्धी विचारोंमें बहुत ही उथल-पुथल मचा दी है। वे अब इसे मानवीय जीवनका एक अनिवार्य कर्तव्य माननेको कतई तैयार नहीं हैं। यही नहीं; पर वे अधिकाधिक इस विचारमें दृढ़ होते जा रहे हैं कि विवाहका एकमात्र लक्ष्य वैषयिक साधनाके लिए किसी एक व्यक्तिपर जीवनान्त एकाधिकार प्राप्त करना है। सन्तानके लिए, गृह-सुखके लिए, जीवन-साहचर्यके लिए अथवा और किसी ऐसे ही काल्पनिक सुखके लिए विवाह किया जाना आवश्यक है, यह बात उन्हें उचित नहीं दीख पड़ती। क्योंकि यह कौन नहीं जानता कि विवाहित स्त्री-पुरुष भी सन्तान-विहीन होते हैं, गृह-सुखसे वञ्चित रहते हैं, और आजन्म एक-दूसरेको अपने साहचर्यसे दुःखी करते रहते हैं। निःस्वार्थके स्थानमें पति-पत्नियोंमें भी कभी-कभी स्वार्थ इतनी अधिक मात्रामें पाया जाता है कि जिसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। सौन्दर्य और प्रेमकी उपासना विवाहमें ही हो सकती है, यह कहना सौन्दर्य और प्रेमकी हंसी उड़ाना है।

यह विचार-श्रेणी चाहे कुत्सित कही जाय और चाहे और कुछ, परन्तु यह निर्विवाद है कि इसीके परिणाम-स्वरूप कमसे कम आजका नवयुवक तो विवाहको अपने-आपपर निरर्थक उत्तरदायित्वका बोझ मानकर, उससे उत्तरोत्तर अधिक मुंह फेर रहा है। अथवा उसके लिए दहेजके रूपमें लड़कीके पितासे एक भारी रकम मांगना अपना

हक समझता है। नवयुवक स्वतन्त्र है, इसलिए हम उसकी ऐसी मन्त्रणाको स्पष्ट सुन ही नहीं पाते, परन्तु उसके कार्यरूपमें परिणत होनेके डरसे भी आतङ्कित रहते हैं और जहां तक बस चलता है, उसे लुभा-ललचाकर फुसला लेते हैं और यह बोझ डाल ही देते हैं।

यह विचार-श्रेणी हमारे सुधारकोंपर भी आतङ्क जमाये हुए है। वे भी विवाहको व्यभिचारका एकाधिकार-मात्र मानते हैं। तभी तो वे यही कह-कहकर प्रौढ़ विधुरोंके विवाहोंके प्रति विरोधका बवण्डर खड़ा कर पाते हैं कि ये विधुर अपनी कामाग्निमें एक अबला नवयुवतीको जबरदस्ती होम कर रहे हैं। सुधारक लोग यह विरोधी आन्दोलन करते समय भूल ही जाते हैं कि कमसे कम आजके इस भौतिकता-प्रधान समयमें विवाह ही वैषयिक साधनका एकमात्र साधन नहीं है। नहीं-नहीं, रामराज्यमें भी वेश्यायें और व्यभिचारिणियां थीं और आज भी हैं, जो विषयान्ध पुरुषोंको धनके लिए अपना शरीर हर समय हर तरहसे बेचनेको तैयार हैं।

सुविख्यात लेखक एच० जी० वेल्सने ठीक ही तो कहा है—"सहचरका अभाव, और मित्रशून्य स्थानमें फालतू समय ये दोनों बातें भी मनुष्यके लिए वेश्या-साहचर्य उतना ही आवश्यक कर देती हैं, जितनी कि पाशविक पिपासा। वेश्यायें इन सहचर-विहीन बेचैन मनुष्योंके साथ केवल इधर-उधर घूमती-फिरती ही नहीं हैं, परन्तु वे उनकी बातें भी दिलचस्पीसे सुनती हैं। उनकी प्रशंसा करती हैं और उन्हें सान्त्वना देती हैं। सारांश यह कि वे सच्ची मित्रता और प्रेमका आदान-प्रदान करती हैं। वे निरी नैमित्तिक रूपसे पुरुषोंकी कामैषणाको ही शान्त नहीं करतीं, परन्तु जिसका वे क्रय-विक्रय करती हैं, वह इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ होता है। और वह स्त्रीत्व है। पुरुषमन स्त्रीपर स्वभावसे ही किस हद तक अवलम्बित रहता है, इसकी वे प्रत्यक्ष साक्षी होती हैं।" ×

वेल्सका मत डा० आइवन ब्लाकके मतसे एकदम भिन्न है। परन्तु नवयुवक जब तक अनुभव-शून्य है, यह समझ ही नहीं सकता कि विवाहसे मनुष्य अपनी किस कमीको पूरा करना चाह रहा है। इसीलिए वह विवाहको जीवनकी दिक्कतोंकी शुरूआत समझकर उससे दूर भागता रहता है। पर अन्तमें वह फंस ही जाता है और विवाह कर लेता है। क्योंकि वह अकेला जीवनकी कठिनाइयोंको झेलनेमें असमर्थ है। और ये जीवनकी कठिनाइयां जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, वैसे ही असह्य और परापेक्षी होती जाती हैं। माता-पिता, जिन्हें इन कठिनाइयोंका अनुभव अच्छी तरह हो चुका है, इसीलिए सन्तानका विवाह करना अपना परमधर्म समझते हैं, जिससे उनकी सन्तान अपने जीवनका उद्देश्य सफल कर सके।

जैसा कि मनुष्य-समाजका सङ्गठन हो चुका है, सामान्य सद्गृहस्थ विवाह इसलिए करता है कि उसे गृहस्थी संभालनेवाला कोई मिल जाये। वह दिन-भरका हारा-थका जब सांझको घर लौटे, तो उसे दो मीठी बातें कहकर कोई उसकी थकान दूर कर दे। गरम-गरम भोजन थालीमें परोसकर खानेके लिए दे दे। और अन्य तरहसे उसको आराम पहुंचावे। सब मनुष्योंको विवाह करनेपर ऐसा सारा आराम मिलता ही हो, यह बात यद्यपि सच नहीं है; परन्तु फिर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मध्यस्थ और गरीब लोगोंके लिए विवाहमें जो भी थोड़ा-बहुत आराम मिलता है, वह उनके जीवनमें स्फूर्तिदायक होता ही है। असल बात तो यह है कि विवाहकी सच्ची आवश्यकता मध्यवित्त या गरीबको ही है। मालदारको न तो साथीकी कमी रहती है और न सेवककी। न अपनी विषयी प्रवृत्तियोंको दमन करनेकी और न उनकी तृप्तिके साधन जुटानेकी। उन्हें तो इसके विपरीत यह आवश्यकता होती है कि कोई ऐसा साथी मिले, जो उनका ऐश-अशरतमें दिलोजानसे साथ दे। जिससे उन्हें अधिकाधिक रस-भरा आदान-प्रदान मिले। जो उनकी मित्रमण्डलीमें शोख और सुन्दरतामें अपना सानी न पावे। ऐसे साथीके साथ क्या किसीकी आजीवन निभ सकती है? परन्तु फिर भी हमारी दौड़ उसी तरफ लगी है। धनिक वर्गकी देखा-देखी मध्यवित्त और गरीब लोग भी ऐसे ही साथीकी कल्पना करते-करते आज अपना जीवन नीरस व निराशामय बना रहे हैं।

स्त्री-पुरुषोंकी समानता और समानाधिकारपर किसी तरहके अपने विचार न प्रकट करते हुए हमारा कहनेका

× H. G. Wel's :-We lth, Welfare & Happiness of Mankind. page 569.

तात्पर्य यह है कि ऊपर कथित विचार-धाराने हमारे जीवनकी कठिनाइयोंको बेहद बढ़ा दिया और दिन-दिन बढ़ा रही है। उदाहरणके लिए आप एक नवयुवकको ही लीजिये, जो विवाहको बन्धन समझकर घृणा करता है। ऐसे नवयुवकका हिन्दू सम्मिलित परिवारमें भी निर्वाह नहीं हो सकेगा; क्योंकि उसमें त्यागकी भावना भी कम होती है। यदि वह सम्पन्न हो, तो शायद अंगरेजी होटलोंका रहवास स्वीकार कर ले। परन्तु मध्यवित्त अथवा गरीब होनेपर उसके लिए यही समस्या उठ खड़ी होती है कि वह खाने-पीने आदिकी कैसी व्यवस्था करे? हलवाईसे रोजाना पूड़ी-कचौड़ी लेकर खाना भी उसको नहीं पुसा सकता और न वह स्वयम् ही दोनों समय हाथसे खाना पकाता हुआ अपनी तरक्की कर सकता है। अब वह प्रबन्ध करे, तो कैसे और कहां?

यूरोप आदि पाश्चात्य देशोंमें जहां नवयुवक और नवयुवती अपने आपको विवाह-बन्धनसे विमुक्त रखनेके अधिक शौकीन हैं, उन्हें ऐसी कोई कठिनाई नहीं सताती। क्योंकि वहांकी समाज-व्यवस्थाने सिर्फ होटलोंको ही नहीं, परन्तु ऐसे बोर्डिङ्ग हाउसोंको भी पहले ही से जन्म दे दिया था, जिनमें रहकर वे प्रायः उतने ही सस्तेमें अपनी गुजर कर सकते हैं, जितना वे घर बसाकर शायद करनेकी चेष्टा करते। ये बोर्डिङ्ग हाउस आपको सिर्फ बड़े शहरों ही में मिलते हों, ऐसी भी बात नहीं है। आप छोटेसे छोटे गांवमें भी चले जाइये और यदि आप वहां रहना चाहें, तो आपको किसी-न-किसी परिवारमें रहनेके लिए स्थान मिल जायेगा। क्या हमारे भारतवर्षमें ऐसी कोई भी सुविधा अब तक कायम हुई है?

इन बोर्डिङ्ग हाउसोंको हम भारतीय शायद छुपे वेश्यालय कह दें। परन्तु यह हमारा अक्षम्य अपराध होगा। क्योंकि वहां सम्भ्रान्त परिवार भी बोर्डरोंको रखना बुरा नहीं समझते। सच तो यह है कि इसे वे एक तरहकी समाज-सेवा मानते हैं। और दरहकीकत यह समाज-सेवा है भी। क्योंकि जबसे पुरुषने अपना शिकारी जीवन भुलाकर घरेलू जीवन बना लिया है, तबसे ही इसके गृह-प्रबन्धका भार स्त्रीने संभाल लिया था। और आज भी वही संभाले हुए है।

वैज्ञानिकोंने स्त्री-जीवनको मुख्य तीन भागोंमें विभक्त किया है—(१) पत्नी और मातृत्व, (२) सहचरी और (३) साझीदार। सुप्रसिद्ध नाट्यकार मि० शा के मतानुसार जीवन-संग्राममें असफल स्त्री अन्तमें पत्नी बनकर भी सफलता प्राप्त करनेकी चेष्टा कर सकती है और करती भी है। स्त्रियोंका महान् मातृत्व क्या है? महात्माजी कहते हैं कि मातृत्वका धर्म ऐसा है, जिसे अधिकांश स्त्रियां सदा ही धारण करती रहेंगी। मगर उसके लिए जिन गुणोंकी आवश्यकता है, उनका पुरुषोंमें होना जरूरी नहीं। वह सहनेवाली है। वह करनेवाला है। वह स्वभावसे घरकी मालकिन है। वह कमानेवाला है। वह कमाईकी रक्षा करती है और बांटती है। वह हर मानेमें पालक है। मानव-जातिके दुधमुंहे बच्चोंको पाल-पोसकर बड़ा करनेकी कला उसीका विशेष धर्म और एकमात्र अधिकार है। वह संभाल न रखे, तो मानव-जाति नष्ट हो जाये।

साहचर्य और साझा तो आसायशकी चीजें हैं, जिनमें हिस्सा बंटानेवाले तो हर जगह मिल सकते हैं। परन्तु मनुष्य-प्राणी संसारमें साहचर्य और साझेसे ही जीवित नहीं रह सकता। उसे रक्षककी, पोषककी और प्रेमसे कर्तव्यकी ओर झुकानेवालेकी आवश्यकता रहती है। ऐसे सङ्गीके साथमें वह आधा पेट खाकर भी न केवल जीवित ही रह सकता है, अपितु अपना जीवन-कर्तव्य भी पूरा करता रह सकता है।

परन्तु आज हम दोनों ही लक्ष्योंसे भ्रष्ट होते जा रहे हैं। अपने पौर्वात्य आदर्शको तो हम पुरातन और समयसे पिछड़ा हुआ कहकर छोड़ रहे हैं; परन्तु पाश्चात्य आदर्शको हम अपने जीवनमें सम्पूर्णतया इसलिए नहीं उतार पाते हैं कि हमारी संस्कृति हमारा पीछा नहीं छोड़ रही है। क्या इस तीतर-बटेरवाली संस्कृतिसे हम जीवित रह सकेंगे, यही हमारा आप लोगोंसे प्रश्न है। विवाहसे निस्सन्देह जीवनकी जिम्मेदारियां बढ़ती हैं; परन्तु इससे साधारणतया जीवन जीने योग्य हो जाता है और जिम्मेदारियां संभाली जा सकती हैं।

विवाहसे जीवनकी कठिनाइयां बढ़नेका प्रधान कारण यह है कि हमारा स्त्री-वर्ग साधारणतया इन कठिनाइयोंको महसूस कर उन्हें दूर करनेमें हमारी मदद ही नहीं करता है,

यही नहीं; बल्कि वह उन्हें उत्तरोत्तर बढ़ाता रहता है। वह प्राणान्त तक परम्परा और गतानुगतिकताको जकड़े रहता है। और हमें भी उसमें जकड़े रखता है। इस फेरमें पड़कर आशावादी नवयुवककी सारी आशाओंपर पानी फिर जाता है। इसीलिए वह इससे दूर भी भागता है। परन्तु इस प्रकार दूर भागना तो कठिनाइयोंको जीतना नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इससे ये कठिनाइयां हमारे जीवनमें अन्य रूपमें प्रकट होने लगती हैं, जिन्हें अकेले न झेल सकनेके कारण हम और भी जल्दी लक्ष्यहीन हो जाते हैं। इसलिए विवाहको निरर्थक और बन्धनपूर्ण कहकर त्याग देनेसे हमारा कार्य सिद्ध न होगा। हमें उन कठिनाइयोंका समयानुसार सामना करना ही होगा, चाहे ऐसा करनेमें हमारी परम्पराका उत्थापन हो अथवा हमें उसके लिए वे ही आधुनिक उपचार काममें लाने पड़ें, जो आज पाश्चात्य देशोंमें स्पष्ट रूपसे लाये जा रहे हैं। हम बहती हुई हवाके विरुद्ध निश्चल किसी भी तरहसे खड़े नहीं रह सकेंगे।

युद्ध-भूमिमें एक पत्रकारके रोमाञ्चक अनुभव

श्री श्याम उपाध्याय

संसारके किसी कोनेमें युद्धकी प्रचण्ड ज्वालायें प्रज्वलित हो रही हों, रणदेवीकी रण-भेरीका कम्पित करनेवाला स्वर किसी भी क्षेत्रसे आ रहा हो, युद्धके काले बादल शीतसे शीत और उष्णसे उष्ण देशमें मंडरा रहे हों, सभ्य एवं शिक्षित समुदाय वहांके सच्चे संवाद, युद्धस्थलकी सच्ची खबरें तथा घटनायें जाननेको उत्सुक रहता है। उसकी इस जिज्ञासु प्रवृत्तिको शान्त करनेके हेतु उन्नत समाचार-पत्र अपने विश्वसनीय विद्वान् पत्रकारों, संवाददाताओंको, चित्र खींचनेके केमरे और छोटी हलकी टाइपकी मशीनोंको लेकर युद्धस्थलके लिए विदा करते हैं, जहांसे उन्हें गोलियों, तोपोंकी गड़गड़ाहट, तलवारोंकी चमचमाहट और बम बरसानेवाले हवाई जहाजोंकी घरघराहटके मध्य हृदय थामकर अपनी नन्हीं-सी जानपर खेलकर जीवटके साथ खबरों, संवादों, घटनाओं और चित्रोंको एकत्रित करके अपने सम्पादकों, समाचार-पत्रोंके लिए शीघ्रसे शीघ्र साधन द्वारा अधिकसे अधिक सामग्री भेजनेका प्रयास एवं व्यवस्था करनी पड़ती है। हम लोगोंकी जानकारी, जिज्ञासु-वृत्तिके लिए उन्हें क्या-क्या कष्ट उठाने पड़ते हैं, उसका एक छोटा-सा नमूना मि० हैरी ग्रीनवालके अनुभवोंसे हो जायगा।

ग्रीनवालके युद्धकालीन कष्टोंके विषयमें कुछ लिखनेके पूर्व यह बतलाना आवश्यक है कि वह साधारण शिक्षा पाया हुआ एक साहसी, असंयमी, सम्पन्न घरानेका परित्यक्त युवक था, जिसे उसका बाप पूर्ण बेवकूफ समझ बैठा था। भाग्य या परिस्थितिवश उसे सफलता भी कभी न मिली। सर्वप्रथम वह एक दर्जीके पास काम करने लगा, तत्पश्चात् हिसाबका काम सीखने न्यू क्रास भेजा गया, कुछ दिन बाद एक कपड़ेवालेका एजेण्ट बना, पर एक भी थान न बेच सका। अस्तु, उसी दूकानपर ग्राहकोंको दिखलानेके बाद थानोंको समेटकर तरतीबसे रखनेका कार्य किया। यहांसे पृथक् होते ही पुनः एक दर्जीके पास उम्मेदवारोंमें रखा गया, यह काम छोड़ वह पेरिस चला गया; पर वहां भी मन न लगा। अस्तु, लन्दनमें ही एक दूकानदारका साझीदार बनकर काम किया, उसका भी दिवाला निकाल दिया। कबूतरको कुआं वाली कहावतके अनुसार वह फिर पेरिस पहुंचा और नाच-घर खोला, जो कुछ दिन चलकर बन्द हो गया, यहां तक कि भूखों मरनेकी नौबत आ गयी, तब सदैवकी तरह मांसे धन-याचना कर घर पहुंचा, इसके बाद उसने लेखनी उठायी और पत्रकार बननेकी धुनमें संवाददाता और कहानी-लेखनसे प्रारम्भ किया। भवितव्य कहिये या विधिका खेल, संसार-पर युद्धके बादल मंडराने लगे। जर्मनीने तलवारें म्यानसे निकालीं और पड़ोसी राष्ट्रोंपर धावा कर दिया, अतः मि० ग्रीनवालको 'काण्टीनेण्टल' एवं 'डेलीमेल' नामक पत्रके युद्ध-संवाददाताकी हैसियतसे युद्धकी ओर प्रस्थान करना पड़ा।

युद्ध-संवाददाताको अन्य संवाददाताओंकी भांति जेबमें सदैव अधिकार-पत्र साथ रखना पड़ता है, जिसपर मोटर ड्राइवरोंके लाइसेन्सकी तरह उसका फोटो भी

साथ चिपका रहता है। साधारण संवाददाताओंको अपना फोटो साथ रखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती; पर पश्चात्य देशोंके उन्नत कहे जानेवाले पत्रोंमें यह प्रथा चल पड़ी है, ताकि उनके अधिकार-पत्रोंके चोरी जानेपर या गुम हो जानेपर अन्य अनधिकारी व्यक्ति उनका दुरुपयोग न कर सके। युद्ध-संवाददाताओंके लिए यह भी आवश्यक है कि वे जेबमें हर समय काफी पैसे एवं इस बातका पुख्ता प्रमाण रखें कि वे युद्धमें अमुक पत्रके प्रतिनिधिके रूपमें कार्य कर रहे हैं। इसका यह कारण है कि युद्धमें अवाञ्छनीय व्यक्तिसे बड़ा अभद्र, अशिष्ट और असभ्य व्यवहार किया जाता है। जैसा कि लेखके अगले भागसे ज्ञात होगा, किसी शङ्कित व्यक्तिको, जिसके जासूस या गुप्तचर होनेकी शङ्का की जाती है, तुरन्त ही गिरफ्तार करके बन्द कर दिया जाता है और युद्ध-नियमोंके अनुसार गोलीसे भी उड़ा दिया जाता है।

× × ×

रविवारके दिन भगवान् ईसाका स्मरण कर ग्रीनवालने युद्धस्थलकी ओर प्रस्थान किया। तमाम स्टेशनोंपर मिलिटरीका कड़ा पहरा होनेके कारण एक नदीके किनारे चलते हुए घमसान युद्धके निकट पहुंचा। उसने पड़ोसके व्यक्तियोंसे ज्ञात किया कि कुछ दूरपर ही गोलाबारी हो रही है और जर्मन सेनायें दस मील पीछे हटा दी गयी हैं। ज्यों ही वह आगे बढ़ रहा था कि चौकीदारोंने उसे कई स्थलोंपर रोका; पर पुलिस द्वारा संवाददाताओंको जो संरक्षण-पत्र युद्धके समय दिया जाता है, उसको दिखलानेपर सैनिक एक कदम हटकर सलाम करके आगे बढ़नेकी इजाजत दे देते थे। पर जैसे ही वह गोरने पहुंचा, एक सैनिक अफसर द्वारा रोक लिया गया, जो न तो मीठे-मीठे विनम्र शब्दों और न पुलिस-पाससे पिघल सका; पर जैसे ही उसे यह कहा गया कि गर्मी काफी है, क्या हर्ज है कि साईडरके एक-दो गिलास पीकर दिलको शान्त किया जाय, वह तैयार हो गया। साईडर समाप्त करके ग्रीनवालने आफिसरसे हाथ मिलाया और आगे बढ़ गया। पाश्चात्य प्रदेशोंमें जो कठिन काम मीठी-मीठी बातोंसे नहीं निकल सकते हैं, वे शराबकी एक पेगसे बड़ी ही सरलतासे हो जाते हैं।

संवाददाता युद्धके इतना निकट पहुंच चुका था कि स्ट्रेचर एवं गाड़ियोंपर जाते हुए आहत व्यक्ति उसके समीपसे ले जाये जाते थे। समीप ही बम द्वारा विध्वंसित मकानोंके खण्डहर दृष्टिगोचर होते थे, रह-रहकर तोपोंके धड़ाके सुनाई पड़ते थे। जिससे भयभीत होकर पक्षी और परिन्दे फड़फड़ाते हुए आकाशमें चक्कर लगाते थे। दिन-भर युद्ध-प्रदेशोंमें भ्रमण करते-करते जब सन्ध्याने अपनी काली चादरसे भूतलको आच्छादित करना आरम्भ किया, दिनकर भी अपनी लम्बी यात्राके बाद विश्रामको विवश हो गये, तो ग्रीनवालको भी अपने डेरेपर पहुंचनेकी सूझी। दिनको निर्भय घूमनेवाला साहसी रात्रिको कुछ वैसे ही घबरा जाता है, तिसपर युद्धस्थलमें, जहां पद-पदपर लाशें पड़ी हों, पल-पलमें आहतोंका करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता हो, जीवटवाले व्यक्तिके लिए भी भयभीत हो जाना अनहोनी बात नहीं है। जब यह ज्ञात हुआ कि समीप ही शत्रु डेरा डाले पड़े हैं, ग्रीनवालका दिल और भी धड़कने लगा। उसने इतना धीरे-धीरे चलना प्रारम्भ किया कि जूतोंकी आहट भी न हो। इस पदध्वनि और चलनेकी चरमर और खटखटके शब्दोंको बचानेके लिए वह सड़क छोड़कर घासपर चलने लगा। पासके पेड़में बिजलीका प्रकाश हुआ, ज्यों ही घबराया हुआ वह अपने डेरेकी ओर बढ़ा हुआ चला जा रहा था कि 'Halte-la' 'ठहरो' का शब्द सुनाई पड़ा, जिसके उत्तरमें Fesuis Anglais यानी 'मैं अंगरेज हूं' कहा ही था कि इतनेमें कुछ सैनिक सङ्गीन थामे हुए उसके समीप आये। ये सब दयालु सैनिक थे और अखबार सम्बन्धी कागजोंको देख-भालकर, जिनको सम्भवतः वे समझ नहीं सके हों, संवाददाताको आगे बढ़ने दिया।

इस घटनासे छुटकारा हुआ ही था कि अंधेरेमें साइकिलपर चढ़ा हुआ एक व्यक्ति मिला, जो पास आकर उतर गया। प्रायः यह देखा जाता है कि भयपूर्ण स्थलोंमें एकसे दो होकर चलना प्रिय लगता है, इसी सिद्धान्तके अनुसार बाइसिकलआरूढ़ व्यक्ति पैदल होकर साथ हो लिया। जैसे ही समीपका गांव आया, ग्रीनवालने रात्रिके विश्रामकी खोजमें एक मकानके द्वारको थपथपाया; परन्तु बहुत देर बाद ज्ञात हुआ कि घर जनशून्य है और सभी व्यक्ति मकानमें ताला लगाकर गांव छोड़कर भाग चुके हैं। रात्रिकी काली चादर और गहरी होती जाती थी। हाथसे हाथ नजर नहीं आता था। एक गजसे अधिक दूरकी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती थी। इतनेमें ही सैनिकोंकी पदाहट सुनाई पड़ी। साइकल लिये हुए

व्यक्तिने कहा कि ये फ्रेञ्च सैनिक हैं; पर अंधेरेके कारण उनकी वर्दियां पहचानी नहीं जा सकती थीं। अतः एक सैनिकसे पूछा कि यह कौन-सी फौज है? उससे ज्ञात हुआ कि यह इल्फ्स रेजिमेण्ट, जो ब्रिगेडियर जनरल मि० हनोके अधीन काम कर रही है, विश्राम करने जा रही है।

सैनिकोंके गुजरते ही ज्योंही ग्रीनवालने अपने पासके साथीकी ओर ध्यान दिया, वह भयातुर होकर भाग निकला था; पर थोड़ी ही देरमें एक और साथी मिल गया, जो मोटर साइकिलपर चढ़कर सैनिकोंकी डाक इधर-उधर ले जाता था। किस्मतसे वह भी भूखा-प्यासा, पूरा थका हुआ था। कुछ दूर चलनेपर भगवान्‌की कृपासे एक हंसमुख रोटी बनानेवाला मिल गया, जिसने अपने परिवारके साथ भोजन करनेका उन्हें निमन्त्रण दिया। युद्ध-क्षेत्रोंमें ऐसे व्यक्तियोंकी अत्यन्त कमी देखी जाती है। जब वे दोनों भरपेट भोजन कर चुके, तो अपने आहारका मूल्य चुकानेकी इच्छा प्रकट की, जो हंसमुख नानबाईने अस्वीकार कर दी। इस प्रकार समयपर सहायता देनेवालेको धन्यवाद देकर ज्योंही रवाने हुए, मोटर साइकिल सवारने कहा कि वह पास ही इल्फ्स लाइनमें जाकर सो रहेगा। वह अपनी बातको समाप्त भी न कर पाया था कि वे इतनेमें ही आर्मी सर्विस क्राप्सकी एक टुकड़ी आ पहुंची और रोटी बनानेवालेके मकानके समीप ही मैदानमें अपना डेरा डाल दिया। ग्रीनवालने सेनाध्यक्षसे प्रार्थना की कि क्या वह एक रात-भरके लिए उनकी सेनाके साथ सो सकता है। उसे कहा गया कि उसकी सेना अत्यन्त थकी हुई आयी है और सभी उसके दुःखको समझ सकते हैं। दयालु सैनिकोंने उसे कुछ कम्बल ओढ़ने और बिछानेके लिए दिये तथा सोनेके पूर्व भोजनमें शरीक होनेको भी कहा। यद्यपि ग्रीनवालने थोड़ी देर पहले ही रोटी बनानेवालेके यहां भोजन किया, फिर भी सैनिकोंके आग्रहको देखकर उसने थोड़-सा पनीर, बिस्कुट और शराब आदिमें सहयोग दिया और सोनेकी व्यवस्था करने लगा। उसकी थकी पलकें झिपने भी न पायी थीं कि समीपके सोये हुए सैनिकने दुलत्ती मारना प्रारम्भ किया, अतः उसे उठाकर सीधा सुलाया, उसकी थकान पूरी-सी मिटने भी नहीं पायी थी कि सेनाको कूचकी आज्ञा मिली। अनिच्छापूर्वक वह भी उठा और सैनिकोंके साथ तैयार हो गया। आदमी और घोड़ेकी चाल मिलना कठिन है; अस्तु, थके हुए पैरोंसे उनके साथ दुलकी लगानेपर बड़ी कठिनतासे उनका साथ वह कर सका। इतनेमें ही उसे रोने और जोर-जोरसे चिल्लाने-चीखनेकी आवाज समीपकी एक झोंपड़ीसे आती मालूम हुई और झोंपड़ीके पास पहुंचनेपर रुदन करती हुई एक स्त्री अपने बिलखते हुए बच्चेको गोदमें लिये हुए और दो छोटे-छोटे बालकोंके साथ, जो उसका लहंगा पकड़े हुए थे और सभी जोर-जोरसे चिल्लाकर सुबकियां भर रहे थे, सेनाध्यक्षके पैरोंपर गिर पड़ी, एवं क्षमा-याचना तथा प्राण बचाने और दयाके लिए घुटने टेककर आतुर स्वरसे प्रार्थना करने लगी। उसे आशङ्का थी कि यह जर्मन सेना है, जो उसे तथा उसके बच्चोंको क्रूरतापूर्वक संहार करके यमलोक भेजकर झोंपड़ेमें आग लगा देगी।

बड़ी कठिनतासे उस स्त्रीको शान्त किया और पुलिसके दो घुड़सवार वहां पहुंच गये। उस स्त्रीने बतलाया कि रातसे ही उसके घरमें एक जर्मन चोर घुसा पड़ा है और अब इस सेनाको देखकर उसे भय हुआ कि शेष जर्मन पल्टन प्रातः-काल होनेपर पहुंची है और अब उसकी खैर नहीं है। उसके कहनेपर दो घुड़सवार उसकी झोंपड़ीमें पिस्तौल लिये पहुंचे। पहले तो कुछ हाथापाईकी आवाज आयी, फिर आपसी कहा-सुनीके बाद जोरसे हंसी सुनाई दी। अन्तको एक सैनिक शराबके नशेमें चूर, लाल-लाल आंखोंवाले एक व्यक्तिको पकड़कर पासके उद्यानसे बाहर निकला और कहा कि लो, यह तुम्हारा जर्मन चोर है। वास्तवमें यह वही मोटर साइकिल सवार था, जो ग्रीनवालके साथ रोटी बनानेवालेके यहां खूब शराब पी चुका था। पुलिस उसे पकड़कर ले गयी। संवाद पानेके लोभमें एक बार फिर ग्रीनवाल अकेला रह गया। वह यह सोच ही रहा था कि तेज रफ्तारसे चल आगे पहुंची हुई सेनाके साथ हो ले, कि उसे पीछेसे मोटरकी आवाज सुनाई पड़ने लगी और कुछ देरमें ही एक भूरे रङ्गकी समर-मोटर पास आकर रुक गयी, जिसमें दो अफ़सर बैठे हुए थे। उन्होंने टूटी-फूटी फ्रेञ्च भाषामें पूछा कि क्या वे विलन्यू सेण्ट जार्ज जानेवाली ही सड़कपर हैं? यदि इस प्रश्नका उत्तर फ्रेञ्च भाषामें ही दिया जाता, तो अच्छा होता, पर ग्रीनवालने अंगरेजीमें कहा कि वह स्वयं यहांके मार्गोंसे अनभिज्ञ है। इसपर दोनों अफसरोंने काना-

फूसी करके कुछ विचार-विमर्श किया और ग्रीनवालको मोटरपर बैठनेको कहा। अन्धेको दो आंखे ही चाहिए। अतः हमारे थके हुए संवाददाता धन्यवादकी बौछार करके मोटरमें बैठ गये। इसमें बैठे हुए दो और भी सज्जन थे, जिन्होंने कहा कि वे जर्मनों द्वारा गिरफ्तार कर ही लिये गये थे कि एक स्कूल मास्टर द्वारा साधारण वस्त्र भेंट किये जानेपर उन्होंने अपनी सैनिक पोशाक उतार, सादे वस्त्र पहनकर जान बचायी है।

कुछ ही दूर चल पाये थे कि एक विशाल दुर्गके फाटक खुलनेकी आवाज आयी और ग्रीनवालकी नींद उड़ गयी। उसने क्या देखा कि ऊंचे विस्तृत हातेमें दोनों ओर फौजकी मोटरें खड़ी हैं। साधारण वस्त्र पहने हुए दोनों व्यक्ति यहीं उतार दिये गये और ग्रीनवालको साथ चलनेके लिए कहा गया। एक कमरेमें ले जाकर उससे प्रश्न पूछे गये और प्रश्नोंपर जिरह की गयी। उसके बाद खानातलाशीकी बारी आयी। कोटकी सारी जेबोंसे कागजपत्र, नोट-बुक, बटुआ आदि निकाल लिये गये। उन्होंने नोट-बुकके एक-एक पन्नेकी जांच की और अखबारोंके प्रमाण-पत्र, अधिकार-पत्र-पुलिस द्वारा दिये गये संरक्षण सम्बन्धी समस्त कागजोंका अवलोकन किया गया। कई प्रश्न भी इस सम्बन्धमें किये गये।

अंगरेजीमें बोलकर जो गलती ग्रीनवालने की थी, उसको अब महसूस करने लगा। दूसरी भूल मोटरमें बैठनेकी की थी, वह अखरने लगी। उसे शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि वह बन्दी है। जितने भी सैनिक और अफसर वहां खड़े थे, वे उसे शङ्का-युक्त दृष्टिसे विलोक रहे थे। इन अफसरोंके साथ एक फ्रेञ्च पत्रकारका चेहरा दीख पड़ा, जिससे वह एक सप्ताह पूर्व ही बातें कर चुका था। उससे प्रार्थना की कि वह उन लोगोंकी आशङ्काको निर्मूल करके स्पष्ट कर दे कि ग्रीनवाल-को वह जानता है एवं यह किसी राष्ट्रका गुप्तचर अथवा भेदिया नहीं है, वस्तुतः युद्ध-संवाददाता एवं पत्रकार है। पर विपत्तिके समय परिचित भी अनजान बन जाते हैं। उस फ्रेञ्च पत्रकारने साफ तौरपर कह दिया कि वह उसे जानता भी नहीं है, न उसने उसे कभी पहले देखा ही है। ग्रीनवालकी मुखाकृति देखने योग्य हो गयी। उसके मुखपर हवाइयां उड़ने लगीं, उसके बदनमें काटो तो खून नहीं, निराशासे वह पैरोंसे जमीन खोदने लगा।

मध्यमें खड़े हुए अफसरने—जिसका नाम पीछे ज्ञात हुआ कि जनरल स्नो था—गम्भीर स्वरमें कहा कि वह समर-कैदी है। इतना कहना था कि बन्दूक लिये हुए सिपा-हियोंकी एक टुकड़ीने एक तबेलेमें ले जाकर बन्द कर दिया। दिनभर वह यहीं भूखा-प्यासा बन्द रहा और रातको यहां सोनेसे इनकार कर दिया। अतः भोजनके बाद उसे घासके पूले बिछानेको दिये गये और फ्रेञ्च घुड़सवारोंके मध्य सिर-हानेमें तकियेके स्थानपर जीनोंको रखकर वह सुखसे सो गया। प्रातःकाल सैनिक मजिस्ट्रेट कैप्टन जेम्सने आकर उससे बातें कीं और ग्रीनवालने यह कहा कि यदि उन्हें विश्वास नहीं है कि वह पत्रोंका संवाददाता ही है, तो वे 'डेलीमेल'के सम्पादकको तार देकर पूछ लें; किन्तु उसने यह करनेसे इनकार कर दिया। हां, उसने बड़ी कृपा करके ग्रीनवालकी धर्मपत्नीको तार द्वारा संक्षेपसे सूचित कर दिया। एक पम्पके समीप ग्रीनवालको निमटने, मुंह-हाथ धोनेकी आज्ञा अन्य समर-कैदियोंके साथ दी गयी, जो या तो वास्तवमें गुप्तचर थे या इनपर भेदिया होनेकी आशङ्का करके इन्हें गिर-फ्तार कर लिया गया था। पहरेदार घण्टे-घण्टेमें बदलते रहते थे लगभग सभी अच्छे स्वभावके और बातूनी थे, जिनसे वाद-विवाद करके सहजमें समय व्यतीत हो जाता था। वे अक्सर युद्ध सम्बन्धी ही बातें आपसमें किया करते थे और इस कल्पनामें विलीन रहते थे कि युद्ध कब तक समाप्त हो जायगा। उन लोगोंकी धारणा थी कि लड़ाई आगामी बड़े दिनों तक बन्द हो जायगी।

कुछ देर बाद ही ग्रीनवालको नाश्तेके लिए ले जाया गया और बड़ी सभ्यताके साथ मुरब्बा, बिस्कुट और चाय दी गयी। इसके बाद समीपका वातावरण कोलाहलमय हो गया; इससे अनुमान लगाया जा सकता था कि निकट ही युद्ध प्रारम्भ हो गया है। मध्याह्नको कैप्टन जेम्सने आकर सूचना दी कि उसके लिए गवर्नमेण्ट हेड क्वार्टरको सूचित किया है और आदेश मांगा है कि क्या किया जाय? उनके जाते ही सशस्त्र सैनिकोंकी एक टुकड़ीने ग्रीनवालको घेर लिया। उसे सङ्गीनोंके कड़े पहरेके बीच एक अन्य स्थलपर ले जानेकी तैयारी होने लगी। रास्ते-भरके लिए उसे हिदायत थी कि किसीसे बात न करे और जो सैनिक उससे बात करनेकी चेष्टा करता, उसे वहांसे हटा दिया जाता।

दिन-भर समीपके कोलाहलमें कोई अन्तर नहीं पड़ा, ऐसा अनुमान होता था कि यह पासके युद्धकी आवाज है, जो आंखोंसे ओझल था। रात पड़नेके पूर्व वे सब क्लीन्यू-ली-कोम्ट पहुंच चुके थे।

रातका पड़ाव पुनः एक किलेमें हुआ और ग्रीनवालको सबसे ऊपरके एक कमरेमें बन्द कर दिया गया, जिसमें पहलेसे ही बहुत-से कैदी बन्द थे। इनमें दो तो अंगरेज सिपाही, दो अपने-आपको बेलजियन शरणार्थी बतलाते थे, तीन घुड़सवार, बहुत-से नागरिक और एक वही कैदी था, जो दो दिन पूर्व शराबके नशेमें उस अबलाके घरमें छिपा हुआ पाया गया था। रातमें सब लोग कानाफूसीमें बातें करते रहे, ताकि बाहर खड़े पहरेदार सुन न सकें। पौ फटनेके पहले दोनों अंगरेज सैनिक कमरेसे बाहर निकाले गये और उन्हें गोली मार दी गयी। प्रातःकाल होते ही ग्रीनवालको फिर सङ्गीनोंके पहरेमें पैदल रवाना कर दिया गया और रात पड़नेके पूर्व वे माण्ट मिरेल नामक स्थानपर पहुंचे। और जिस दुर्ग (गढ़) में इन लोगोंने पड़ाव डाला, वह कुछ घण्टों पूर्व ही जर्मन सैनिकोंके कब्जेमें था। ऐसा प्रतीत होता था कि वे यहांसे अभी खाना खाते-खाते भागकर जङ्गलमें छिपे हैं, क्योंकि आधा खाया हुआ भोजन अस्तव्यस्त दशामें मेज-कुर्सियों और बेल-बूटेदार सोफोंपर बिखरा पड़ा था; समीपकी झाड़ियोंमें तीन जर्मन कैदियोंको छिपे पाया, जिन्हें सैनिक वहीं छोड़ गये थे और उन्होंने भयसे झाड़ियोंमें ही पनाह ली। रातको ग्रीनवाल उन कैदियोंके साथ ही सोया और ज्ञात हुआ कि वे ३६ वीं रेजिमेण्ट आफ इन्फेण्ट्रीकी ९ वीं कम्पनीके सैनिक थे। इनसे ग्रीनवालने एक कमरबन्द एक फ्राङ्कमें खरीदा।

ग्रीनवालको यह आशङ्का बनी रही कि वह भी कहीं गोली मारकर यमलोक न पहुंचा दिया जाय; पर जब उसे उपर्युक्त तीन जर्मन कैदियोंके साथ मोटर लारीमें बैठाकर टउर्नन भेजनेकी तैयारी होने लगी, तो जीमें जी आया। यहां भी वह पहरेके अन्दर रखा गया और अन्तमें एक दिन यहांसे भी अन्न-जल उठ गया। प्रातःकाल ही ग्रीनवालको एक पशुगाड़ीमें ले जानेकी व्यवस्था होने लगी और कहा गया कि उसे लिमोगीज ले जायंगे, जहां तीन दिनमें पहुंचा जायगा। गाड़ीके तैयार करते समय एक मिट्टीके टीलेपर वह इन्तजारमें बैठा था, इतनेमें ही एक अंगरेज अफसरकी मोटर उधरसे निकली। न जाने क्यों, अथवा संवाददाताके सौभाग्यसे समझिये, उसने गाड़ी रोक दी और सारी घटना सुनी, जिसकी सत्यताको जाननेके अभिप्रायसे वह स्थलके अधिकारियोंसे भी मिला। थोड़ी देरमें वह वापस आया और ग्रीनवालसे कहा कि यदि वह सौगन्ध खाकर ईमानसे इस बातको स्वीकार करे कि वह रास्तेमें भागनेका प्रयास न करेगा, तो वह इस बातका प्रयत्न करे कि उसे मोटरसे मिलून तक ले जा सके; जहां वह किसी विशेष कामसे जा रहा है।

ग्रीनवालको इस बातसे हर्ष हुआ कि तीन दिनमें धीरे-धीरे पहुंचनेवाले छकड़ेसे यह मोटर कहीं बेहतर है। उसने विश्वास दिला दिया कि वह भागनेकी चेष्टा न करेगा। आफिसरके प्रयाससे उसके समस्त कागज-पत्र, रुपये-पैसे उसे वापस सौंप दिये गये। जिस समय मोटर मिलून पहुंची, जोरकी वर्षा हो रही थी। गाड़ीसे उतरते ही उसे जनरल सर नैविल मेकरैडीके समक्ष पेश किया गया, जो कि आयरलैण्डसे युद्धस्थलपर आये थे। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि कैदी एक संवाददाता है, तो उन्होंने पहला प्रश्न किया कि क्या तुम अमुक......व्यक्तिको जानते हो, जो तुम्हारे पत्रका ही एक संवाददाता है। ग्रीनवालके हां कहनेपर वह उसे कर्नल बनबरीके पास ले गया, जो कि युद्ध-स्थलके न्यायाधीशके पदपर काम कर रहे थे। उन्होंने कहा, यह मान भी लिया जाय, जैसा कि यह कहता है कि यह संवाददाता है, पर यह गुप्तचर और भेदिया भी है। उन्होंने यह भी कहा कि एक गुप्तचरको संवाददातासे वे बुरा समझते हैं। एक बार फिर ग्रीनवालके समस्त कागज और पैसे जब्त कर लिये गये और हाथोंमें हथकड़ी डाल दी गयी। यह दशा देखकर उसने अधीर स्वरमें पूछा कि अब मेरा क्या किया जायगा? कर्नलने मुसकराकर कहा, घबराओ मत; अधिक कुछ नहीं कह सकता हूं, पर इतना विश्वास रखो कि तुम्हें गोली नहीं मारी जायगी।

रातके समय उसने आफिसरोंके साथ ही भोजन किया, जो कि वहांके हवाई अड्डेके संरक्षक थे। उसके बाद मिलून कन्या पाठशालामें वह सुला दिया गया और यहीं उसने सुना कि उस मोटरमें लानेवाला अफसर अपने स्थलको

बदलकर ९ बजे कौलोमियर प्रस्थान करनेवाला है। प्रातःकाल चार बजे ही तीन खाकी वर्दियोंमें सुसज्जित सैनिकोंने उसे जगाया। यह देखकर उसके मानसपटलपर उन दो अंगरेजोंका चित्र अङ्कित हो गया, जिन्हें इसी समय प्रातःकालकी वेलामें गोलीसे मार दिया गया था। उन्होंने जल्दी ही कपड़े बदलनेकी आज्ञा दी और रातको खोली गयी हथकड़ियां फिर पहना दी गयीं। जिस समय ग्रीनवाल स्कूलके बाहर आया, जनरल अपनी मोटरमें आरूढ़ हो चुका था। लगभग सारी सेना भी प्रस्थान कर चुकी थी, केवल साधारण वेशमें रहनेवाले दो सरकारी गुप्तचर रह गये थे। उन्होंने ग्रीनवालकी हथकड़ियां खोल दीं और एक कमरेमें ले जाकर उससे प्रश्न पूछे एवं जिरह की तथा कर्नल बनबरीका हस्ताक्षर किया हुआ एक पत्र भी बतलाया, जिसमें लिखा था कि युद्धकी समाप्ति तक कैदीको चिरची मीडी नामक जेलखानेमें रखा जाय। अस्तु, वे गुप्तचर अपने साथ उसे मोटरमें बैठाकर जेलखाने ले गये। एक बार पुनः उसके कागजात, पास आदि देखे गये और जेलर द्वारा प्रश्न पूछे गये। गुप्तचरोंने बयानोंमें कागजके कई पन्ने काले किये और ग्रीनवालने उन सब आदमियोंके नाम बतला दिये, जिन्हें वह वर्षोंसे जानता था। अन्तको उसे एक गुप्तचरका भी नाम स्मरण आया और पूछा कि क्या वह नजदीक ही मिल सकता है। सौभाग्य कहिये अथवा यातनाओंका अन्त समझिये, गुप्तचर पासके कमरेमें ही बैठता था। उसने आकर पहचान कर दी और दो मिनट बाद ही वह स्वतन्त्र कर दिया गया। जेलसे मुक्त होकर ग्रीनवाल आज भी पत्रकारका काम कर रहे हैं। संसार-भ्रमण भी कर चुके हैं और सभी प्रदेशोंसे उनकी मांग आती रहती है। कुछ वर्ष पूर्व वे भारत भी आये थे।

———

गीत

दीप-शिखा अब बुझी हुई है!

कितने सपनोंको पी करके, आंसूके अमृत-सर भरके,
जीवित थी अब तक पर जलनेकी आशा अब छुईमुई है!
दीप-शिखा अब बुझी हुई है!

खिली धूप-सी लौ तो सोयी, धूमरेख-छाया भी खोयी,
नीलमके महलोंपर उड़ती चिह्नोंकी कुछ शेष रुई है!
दीप-शिखा अब बुझी हुई है!

—सुमित्राकुमारी सिनहा।
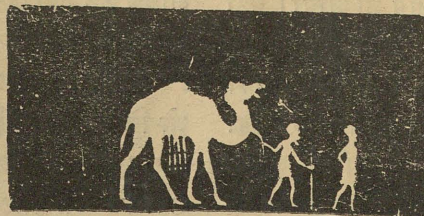
नेता

श्री अलखमुरारी हजेला, एम० ए०

जीवनमें एक घटना घटित हुई थी। प्रेममयी थी, मधुमें सनी थी। मीठी-मीठी थी, पर खट्टी-खट्टी। उसे आज सुनाता हूं।

तब मैं इतना बड़ा 'हीरा' नहीं था। नहीं, इतना छोटा भी नहीं था। वहां जो मजदूरोंके सामने नयी बस्ती बन गयी है, जब कोई उसे पूछनेवाला नहीं था, तब किसीने कौड़ियोंमें वह जमीन मोल ली थी। फिर मकानोंकी तङ्गीसे शहरका वह कोना भी आबाद होने लगा। उस नयी बस्तीमें एक हिलोर आ गयी।

× × ×

गर्वीली थी, शर्मीली थी—किसीसे वह बोली नहीं! सृष्टि यदि ऐसा निपुण रूप कहीं दोहरा न पायी, तो इसमें उसका कौन दोष! जब बाबू जानेको होते, तो उन्हें पहुंचानेके लिए बहुधा वह द्वार तक चली आती। वे जाने किस दफ्तरमें काम करते थे। पर—बाबू आ गये थे, मानो मजदूरोंके भाग्यसे। उनकी कन्या मजदूरोंकी देवी थी।

× × ×

दोके चार सही, पर पढ़ देती। वह कुछ भी पढ़ देती—ठीक था। ···किसीसे वह बोली नहीं।

"लो!" वह बादामी टूटा-सा कागज मैंने उसे सौंप दिया।

ननकू महाजन झगड़ रहा था, 'दस हैं।' पर मुझे तो याद था, सातका ही प्रोनोट लिखा था। कागज हाथमें लेकर वह घूरती रही।

"इसे पढ़ दो···" मैंने फिर कहा।

ननकू खिसिया गया। प्रोनोट मैंने छीन लिया था। छीनकर उसे दिया था। अब ननकूका फन्दा बेकार हो जायगा। यदि रूपाङ्गिनीके रूपने न रोक लिया होता, तो वह वहांसे भाग जाता।

प्रोनोट हाथमें लिये उसी तरह कुशल स्वरूपा मुझे देखती रही। जब ननकू कहने लगा "माई, मेरे दस हैं। दिला दो।" तब मैं भी धैर्य खो बैठा—"जल्दीसे पढ़ दो। इसे बतला दो, कितने हैं।"

फिर भी वह बोली नहीं।

उसके हाथमें सधे हुए प्रोनोटका दूसरा कोना पकड़कर मैंने झकझोर दिया। मेरे सन्देशसे रोमाञ्च न हो जाये, इसीलिए जल्दीसे प्रोनोट उसीके हाथमें छोड़ दिया। स्थिर-सा, मूर्ति-सा मैं खड़ा रहा।

आशावादी झूठा ननकू अब भी चुप नहीं हुआ—"माई, मेरे दस हैं, दिला दो।"

ननकूसे वह नहीं बोली। मुझे असमञ्जसमें डालकर बाबूकी कन्या पूछने लगी—"तुमने बिलकुल नहीं पढ़ा?"

मैं मूर्ख उसे क्या बताता। आंखें फेरकर कह दिया—"नहीं।"

उसे क्रोध आया—"तुम यहीं रहते हो?"

फिर आंखोंसे जब मैंने कह दिया "हां", क्षणभरमें उसे तरस आ गया।"

× × ×

गांजा छोड़ दिया, चरस छोड़ दिया, जुआ छोड़ दिया। न जाने क्या-क्या पढ़ा। पहले जरा छुट्टी मिलनेपर हम कारखानेमें काम करनेवाली औरतोंपर आंखें सेंक लिया करते थे। पर अब अवकाश ही कहां था।

मिलका काम जब खतम हो जाता, पढ़ाई शुरू होती। जो मैं पूछता, वह उन्नीस वर्षकी देवबाला मुझे पढ़ाती। वह कालेजमें जाती थी। न जाने कितना ज्ञान उसके कपालमें छिपा था। ...दो वर्षमें तो उसने मुझे बहुत समझा दिया। पहला अक्षर तो उसके तरसमें सीखा। फिर दयासे उसने कितना पढ़ा दिया।

अपढ़को ज्ञानकी लौने दीवाना बना दिया। अपने साथियोंसे मैं दूर निकल आया था। जब मैं शिक्षित होने लगा, तो एक दिन एक छोटी-सी पुस्तक 'मजदूरोंका आन्दोलन' मोल ले ली। उसीके आगे तो हिचक जाता था! इतने दिनोंसे सोचता था, यदि इस शिक्षाका उपहार दे पाता। धीरेसे वही उसके करोंमें अर्पित कर दी। पुस्तक हाथमें लेकर उसने नम्र आंखोंसे देख लिया। फिर कुछ

गुनगुना दिया।...उससे कौन कहता, पर मैं सोच रहा था, उसके लिए तो मैं दरिद्र नहीं।

फिर तो शह नित्यका पाठ—कालेजमें पढ़ा हुआ सारा अर्थशास्त्र मुझे पढ़ाने लगी। मजदूर क्यों कर्जेसे लदा है? टट्टी-जैसे मकानोंमें रहता है। स्वास्थ्य और जीवन उसने प्रकृतिपर निर्भर कर दिया है। वह वेश्यागामी बन गया है। हर बार किसी-न-किसी दफाके चक्करमें पड़ा है।... कपड़ेका उसे होश नहीं। पेटभर खाना उसे मिलता नहीं।—मांग कम होते हुए भी मजदूरोंका परिवार बढ़ता जाता है। विपत्तियोंको वह विधाताकी देन जानता है। ...चोरीसे पेट भर लेगा, पर अधिक वेतन पा जाना तो उसे असम्भव जान पड़ता है।

ऐसी बातें करती थी वह स्वरूपा! अचम्भित स्वरमें एक बार मैंने ठठोलीमें कह दिया—"तुम तो एक वेद हो।" वह मेरी हंसीका तत्त्व जानती थी। वह—बोली नहीं।

जब स्वरूप रानीकी बातें :मुझे सूझने लगीं, मजदूरोंके अनजाने क्षेत्रमें मैं बढ़ता गया।

× × ×

एक बार मैं कांप गया। मिलके मालिकने मुझे नोटिस दे दिया था।

'स्वरूपा! यदि नौकरी छूट गयी?"

"हटो हीरा! इतना कायर बनते हो? उस दिन तो तुम कहते थे, रीछ मारते समय जब उसका पञ्जा तुम्हारे माथेपर लगा, तुम तनिक भी नहीं घबराये।"

"पर स्वरूपा! रीछका भय तो एक क्षणका भय था। यह तो क्षण-क्षणका भय जीवन-भरके लिए है। भाईसे मैं अलग हो चुका हूं, तुम जानती हो। वह तो मिल-मालिकका गुर्गा है। मुझसे खार खाये बैठा है।"

"तुम मेरे यहां रह जाना हीरा।" मैं क्या कह पाता? बाबू तो कभी-कभी हाट-बाटसे कुछ सौदा-सुलुफ ही मंगवा लेते थे। पर उसकी चाकरी जो मिल जाती! मैं जगके सारे धन्धे छोड़ देता।

पहाड़ी निर्झरणीकी भांति वह आवेशमें बहती गयी—"तुम कहते थे, स्वरूपा! तुमने मुझे ऐसा पढ़ा दिया... इतनी शक्ति दे दी, तुम्हारे कहनेको मैं कभी न टालूंगा।"

सचमुच मुझे उसकी सेवा अच्छी लगती थी। मैं पूछ बैठा—"अब रहने दो।...बताओ, इतने उद्योगके बाद क्या होगा?"

× × ×

यों किसीसे वह बोलती न थी। पर शिक्षा देनेमें निपुण थी। कुशल स्वरूपाने व्याख्यानका एक-एक शब्द मुझे याद करा दिया। सचमुच वह एक 'वेद' थी। उसने अगणित सूत्र मेरे मनमें उलझा दिये।

...जब मैं व्याख्यान दे चुका, मेरे पास ही बैठी हुई वह मुझे दीख पड़ी। हर्षमें वह खिली जा रही थी।

लोगोंने मुझे घेर लिया। मैं जल्दीसे उसकी ओर बढ़ गया—"स्वरूपा!" उन दो आंखोंसे वह मेरा उर भरे दे रही थी।

चलनेकी राह किधरसे मिलती। भीड़ बढ़ती गयी। वह—किसीसे बोली नहीं।

× × ×

जब मैं नेता बनने लगा, बड़ी-बड़ी उलझनें सुलझने लगा, तब आत्मविश्वासमें .सङ्कल्पकी सूझी।

एक समय खलबलाया-सा मैं उससे कह बैठा—"देवी, तुम्हींसे नेता बना, तुम्हारे बिना नेता रह न सकूंगा।"

"मैं कहां जाती हूं?" कुशल स्वरूपाने कहा।

मेरे मनकी वाणी क्या वह आज तक नहीं समझी?

"तुम मेरी जीवन-सङ्गिनी बनी रहो..."

पलभरको देवी फिरसे बाला बन गयी। उस बालपनमें वह हंसी।

हंस लो! उसकी हंसी थी, "अविवाहित जीवनकी सेवा सुन्दर है...सारी शिक्षा भूल रहे हो? तुमने कहा था, स्वरूपा! तुम्हारा कहना कभी न टालूंगा।...पागल बने हो हीरा?"

अकस्मात् मैं कह उठा—"स्वरूपा! तुम एक वेद हो। किन्तु पागल करके उंगली उठा दी।"

मैं नेतापनके जङ्गलमें विचरण करने लगा।

× × ×

वहांका देशनिकाला आज भी उसीके सिद्धान्तोंका नेता बना हूं, किन्तु क्या उस देशमें अब नेता नहीं रहते?

एरसात्स

डा० धनीराम प्रेम, बर्मिङ्घम

आज अनेक बड़े-बड़े देश ऐसे हैं, जिन्हें जीवनके लिए अनेक आवश्यक वस्तुयें दूसरे देशोंसे लेनी पड़ती हैं। जर्मनी भी इन्हीं देशोंमेंसे एक है। जर्मनीको कई प्रकारकी वस्तुयें बाहरसे मंगानी पड़ती हैं। स्वयं जर्मनीके निवासियोंके लिए अनेक प्रकारमें खाद्य पदार्थ बाहरसे आते हैं। लोहा, तांबा, लकड़ी, मैंगनीज, पेट्रोल आदि अन्य वस्तुयें भी बाहरसे मंगायी जाती हैं। साथ ही उद्योगधन्धोंके लिए कच्चा माल भी बड़े परिमाणमें बाहरसे आता है।

इंगलैण्ड तथा मित्र-राष्ट्र इस बातको जानते हैं। इसीलिए उन्होंने सामुद्रिक प्रतिबन्ध जारी किया है। मित्र-राष्ट्रोंका विश्वास है कि थोड़े समयमें ही जर्मनीका आवश्यक वस्तुओंका भण्डार खाली हो जायगा। और यदि मित्र-राष्ट्र बाहरसे नया माल जर्मनीमें न जाने दें, तो जर्मनीको विवश होकर पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी। सामुद्रिक प्रतिबन्धको इसीलिए मित्र-राष्ट्र 'आर्थिक अस्त्र' कहते हैं और इसकी शक्तिको अन्य अस्त्रोंकी शक्तिसे अधिक मानते हैं।

महिला शीशेके ऊनी कपड़े पहनकर काम कर रही है।

क्या युद्ध छेड़ते समय जर्मनी इस अस्त्रसे अनभिज्ञ था? नहीं! क्योंकि पिछले महायुद्धमें भी इस अस्त्रने मित्र-राष्ट्रों-की बड़ी सहायता की थी। हिटलरके हाथमें जिस समय शक्ति आयी, तो उसे यह विदित था कि एक दिन उसकी आकांक्षाओंके मार्गमें ब्रिटेन व फ्रान्स बाधा डालेंगे। और इसका अर्थ था महायुद्ध। इसीलिए हिटलरने इस भावी महायुद्धके लिए प्रकाश्यमें तथा गुप्त रूपसे तैयारी करनी शुरू कर दी। हिटलरको यह मालूम था कि पिछले महायुद्धमें जर्मनीकी पराजयका एक बड़ा कारण सामुद्रिक प्रतिबन्ध था। इसका सामना करनेके लिए उसके सामने दो उपाय थे—पहला तो यह कि आवश्यक वस्तु-ओंका अपरिमित संग्रह कर लिया जाय और उनकी खपत कम कर दी जाय; दूसरा यह कि वैज्ञानिकों द्वारा आवश्यक वस्तुओंकी कृत्रिम रूपसे प्रयोगशा-लाओं तथा कारखानोंमें नकल करायी जाय। जर्मनमें इस प्रकारकी नकली वस्तुओंको 'एर-सात्स' कहते हैं।

शक्ति प्राप्त करते ही हिटलरने नकली वस्तुओं-के बनानेके लिए वैज्ञा-निकोंको अकथनीय सुवि-धायें दीं। सारे देशकी वैज्ञानिक शक्ति इस दिशामें लग गयी। कुछ दिनों तक यह प्रयत्न प्रयोग-रूपमें रहा, परन्तु धीरे-धीरे नकली वस्तुओंको प्रचुर संख्यामें बनानेके लिए कारखाने खुल गये। गोयरिङ्गने स्वयं १९३६ में इस सफलताको घोषित किया था। परन्तु संसारने इसे एक तमाशा समझा। हिटलरके लिए यह अच्छा ही हुआ। वह बिना बाधाके, बिना विरोधके अपना कार्य करता गया। नकली चीजें बनने लगीं, बिकने लगीं,
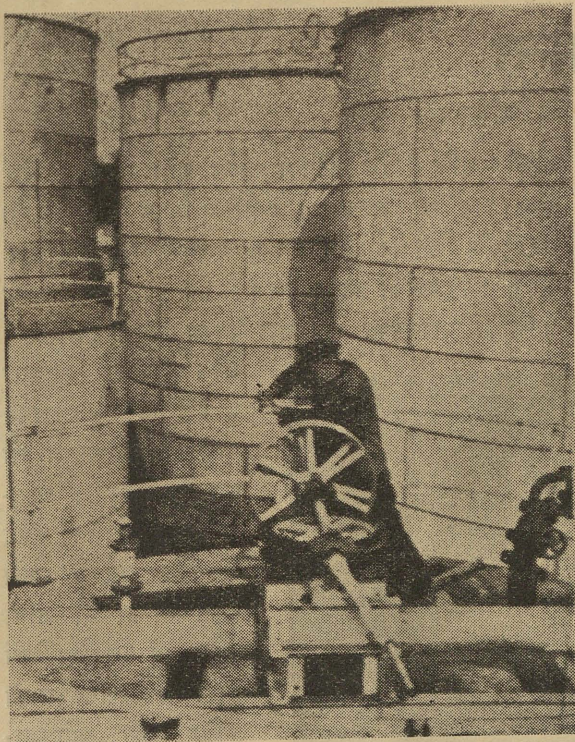
आलूसे अलकोहल निकाला जा रहा है।

प्रयोगमें आने लगीं। कुछ अच्छी रहीं, कुछ खराब रहीं। परन्तु उनका बनना जारी रहा।

युद्धके लिए आजके युगमें सबसे आवश्यक पेट्रोल तथा मशीनका तेल है। जर्मनीको यह बाहरसे काफी परिमाणमें मंगाना पड़ता है। सामुद्रिक प्रतिबन्धके कारण यह जहाजों द्वारा नहीं आ सकता। रूमानियासे रेल द्वारा लानेमें समय व पैसा बहुत अधिक खर्च होता है। इसलिए जर्मनीमें पेट्रोल व तेल कोयलेसे निकाला जाता है। जर्मनीमें कोयलेकी कमी नहीं, हालांकि इस प्रकारका पेट्रोल कुछ महंगा पड़ता है। फिर भी युद्धके पहले जर्मनीमें एक वर्षमें ऐसा पेट्रोल २० लाख टन तैयार हुआ था। इसके अतिरिक्त आलुओंसे लगभग डेढ़ लाख टन अलकोहल बनाया गया था, जो पेट्रोलमें मिलाकर प्रयोगमें लाया गया। कोक (जला हुआ कोयला) से छः लाख टन तेल निकाला गया। छः लाख टन पेट्रोल स्वयं जर्मनीकी भूमिमेंसे निकाला जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक तथा कृत्रिम पेट्रोल मिलाकर जर्मनीकी आवश्यकताको बड़े अंशमें पूरा करते हैं।

पिछले महायुद्धमें जर्मनीमें साबुनका बड़ा अभाव था। उस समय जर्मनोंने नकली साबुन बनाया था, किन्तु वह इतना बुरा था कि लोग उसके बजाय बिना साबुनके रहना पसन्द करते थे। इस बार यह कमी पूरी कर ली गयी है। कोयलेसे पेट्रोल निकालनेमें 'पेरेफीन' नामका एक पदार्थ भी निकलता है। चर्बीकी जगह जर्मन अब इस पेरेफीनसे साबुन बनाते हैं। परन्तु यह सारे देशकी मांग पूरी नहीं कर सकता, इसीलिए यह एक अमुक मात्रासे अधिक किसीको नहीं मिलता।

पेट्रोलके बाद युद्धके लिए आवश्यक वस्तुओंमें लोहेका नम्बर आता है। लोहेके बिना काम तो नहीं चल सकता, लेकिन उसकी जगह कई बातोंमें अल्यूमिनियमने ले ली है, जो जर्मनीमें बोक्साइट तथा साधारण चिकनी मिट्टीसे तैयार किया जाता है।

बालू तथा चिकनी मिट्टीसे तरह-तरहका शीशा बनाया जाता है। एक प्रकारका शीशा तो इतना कड़ा होता है
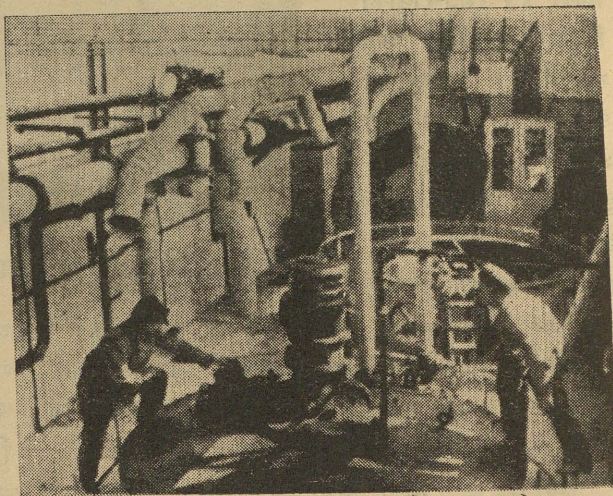
कीचड़ भी बेकार नहीं जाने पाता। शहरके पनालोंमें बहनेवाली गन्दगीसे उत्पन्न बिजलीसे शहरमें रोशनी की जाती है।

कि धातुकी भांति टूट नहीं सकता। नल आदि बनानेमें लोहेकी जगह इसी शीशेका प्रयोग होता है।

नकली वस्तुओंमें सबसे मुख्य है 'रेसिन'। यह कोलतारसे बनायी जाती है। इससे प्याले, तश्तरी, ग्लास, छुरी, कांटे, कुन्दे, मोटरकारका ढांचा आदि अनेक आवश्यक चीजें बनायी जाती हैं। इनसे मशीनोंके भी कई भाग बनते हैं। इस प्रकार लोहे तथा अन्य धातुओंकी बचत हो जाती है।

जर्मनीमें रुई व ऊनकी कमी है। इसलिए वस्त्रोंका अभाव होना आवश्यक है। इस अभावको दूर करनेके लिए वैज्ञानिकोंने लकड़ीसे धागा बनाया है, जो रुई व ऊनके धागोंमें मिलाकर बुना जा सकता है। इसमें एक बड़ा दोष है; यदि इस नकली धागेकी मात्रा ४० प्रतिशतसे अधिक हो, तो कपड़ा जल्दी खराब हो जाता है। आजकल जर्मनीमें इसकी मात्रा ६० प्रतिशत रहती है, इसलिए लोगोंको बड़ी शिकायत रहती है। मछलीके चर्म और मुर्ग आदि चिड़ियोंके परोंसे कपड़ा तथा शीशासे ऊन बनानेका प्रयत्न हो रहा है, परन्तु कहा नहीं जा सकता कि यह प्रयत्न कहां तक सफल होगा।

कागज सभी देशोंमें लकड़ीसे बनाया जाता है। लेकिन लकड़ी युद्धके लिए अन्य कामोंमें भी आती है। इसलिए लकड़ीकी बचत करनेके लिए जर्मनीमें कागजआलूके पत्तोंसे बनाया जाता है।

रबर और चमड़ा भी आवश्यक वस्तुयें हैं। जर्मनीमें इनकी, विशेषतया रबरकी कमी है। इसकी जगह उन्होंने 'बूना' नामक नकली रबर बनायी है। बूना बनानेके लिए केवल कोयला व चूनाकी आवश्यकता पड़ती है, जिनकी जर्मनीमें कमी नहीं।

विज्ञान खाद्यपदार्थोंमें भी अपनी करामात दिखा रहा है। मछलियोंसे अण्डेका सफेद भाग बनाया जाता है। लकड़ीसे शकर निकाली जाती है। नकली काफी व नकली मक्खन भी बन चुका है। चौकेकी बची हुई चीजोंमेंसे जानवरोंके लिए चारा निकाला जाता है।
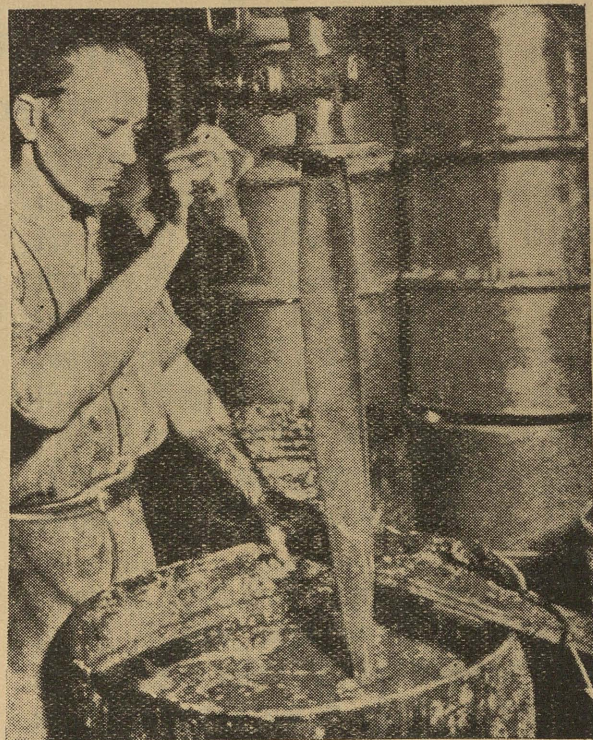
कोयलेसे वैज्ञानिकोंने लाखों टन पेट्रोल तैयार किया है।

इस प्रकार जर्मनी वर्षों पहलेसे ही इस युद्धकी तैयारी कर रहा था। जर्मनोंका यह कहना कि यह युद्ध ब्रिटेन व फ्रान्सने उनके मत्थे मढ़ा है, बिलकुल गलत है। लेकिन क्या जर्मनीकी ये तैयारियां सामुद्रिक प्रतिबन्धसे उसकी रक्षा कर सकेंगी? चूंकि अब युद्ध जोरोंसे लड़ा जा रहा है, जर्मनीको इन नकली चीजोंकी अधिकसे अधिक आवश्यकता पड़ेगी। उनके प्रथम श्रेणीके कारखानोंके लिए भी उस आवश्यकताको पूरा करना सम्भव न होगा। मित्र-राष्ट्रोंको नकली चीजें बनानेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि उन्हें प्राकृत चीजें प्रचुर मात्रामें मिल रही हैं। इसलिए एरसात्सकी अन्तमें अवश्य ही पराजय होगी।

———

एशिया : आत्माके बदले तलवार

श्री चन्द्रशेखर, एम० ए०

यूरोप और एशियाकी, जीवनके दूसरे क्षेत्रोंकी भांति ही, राजनीतिक क्षेत्रमें भी विभिन्न विचार-धारायें रही हैं। दोनोंकी सभ्यताओं और संस्कृतियोंमें भी विभिन्नता रही है और इन विभिन्नताओंमें जहां कितनी ही बातें स्पष्ट होती हैं, वहां सबसे स्पष्ट बात यह होती है कि यूरोपने जहां अधिकांशतः पशुबलपर विश्वास किया है, वहां एशिया शान्तिका उपासक रहा है। संसारके अनेक महापुरुषोंमें एशियामें उत्पन्न होनेवालोंने ही प्रायः शान्तिका उपदेश दिया है। एशियाकी जीवनके चरम-लक्ष्यको लेकर जो धारणा रही है, वह है आध्यात्मिक; और यूरोप भौतिकताका उपासक रहा है।

और इस चरम-लक्ष्यको रखकर दोनोंके क्रियाकलाप तथा उसकी प्रतिक्रियायें जैसी होनी चाहिए थीं, वैसी ही हुई हैं। शताब्दियोंसे जिन देशोंने भौतिक सफलताओंको कुछ भी महत्त्व न दिया हो, वे अगर भौतिकवादी यूरोपीय राष्ट्रोंसे पशुबलमें हीन रहें, तो यह अस्वाभाविक नहीं है। इसीलिए एशियामें यूरोपीय राष्ट्रोंकी लूट-खसोट जारी रही है और एशियाने अपनेको इसके प्रतिरोधके लिए अपेक्षाकृत निर्बल पाया है। सदियोंका इतिहास जो रङ्गीन जातियोंपर श्वेताङ्गोंके अत्याचारोंकी असंख्य मार्मिक कहानियोंसे भरा पड़ा है और उनकी बीभत्स लीलाओंकी जो सीमा नहीं दिखाई पड़ती, उसका कारण एशिया और यूरोपकी इस विचार-धाराके अन्तरमें है। आत्मिक, आध्यात्मिक शक्तियोंके बलपर जीवन-यापन करना ही जिसका लक्ष्य हो, ऐसा एशिया सदासे भीषण हथकण्डों एवं पशुबलका शिकार हुआ है और आज भी वह अपनेको विमुक्त नहीं पाता कि अपने विकासके मार्गपर स्वेच्छापूर्वक चल सके। चारों ओरसे वह विवशताओंकी शृङ्खलामें बंधा कराह रहा है।

पर इसकी प्रतिक्रिया क्या हुई है? आध्यात्मिक शक्तियोंको जब पशुबलने कुचलना प्रारम्भ किया और उसके इस प्रयत्नमें सफलता भी काफी मिलने लगी, तो धर्म और ईश्वरके प्रति मनुष्यका विश्वास उठने लगा। आज जो वास्तव रूपमें नास्तिकोंकी इतनी बड़ी पल्टन खड़ी दिखाई पड़ रही है, वह आध्यात्मिक शक्तियोंपर पशुबलकी विजयकी प्रतिक्रिया है और यह प्रतिक्रिया आज भीषण रूपोंमें हमारे सामने उपस्थित है। मानव-जातिकी सभ्यताके लिए यह सबसे बड़ा अभिशाप हुआ है, जिसने वर्तमानके साथ-साथ मानवका भविष्य भी अन्धकारपूर्ण कर दिया है।

यूरोपकी भौतिक महत्त्वाकांक्षाओंने राष्ट्रोंमें जैसी घृणा एवं प्रतिहिंसाकी भावना भर दी है, उसका परिणाम आज एक भीषण युद्धके रूपमें दिखाई पड़ा है। यह जो संहार-लीला चल रही है, केवल यही एक हानि होती, तो भी इसकी भीषणताको सीमित समझा जाता। लेकिन सच तो यह है कि मनुष्यका अगर यह विश्वास हुआ कि पशुबल, शस्त्रास्त्र, लूट-खसोट, छल-प्रवञ्चना एवं विश्वासघात ही सफलताके साधन हैं, तो संसारके लिए, संसारकी शान्ति एवं मानव-संस्कृतिके लिए यह बड़ी ही भीषण सम्भावनाओंसे भरी हुई स्थिति होगी। वर्तमान सभ्यतामें मनुष्यने जहां बहुत कुछ पाया है, वहां खोया भी उसने बहुत कुछ है। कितने ही ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हें दो पैरोंवाला खूंखार पशु कहनेमें क्या आपत्ति हो सकती है? कितने ही मनुष्योंकी रक्त-पिपासा क्या किसी हिंस्र पशुसे कम दिखाई पड़ती है? यूरोपमें आज सामूहिक हत्याओं एवं भीषण काण्डोंका बाजार गर्म है, उसे किसका परिणाम कहें?

इसीलिए हम कहते हैं कि एशियाने यूरोपके सम्पर्कमें आकर जहां अपना शोषण कराया है, वहां उसकी जो सबसे बड़ी प्रतिक्रिया हुई है, वह यह है कि उसने सीखा है कि संसारमें अगर जीना है, संसारके महत्त्वाकांक्षी उन्मत्त व्यक्तियों एवं राष्ट्रोंसे अगर अपनी रक्षा करनी है, तो उसे भी सारे मारात्मक शस्त्रास्त्रोंसे अपनेको सुसज्जित कर लेना चाहिए। यूरोपके 'माडल' पर जापानको बढ़ते और उन्नत होते हुए भी उसने देखा और उसकी धारणा और भी दृढ़ हुई। अधिकारपर उसने शक्तिकी विजय देखी और वह भी शक्ति-सञ्चय करनेकी तरफ बढ़ा। आत्माके बदले उसने तलवारमें विश्वास करना सीखा।

पिछले कुछ दिनोंमें एशियाई देशोंने इसीलिए अपनी सामरिक शक्ति बढ़ानेकी कोशिश की है, फिर भी यूरोपीय राष्ट्रोंके मुकाबिले उनकी स्थिति नगण्य-सी ही है। लेकिन एशियाई देशोंका भ्रमण करनेवाला कोई भी व्यक्ति इससे इनकार नहीं कर सकता कि अपनी आर्थिक एवं राजनीतिक क्षमताओंके अनुसार चीन, फिलीपाइन्स, मलाया, श्याम, फ्रेञ्च इण्डोचीन और फारमोसा—सभीने अपनेको शक्तिशाली बनानेकी कोशिश की है। उक्त देशोंकी दरिद्रता, पिछड़ी हुई विचार-धारा एवं वैज्ञानिक साधनोंकी न्यूनता तथा दूसरे कितने ही कारणोंसे वे अब भी बहुत पीछे हैं। एशियाके अधिकांश देश अपने विकासके सारे साधनोंका स्वेच्छापूर्वक उपयोग करनेके लिए भी स्वतन्त्र नहीं हैं। राजनीतिक अथवा आर्थिक अथवा दोनों ही गुलामियोंसे उनके हाथ-पांव बंधे हैं। इनमें जापानको पूरी आजादी है और उसने सारे साधन एकत्र कर लिये हैं।

जापानको ही पहले लें। जापानमें इस समय एक सैनिक फैसिस्ट शासन चल रहा है और मञ्चूरिया लेनेके बादसे उसका सैन्य-व्यय तीन-चार गुना बढ़ गया है। सोवियट यूनियन और मञ्चूकोके सीमान्तपर जापानकी किलेबन्दी अद्‌भुत है। बजटका आधा भाग सैनिक तैयारीमें लग जाता है, जिसका एक चौथाई कर्ज लेकर पूरा किया जाता है। इस राष्ट्रीय ऋणका सूद भी जोड़कर इसमें सम्मिलित कर दिया जाय, तो कहना न होगा कि शासन चलानेके लिए जापानके पास बहुत कम पैसे बच रहते हैं। देशकी आर्थिक स्थितिको देखते हुए इतना बड़ा सैन्य-व्यय जापानको और सारी दिशाओंमें अत्यन्त मितव्ययी होनेके लिए विवश कर देता है। इस्पात तो सेनाके लिए ही सुरक्षित कर दिया गया है। आयातपर कड़ा प्रतिबन्ध है और इस बातका ध्यान रखा जाता है कि सेनाकी आवश्यकताओंकी पूर्ति पहले की जाय और बादको दूसरे लोगोंकी।

मञ्चूकोकी सुरक्षाके लिए जबर्दस्त किलेबन्दी कर उसे सब प्रकारसे स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न जारी है। रेलवे, सीमेण्ट, लोहा, इस्पात और तेल-सम्बन्धी प्रयत्न बड़ी तेजीसे चल रहे हैं और इन सबका अर्थ है कि सोवियट यूनियनसे यदि किसी समय युद्ध चल भी पड़े, तो मञ्चूकोमें जापान अपनेको खूब शक्तिशाली पाये। यहां तक कि किसानों तकको युद्ध-कला, खासकर गुरिल्ला युद्ध-कला सिखायी जाती है।

लेकिन जापानसे भी अधिक तेजीसे तैयारी की है रूसने। ब्लाडीवोस्टकमें रूसका वायुयान-अड्डा है, जिससे ३॥ घण्टेके भीतर रूसी वायुयान जापानपर बम-वर्षा कर सकते हैं। १९०४-५ में जारकी जिस सेनाने मञ्चूरियामें प्रवेश किया था, उसकी अपेक्षा सोवियट सेना कहीं अधिक शक्तिशाली है। मञ्चूकोके सीमान्तपर कितनी सोवियट सेना है, इसे ठीक-ठीक तो नहीं बताया जा सकता; पर अनुमान किया जाता है कि २५०,००० से कम न होगी। जापानी सेनाके सम्बन्धमें कुछ लोगोंका अनुमान है कि वह सोवियट सेनाकी आधी है।

जापान अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें अपनी सैन्य-शक्ति बढ़ानेका प्रयत्न इधर कई वर्षोंसे करता आ रहा है। इंगलैण्ड, अमेरिका और जापानमें जो ५:५:३ का अनुपात वाशिङ्गटन-सन्धिके अनुसार स्थापित हुआ था, उसे जापानने लन्दनके नौ-सेना-सम्मेलनमें समझौता करके तोड़ना चाहा। क्योंकि जापान उक्त देशोंसे घटकर नहीं रहना चाहता था। पर जब उसकी बात नहीं मानी गयी, तो वह सम्मेलनसे हट गया और स्वेच्छापूर्वक तैयारी करने लगा। जापानके लिबरल नेता ओकिया ओजाकीने एक बार जापानकी व्यवस्थापिका सभा डायटमें भाषण करते हुए कहा था—"सेना-विभाग कहता है कि उसे पैसेकी आवश्यकता है, लेकिन वास्तवमें आवश्यकता है आदमियोंकी। जापानकी जनसंख्या सिर्फ ७०,०००,००० है और सोवियट यूनियन एवं चीनमें सैकड़ों लाख आदमी हैं। नौ-सेना विभागके लिए पैसे चाहिए, पर सच तो यह है कि अमेरिका और ब्रिटेन सम्पत्तिमें जापानसे बहुत आगे हैं। उनमें और जापानमें बादलों और कीचड़का-सा अन्तर है।" लेकिन इस कीचड़ने बादलोंकी तुलना करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी है। चीनमें इसने ब्रिटेन और अमेरिका दोनोंको धता बतानेमें भी कोई बात उठा नहीं रखी है। इस विषयमें जापानकी जो सबसे बड़ी विशेषता रही है, वह है जापानी जनताकी देशके लिए महान् कष्ट सहने एवं त्याग करनेकी प्रवृत्ति। दूसरे देशोंमें जहां इसके लिए जनताको तैयार करना पड़ता है, वहां जापानकी जनता स्वयं अपनी सरकारपर दबाव डालती है कि वह अच्छी सैनिक तैयारी करे। क्योंकि कुछ

जापानी देशभक्तोंने जापानी जनताके हृदयमें यह भाव कूट-कूटकर भरनेकी कोशिश की है कि जापान सारे संसारपर शासन कर सकता है। और एक बार तो एक जिम्मेदार व्यक्तिने १९२९ में संसार-विजयके लिए जापानी सरकारके पास एक योजना भी पेश की थी। जापानी जनताका यह उत्साह इस अंश तक बढ़ गया है कि जब-जब जापानी सरकार किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलेमें समझौतेकी नरम नीतिका अवलम्बन करना चाहती है, तभी सरकारको या तो हटना पड़ता है, अथवा बड़े-बड़े अधिकारियोंकी हत्या करनेसे भी वे नहीं चूकते। जापानके कितने ही मन्त्रिमण्डलोंको इसीलिए जनताके रोषका शिकार होना पड़ा है।

सोवियट यूनियनकी सैनिक तैयारीके सम्बन्धमें रूसने सदा सभी बातोंको गुप्त रखनेकी कोशिश की है, और जो कुछ बातें सामने आयी हैं, अनुमानके आधारपर ही। कुछ लोगोंका अनुमान तो यह है कि कभी-कभी रूसने संसारके सभी देशोंकी अपेक्षा अधिक रुपया शस्त्रास्त्रोंपर खर्च किया है। एक संस्था 'फारेन पालिसी एसोसियेशन' ने १९३६ में विभिन्न राष्ट्रोंकी सैनिक तैयारियोंपर खोज करनेके बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि उस साल रूसने ३,०००,०००,००० डालर खर्च किये थे। उस वर्ष किसी भी देशने इतना धन नहीं लगाया था। उस साल जापानने ३००,०००,००० डालर खर्च किये थे।

पूर्वी साइबेरियामें रूसकी तैयारियां और भी गुप्त रखी गयी हैं; पर आमूर और उसूरी नदियोंपर उसकी किलेबन्दी अभेद्य बतायी जाती है और उधर ब्लाडीवोस्टककी उसकी तैयारी युद्धकालमें कोरियाके साथ जापानका सम्बन्ध आसानीसे काट सकेगी। रूस और जापानके सैन्य-सीमान्त आमूर, उसूरी और चार्गुन नदियोंसे सटे हुए हैं। हयाशीने १९३७ में एक वक्तव्य देते हुए कहा था कि मञ्चूरियापर जापानका अधिकार हो जानेके बादसे २४०० छोटे-मोटे सङ्घर्ष रूस और जापानमें हो चुके हैं। सङ्घर्षोंकी यह विशाल संख्या आशाजनक भी है और निराशाजनक भी। आशाजनक तो इसलिए कि इतनी अधिक घटनाओंके होते हुए भी रूस या जापान किसीने भी इनके बहाने विशाल युद्ध करनेका इरादा नहीं किया और निराशाजनक इसलिए कि ये घटनायें स्पष्ट करती हैं कि दोनों देशोंमें सदिच्छापूर्ण भावनायें नहीं हैं।

अपने गृहयुद्धों और जापानी युद्धोंकी वजहसे चीनको भी शस्त्रास्त्रोंकी तैयारीकी दौड़में तेजीसे चलकर भाग लेना पड़ा है। चीनके बजटका प्रायः ४० फीसदी भाग सैनिक तैयारीमें जाता है और इसके अतिरिक्त प्रान्तोंके बजटका भी काफी अंश सेनापर खर्च होता है। चीनने अपनी आकाश-सेना तैयार करनेमें काफी सम्पत्ति लगायी है। १९३६ में अमेरिकासे जिन-जिन देशोंमें वायुयान गये थे, उनमें चीनके लिए उसका निर्यात सबसे अधिक था। कई साल तक एक जर्मन युद्ध-विशारद जेनरल फान फाल्केन हासेन तानकिनमें रहकर चीनियोंको सैन्य-शिक्षा देता रहा है।

चीनके विद्यार्थियों तथा सरकारी कर्मचारियोंके लिए सैन्य-शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी है।

रूस, जापान और चीन जैसे एशियाके विशाल देशोंमें ही यह तैयारी इतने जोर-शोरसे नहीं हो रही है। एशियाके छोटे-छोटे राष्ट्रोंने भी इस सम्बन्धमें तेजीसे चलना शुरू किया है। यहां तक कि फिलीपाइन्स द्वीप-समूहमें भी नवजागरण आया था। एक समय था, जब मनिल्ला तथा उसके आस-पास अमेरिकाके चार-पांच हजार सैनिक ही फिलीपाइन्सकी रक्षाके लिए काफी समझे जाते थे। पर इधर कई वर्षोंसे वह भी किसी भी दुर्घटनाके लिए अपनेको शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित कर रहा है। यों भी उसे तैयार रहना है; क्योंकि समझौतेके अनुसार ४ जुलाई १९४६ में उसे पूर्ण स्वाधीनता मिल जायगी और तब तक उसे पूरी तरह स्वावलम्बी हो जाना चाहिए। जापानके विश्व-विजयके स्वप्नसे फिलीपाइन द्वीप-समूह छूट नहीं जाता, अतः वह देश समय रहते ही सचेत हो गया है। मेजर जेनरल डगलस मैक आर्थरने फिलीपाइन्सको समर-सज्जासे सुसज्जित करनेमें बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने एक बार कहा था कि फिलीपाइन द्वीप-समूहपर चढ़ाई करके कोई आसानीसे विजय नहीं प्राप्त कर सकता। इसके कारण बताते हुए उन्होंने कहा था कि वहां हवाई जहाज आसानीसे नहीं उतारे जा सकते, उसका समुद्र-तट भी उसकी रक्षा करेगा और गुरिल्ला युद्धके लिए भी वहां खूब सुविधायें हैं। लेकिन दूसरे कितने ही पर्यवेक्षक डगलसके समान आशावादी नहीं हैं। आकाश-युद्धसे फिलीपाइन्सको पराजित करनेमें वे किसी उन्नत देशके लिए बहुत कठिनाई नहीं समझते।

प्रायः ७०० द्वीप दक्षिण और दक्षिण-पश्चिममें नीदरलैण्ड इण्डीजसे मिलते हैं। उक्त अञ्चलोंमें जापानका बहुत अधिक व्यापारिक प्रवेश हुआ है और जापानी तथा डच जहाजों-की प्रतियोगिता उनमें बराबर चलती रही है। इन विशाल और सम्पन्न अञ्चलोंमें जापानका प्रवेश केवल आर्थिक ही है अथवा राजनीतिक भी, यह बात डच अधिकारियोंको बराबर चिन्तित करती रही है। इसीलिए सूरबया तथा न्यूगिनीमें रक्षात्मक तैयारियां भी की गयी हैं।

लेकिन अपनी इन तैयारियोंकी अपेक्षा डच इस बातसे भी अपनेको बहुत अधिक सुरक्षित समझते हैं कि सिङ्गापुरमें ब्रिटेनका नौ-सेना-अड्डा इतना मजबूत है और यद्यपि ग्रेट ब्रिटेन और नीदरलैण्ड्समें ऐसा कोई समझौता नहीं है, पर दक्षिण-पूर्व एशियामें ब्रिटेनके जो हित हैं, उनके कारण उधर जापानकी महत्त्वाकांक्षाओंको ब्रिटेन पनपने नहीं देगा। ईस्ट इण्डीजके तेल-क्षेत्रमें (जोपूर्वी एशियामें सबसे बड़ा तेल-क्षेत्र है) जो ब्रिटिश शेल कम्पनी है, उसके कारण भी ब्रिटेन जापानको उधर आंख न उठाने देगा।

मलाया प्रायद्वीपके एक किनारे सुदूर पूर्वका यूरोपके लिए एक प्रमुख द्वार सिङ्गापुर एक जङ्गलसे अब संसारका एक प्रमुख नौ-सेना-अड्डा हो गया है, जिससे सुदूर पूर्वमें ब्रिटेन-की स्थिति बड़ी मजबूत हो गयी है, और इसीलिए वह जापानकी आंखोंमें बराबर खटकता रहता है। १९२२ में होनेवाली वाशिङ्गटन-सन्धिके अनुसार प्रशान्त महा-सागरमें किलेबन्दीकी मुमानियत कर दी गयी थी। पर सिङ्गापुरके लिए ऐसी कोई बाधा न थी। सिङ्गापुर पूर्वका जिब्राल्टर हो गया है और पूर्वी एशियाके लिए ही नहीं, उसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व हो गया है। चीन और भारत वहां मिलते हैं। सिङ्गापुरसे ही मलायाका रास्ता है, जो जिस्ते और रबरके ख्यालसे संसारमें एक प्रमुख स्थान रखता है। सिङ्गापुरसे कोई जहाजी बेड़ा एक ओर नीदर-लैण्ड्स ईस्ट इण्डीज द्वीप-पुञ्जोंकी रक्षा कर सकता है, दूसरी ओर दक्षिणसे आस्ट्रेलियाकी रक्षा हो सकती है और तीसरी ओरसे भारतकी तरफ किसीको भी बढ़नेसे वह रोक सकता है। यूरोप और सुदूर पूर्वके बीच दौड़नेवाले हवाई जहाजोंका भी वह अड्डा है। कई दृष्टियोंसे सिङ्गापुर ब्रिटिश सत्ताका एक गढ़ हो गया है और यह गढ़ पिछले वर्षोंमें अभेद्य-सा हो गया है। मलायाके उत्तरमें है श्याम। श्याममें प्रवेश करते ही धानसे लदी हरियालीके दर्शन होते हैं और जिधर देखिये, छोटे-छोटे बच्चे नङ्गे-धड़ङ्गे भैंसोंको हाथी बना, उन्हें दौड़ाते दिखाई पड़ते हैं।

एक समय था, जब श्यामका महत्त्व इसके प्राकृतिक सौन्दर्य और इसके प्रचलित रीति-रिवाजोंकी कहानियोंमें था। पर आज वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंको लेकर महत्त्वपूर्ण हो गया है। जापानकी कूटनीति वहां भी दांव-पेंच चल रही है। ब्रिटेनका भी वह प्रभाव-क्षेत्र है और श्याममें चीनी व्यापारी हैं, जिनका उद्देश्य अधिकसे अधिक सम्पत्ति बटोरकर अपने देशमें भेजना ही रह गया है। सरकारके ब्रिटिश सलाहकार मि० डब्ल्यू० ए० एम० डालने अपनी १९३६-३७ की रिपोर्टमें बल्कि कहा भी था कि विदेशोंके खर्च तथा श्याम प्रवासी चीनियों द्वारा स्वदेशको जानेवाली लम्बी-लम्बी रकमोंसे श्यामकी मुद्रा-नीतिके स्थायित्वमें खतरा आ सकता है।

दक्षिण-पूर्व एशियामें श्याम ही एक स्वतन्त्र देश है, इसलिए वह अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीतियोंके सङ्घर्षका स्थल हो रहा है। श्यामकी नयी राष्ट्रीय सरकारके बनते ही ब्रिटिश क्षेत्रोंमें आशङ्का होने लगी थी कि इसका झुकाव कहीं जापानकी तरफ न हो जाय। जापानका व्यापार वहां खूब बढ़ने लगा। जापानके लिए श्याममें रुईके उत्पादनकी जांच करनेके लिए जापानी विशेषज्ञोंका एक मण्डल वहां पहुंच गया। श्यामके कितने ही युवक नौसेना-कला सीखनेके लिए जापान भेजे गये और इस बातकी अफवाह बड़े जोरों-पर उड़ने लगी कि जापानकी आर्थिक सहायतासे मलाया प्रायद्वीपके तङ्ग रास्ते क्राके मुहानेसे एक नहर श्याम द्वारा निकाली जायगी, जिसका अर्थ सिङ्गापुरका आर्थिक एवं राजनीतिक महत्त्व क्षीण करना ही होगा। इस सम्बन्धमें यह बात भी भूलनी नहीं चाहिए कि श्याम तीन ओरसे ब्रिटिश राज्यसे घिरा हुआ है। दक्षिणमें मलाया है और पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिममें बर्मा है।

इस प्रकार एशिया अपनेको यूरोपके सांचेमें ढालनेका प्रयत्न कर रहा है। अन्यथा अपने आर्थिक शोषणके बाद उसे अपने अस्तित्वकी भी आशङ्का होने लगी है। यद्यपि शस्त्रास्त्रोंकी इस दौड़में एशिया अभी बहुत पीछे है, पर एशियाई

देशोंके वार्षिक बजट प्रति वर्ष इस दिशामें उनके अग्रसर होनेका प्रमाण देते हैं। लेकिन एशियाकी इस तैयारीको यूरोपकी तैयारीका ही रूप कभी न समझना चाहिए—एशियाकी तैयारी—जापानको छोड़कर अधिकांशतः आत्म-रक्षाके लिए ही है। और जापान ही क्या यूरोपीय राष्ट्रोंसे इस प्रकार सुरक्षित रहता, यदि उसने उन्हींके मुकाबिलेकी सारी तैयारी न कर ली होती? एशियाको आत्मा रखकर तलवार उठानी पड़ी है। और इसके लिए यूरोपीय राष्ट्रोंने ही उसे विवश किया है।

एकाकी विसर्जन

कितनी इच्छाओंको लेकर सांझ-प्रात नित आये
देवि! प्रतीक्षामें मैंने भी युग-युग जाग बिताये
भाग रहा जीवनका रथ है, पगडण्डी यह गीली
आज प्राण हैं लौट रहे आंसूमें प्यार छिपाये

ढुलक रहा मोती-सा मेरा जीवन जग-शतदलपर
चकित आज हैं प्राण मौन निज सांसोंपर पल-पलपर
तृषित लोचनोंमें अब तक है जगी लालसा-डोरी
मृत्यु खड़ी है पास और मैं एकाकी भूतलपर

इच्छा थी, जीवन-डेरेमें साथ चार दिन बीते
यौवनका परिधान पहन हम प्रेम-कलश पी जीते
पर न हुआ कुछ, एक स्वप्न था; चार घड़ीका जीवन
बीत गया; अन्तिम क्षण आया विरह-हलाहल पीते!

पश्चिममें हो गयी अस्त जब दिनकी अन्तिम रेखा
नभ-समाधिपर सन्ध्याको उडु-दीप जलाते देखा
घोर निराशाकी रजनीमें तारे मौन पड़े हैं
अन्त समय मेरे जीवनकी गत स्मृतियोंका लेखा

एकाकी हूं खड़ा, नहीं कोई दिखता सरि-तटपर
हंस है रहा तिमिर मुंह खोले प्रिय जीवनको ढककर
कब तक हाय! संभाल सकेगा प्राण दीप जीवनका?
झञ्झा उठी मरणकी है इस महा-निशामें हंसकर

अपनी ही छायासे डर मैं रुक जाता चल मगमें
चिन्ता घेर रही आगेसे व्याधा-सी पग पगमें
पाल रहा युग-युगसे उरमें अवनि-गर्भकी ज्वाला
भटक रहा हूं देवि! सिन्धुकी प्यास लिये चिर जगमें

टूट बिखर रजमें सोयेगी प्रिय तस्वीर सजीली
ढेर रहेंगी लगी कब्रपर स्वप्न-पत्तियां पीली
अन्तर्हित सब गूढ़ गर्तमें, औ' मलीन यह छाया
लुप्त रहेगी, जब आयेगी ऊषा कल दृग-गीली!

—महेश्वरीप्रसाद।

घटना-चक्र

श्रीमती आर० रङ्गनायकी

शामके वक्त, श्याम—मेरे फुफेरे भाई-ने कालेजसे घर आकर किताबोंको मेजपर फेंक दिया और पिताजीके कमरेमें जा खाटपर लेट गया। मेरी मां तब साड़ी खरीदने बाजार गयी थी। इसलिए मैं धीरजसे श्यामके पास गयी और दुःखसे बोलीः—'क्यों भाई, तबियत ठीक नहीं है क्या?' श्यामने मुसकराकर जवाब दियाः—'हां राधा, सिरमें दर्द बहुत ज्यादा है। मालूम होता है कि शायद बुखार भी आवे।' यह कहकर मानो किसी बातकी याद करते हुए मुझे कमरेसे बाहर चले जानेका इशारा किया। मैं हंसकर उसके पास खाटपर आ बैठी और हाथोंसे उसका मुंह सामने कर कहा—'कोई परवाह नहीं, तुम डरो मत। मां अभी-अभी बाहर गयी है। लौट आनेमें देर लगेगी।' तब तो उसने एक बार मेरी ओर प्यार-भरी नजर डाली और फिर थककर आंखें बन्द कर लीं। मैंने उसके मुंहमें थरमामीटर रखा, तो बुखार १०३ डिग्री था। चिन्तित होकर मैंने कहा—'भाई, इसी खटियाके ऊपर बिस्तर बिछाऊंगी, जरा आरामसे सो जाओ।' लेकिन उसने इनकार कर दिया। उसने मीठी आवाजसे कहा, बिस्तरकी कोई जरूरत नहीं। मेरे छोटे कमरेमें जमीन-पर एक चटाई बिछा दो, तो काफी है। झट मैंने उसके कहे अनुसार एक चटाई बिछा दी।

इतने ही में मेरी मां वहां आ पहुंची। फुफेरे भाईको पिताकी खाटपर देखकर जल उठी और बोली—'अरे श्याम! इसी घरका अन्न खाकर तुम्हें जरा भी शरम नहीं कि मामाकी ही खाटपर जा लेटे हो? मेरा यहां आना भी तुमने नहीं देखा। छिः! खाटसे जल्दी उतरो।' मांकी ये बातें सुनकर मेरी आंखें आंसुओंसे भर गयीं; मैंने उन्हें तुरन्त पोंछ डाला।

धीरेसे उठकर श्यामने आदरके साथ कहा—'नहीं मामी, मुझे एकाएक बुखार चढ़ आया और सिर दर्द करने लगा, कालेजसे पैदल आनेके परिश्रमसे ऐसा थका कि झट मामाकी खाटपर आकर लेट गया। अपने कमरेमें अभी चला जाता हूं। क्षमा कीजिये।' यह कहकर वह किसी तरह अपने कमरे-में जाकर चटाईपर लेटा। यह सारा दृश्य देखकर मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा था। अब मांका क्रोध मेरे ऊपर आ धमका। उन्होंने मुझसे कहा, 'क्यों री, फुफेरे भाईकी शुश्रूषा करने आयी थी?' मैंने इसका कोई जवाब न दिया, चुपचाप वहांसे बाहर चली आयी।

(२)

जब श्यामसुन्दर आठ सालका लड़का था, तभी उसके पिता स्वर्ग चल बसे थे। उसकी विधवा मां अपने एकलौते पुत्र—श्यामसुन्दरको लेकर अपने भाई, अर्थात् मेरे पिताके घरमें दस हजार रुपयोंकी पूंजी लाकर रहने लगी। उसने अपना सारा धन मेरे पिताके हवाले कर दिया। अपनी धनी ननदको मेरी मांने आदरके साथ ही रखा था। यद्यपि मेरे पिताजीके दिलमें कोई बुरा ख्याल नहीं था, तो भी उन्होंने उसके धनको घर-बारके खर्चके लिए व्यय कर दिया। जब मेरी बुआको यह मालूम हो गया कि उसका सारा धन इधर-उधर हो गया और उसके पुत्र श्यामके लिए एक भी पैसा बचा नहीं, तो उसे बड़ा दुःख हुआ और उसी दुःखमें वह बीमार होकर मर गयी। मेरी बुआके मरते समय श्यामसुन्दरकी अवस्था बारह सालकी थी। आखिर वक्त मेरी बुआ श्यामको मेरे मां-बापके सुपुर्द कर, इस दुनियासे सदाके लिए बिदा ले गयी।

उसके बारेमें कुछ कहना चाहूं, तो मेरे दिलमें बड़ा दुःख होता है। मेरी बुआकी अन्तिम याचनाको मां-बाप बिलकुल भूल गये। श्यामपर मेरी मां जो अत्याचार करती है, उसकी गिनती ही नहीं। उसकी शिक्षाके लिए मेरे पिताने एक भी पैसा खर्च नहीं किया। बहुत अक्लमन्द होनेके कारण वह पहले दर्जेसे छात्रवृत्ति पाता आया है।

बुआका धन जबसे खतम हो गया, तबसे मेरी मां उनसे घृणा करने लगी। लेकिन बुआके जीवित रहते समय उसे बाहर प्रकट नहीं कर सकी। उसके मरनेके बाद श्यामको नौकरसे भी नीचतर मानने लगी। मेरे पिताके दिलमें उसके प्रति प्रेम अवश्य था, पर उसे मेरी मांके आगे जाहिर करते डरते थे। इतना अत्याचार सहकर भी श्याम मेरी मां और बापके साथ हमेशा इज्जत और नम्रतासे रहता था। मुझे तो मां इस बातके लिए कभी-कभी डांटा भी करती थी कि मैं श्यामसे प्यार करती हूं।

उस दिन, जिस दिनकी बात मैं कह रही थी, श्याम इण्टरमीजियट परीक्षाके अन्तिम दिनके पर्चेका उत्तर लिखकर घर आया था। उस समय उसकी उमर सत्रह बरसकी थी और मेरी बारह। उसके बाद एक हफ्ते-भर बुखारसे पीड़ित होकर पड़े रहते समय भी मेरी मांने उसपर जो निर्दयता दिखायी, उसकी याद आते ही आज भी मेरा दिल कांप उठता है। उस समय मेरी मांकी कठोरताको देखकर भी पिताने मुंह नहीं खोला। वे चुप ही रहे।

(३)

इस घटनाके दो महीनेके बाद एक दिन मेरे पिताजी दालानमें बैठकर अखबार पढ़ रहे थे और मां वहीं बैठकर माला गूंथ रही थी। पिताजी एकाएक अपने-आपको भूलकर बोल उठे कि अरे! हमारा श्याम तो परीक्षामें प्रान्त-भरमें सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुआ है। मेरी मांने यह सुनकर भी मुख फेर लिया। लेकिन मैं यह सुनकर फूली नहीं समायी।

उस दिन बाहरसे श्याम घर लौट आया, तब उसे देखकर पिताजीने बड़े प्यारसे बुला लिया और पीठपर हाथ फेरते हुए कहा कि श्याम, तुमने परीक्षामें खूब सफलता पायी है। क्या तुमने अखबार नहीं देखा? यह सुनते ही उनका मुंह लज्जाके कारण लाल हो गया। उन्होंने नम्रतासे जवाब दिया—"हां, एक मित्रके यहां मैंने समाचार-पत्रमें देख लिया। यह सब आपका आशीर्वाद है।" उसके यों कहते समय ही मांकी, अन्दरसे कुछ गुनगुनाहट-सी मुझे सुनाई दी।

मैं, पिताजी और श्यामसुन्दर तीनों जब बैठकर भोजन कर रहे थे, तब मेरी मांने गोलीकी तरह ये बातें दाग दीं—'परीक्षामें तो जैसे-तैसे उत्तीर्ण हो गये, मगर नौकरीकी जल्द कोशिश करो। दूसरोंके गले कब तक......।' मैंने तुरन्त श्यामकी ओर नजर डाली, तो देखती क्या हूं कि उसकी आंखोंसे आंसुओंकी दो-चार बूंदें गिरने लगीं। यह देखकर मेरा दिल दुःखके कारण कांपने लगा। मैंने सोचा कि मैं बड़ी बदनसीब हूं, जो इस पापिनके पेटसे पैदा हुई। हस्ब-दस्तूर पिता चुप ही रहे।

उस रातको मुझे बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। श्यामकी बात सोचती और रोती-रोती अन्तको निद्राकी शरण गयी। स्वप्नमें मैंने श्यामको आत्महत्या करते हुए देखा। यह दृश्य मेरे सामने आते ही मैं बेहद घबड़ा उठी, चिल्लाना चाहा, पर बात बाहर न निकली। सहसा मेरी आंखें खुल गयीं। मैंने मांको पुकारना चाहा, मगर मुझे इस बातका यकीन हो गया कि मैंने केवल स्वप्न ही देखा है। फिर, मैं नींदकी गोदमें दम लेने लगी।

मेरे जागनेपर मालूम हुआ कि श्यामसुन्दर किसीसे बिना कहे-सुने कहीं चले गये। मेरी मांको तो इस बातसे बड़ा ही आनन्द हुआ। लेकिन पिताने कुछ दिन तक उसकी खोज तो लगायी; पर जब कुछ टोह न लगी, तो बादको खोजना भी बन्द कर दिया। बहुत दिन हुए, आज तक उसकी कुछ भी खबर नहीं लगी।

(४)

मेरे पिता मद्रासमें वकील हैं। अब उनकी आमदनी कुछ ज्यादा होने लगी। मांने एक दिन कहा—'देखो, उस अभागेके हमारे घरसे निकल जाते ही आमदनी भी बढ़ने लगी।' यह सुनकर मेरे हृदयमें बड़ी कड़ी चोट लगी, पर क्या करती?

श्यामको गये पांच साल बीत गये। मां-बाप तो उसे बिलकुल ही भूल गये। लेकिन मेरे हृदय-मन्दिरमें वह सदा विराजमान रहते। अब मेरी अवस्था सत्रह वर्षकी हो गयी। मैं पिछली मार्चमें स्कूल-फाइनल परीक्षा दे आयी और परिणामकी प्रतीक्षा करती रही।

इसी बीच, एक दिन पिताने मांसे कहा कि आई०सी०एस० परीक्षामें उत्तीर्ण, कलेक्टरीके कामपर नियुक्त किया गया एक युवक राधाको देखनेके लिए एक हफ्तेमें मद्रास आनेवाला है, जिसका नाम एस० सुन्दर है। यह बात कानोंमें पड़ते ही मेरा सिर चक्कर खाने लगा और मैं नीचे बेहोश होकर गिर पड़ी। जब मेरा होश वापस आया, तब मैंने मां-बापको घबराहटके साथ अपना उपचार करते देखा। मांने प्यारसे कहा—"राधा, तबियत कैसी है? क्या डाक्टर बुलाऊं?" तब मैंने मां-बापसे मुखातिब होकर कहा—'अगर आप दोनोंका मुझपर सच्चा प्रेम है, तो कृपा करके मेरे लिए कोई वर मत खोजिये। मैं अपना हृदय श्यामको अर्पण कर चुकी हूं। जिस समय वह कुशलसे घर वापस आयें, तभी मैं उनसे विवाह करूंगी। अगर वह न आवें, अथवा दूसरी लड़कीसे विवाह करें, तो मैं कुमारी रहकर अपने दिन काटूंगी।' मेरी ये बातें सुनकर पिता चुप रहे।

लेकिन मांके मुंहपरसे कुछ देरके पहले झलकता हुआ प्यार और दुलारका भाव अचानक बदल गया। उन्होंने अपना निज रूप धारण किया, फिर गुस्सेसे कहा—'छिः, नासमझ लड़की, इतने साल गुजर जानेके बाद भी तुम उस दरिद्रको नहीं भूलीं ? कौन जाने कि वह अब कहां और कैसे रहता है ? तुम उसके बारेमें मत सोचो। कलेक्टरकी पत्नी बनना तुम्हारे भाग्यमें लिखा है। तुम क्यों उस बदनसीब, राहके भिखारीकी फिक्रमें पड़ी हो।' इस प्रकार मां मुझे कोसने लगी। लेकिन मेरे पिताके मुंहसे कोई बात न निकली। मैं अपना मुंह ढांपे पड़ी रही और सिसकियां लेने लगी। मुझे पूरा यकीन हो गया कि अब मेरे रोने-धोनेका .कोई असर नहीं होगा।

(५)

जिस दिन आई० सी० एस० पास वर मुझे देखने आनेवाला था, उसके पहले दिन शामके समय मैं अपने कमरेमें अकेली बैठी रही। मां-बाप सामान खरीदने बाजार गये हुए थे। मेरे परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेका समाचार उसी दिन आया था। लेकिन इस खबरसे मुझे कुछ भी खुशी नहीं हुई। उस समय एक बूढ़े पहरेदार नौकरके सिवाय घरपर कोई नहीं था। वह भी बगीचेमें काम कर रहा था। एकान्त होते ही रोजकी तरह मैं अपने कमरेमें बैठकर सोचने लगी कि अगर वह आई० सी० एस० वर कल मुझे देखकर पसन्द करे, तो मैं क्या करूं ?

इसी बीचमें कोई आधा घण्टा बीता होगा कि एक मोटर गाड़ी द्वारपर आ लगी। किसीके अन्दर आनेकी आहट मेरे कानोंमें पड़ी, पल-भरमें देखती क्या हूं कि एक सुन्दर सजीला युवक मेरे कमरेमें दाखिल हुआ। उसका चेहरा तो मेरे लिए परिचित-सा मालूम पड़ा। मगर, ठीक याद नहीं पड़ता था। मुझे मौन देख उस पुरुषने मुसकराकर कहा—'क्यों राधा ! तुम इतनी जल्दी अपने श्यामको भूल गयीं ? यह क्या उचित है ?' मेरी स्मृति जाग उठी, मारे खुशीके चिल्ला उठी—श्याम, क्या सचमुच तुम मेरे सामने खड़े हो या मैं स्वप्न देख रही हूं ?

श्यामने प्यारसे मुझे अपने पास खींचकर कहा—मेरी प्यारी राधा, तुम्हारे चेहरेसे मालूम होता है कि तुम किसी विषम चिन्तासे दुखित हो। मुझे नहीं बताओगी ?

तब मैंने अपने दुःखका कारण उससे कहा। यह सुनते ही उसने हंसकर कहा—'प्यारी राधा, तुम डरो मत। तुम्हें देखनेके लिए आई० सी० एस० वाला वर कल नहीं आयेगा। वह आज अभी तुम्हारे सामने खड़ा है।

(६)

इस अचम्भेसे संभलनेके पहले ही मां-बाप आ पहुंचे। श्यामसे और बातें करनेका समय मुझे नहीं रहा। माता-पिताको देखकर श्यामने बड़ी नम्रतासे प्रणाम किया, फिर कहा—'मामी! आपके आशीर्वादसे आई० सी० एस० परीक्षामें उत्तीर्ण हो आया हूं।' यह सुनकर मांके चेहरेपर पछतावा और शर्मका भाव झलकने लगा। मेरे पिताने श्यामको देखकर कुछ भी आश्चर्य प्रकट नहीं किया; यह देखकर मुझे बड़ी हैरानी हुई। श्याम और पिताको एक दूसरेको एक खास तौरसे देखते देख मुझे ताज्जुब मालूम पड़ा।

फिर विवाह पूरा होने तक श्यामसे अच्छी तरह बातचीत नहीं कर सकी। मांने श्यामको जिस तरहसे ठाठबाटसे सजाया, उपचार किया, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

शादी हो गयी। मेरी इच्छा पूर्ण हुई। अपने हृदयकी मूर्तिको मैं पा गयी। उस शहरको मैं और श्याम रवाना हुए, जहां उनकी सब-कलेक्टरीकी नौकरी हुई है। पिता स्टेशनपर आये थे। जब श्याम प्रणाम कर विदा लेने लगे, तो उनकी आंखोंमें आंसू आ गये। उसी समय गाड़ी रवाना हुई। असीम खुशीके कारण मैं पागल-सी हो गयी। श्याम कुछ देर तक मुझे गौरसे देखकर फिर बोले—'क्यों राधा, क्या सोचती हो ?'

मैंने कहा—'मैं उस भाग्यदेवताको मन ही मन मना रही हूं, जिसने तुम्हें मुझे ला दिया है।' यह सुनकर उसने सन्दूक खोला और उसमेंसे एक फोटो निकाल लिया। वह मेरे पिताका फोटो था। उसने गम्भीरतासे कहा—'पहले इस देवताकी पूजा करो। अगर यह उदार-हृदय महीने-महीने बिना किसीसे कहे, चुपचाप धन नहीं भेजते, तो मैं कैसे पढ़कर आई० सी० एस० पास करता और कैसे तुम्हें पानेके योग्य हो सकता ?'

यह कहकर उसने फोटोको अपनी आंखोंपर रख लिया। अब मैं सब कुछ समझ गयी। मेरी आंखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे।

———

कर्म और कर्मफल

श्री अनिलवरण राय

कर्मफलमें हिन्दुओंका बड़ा दृढ़ विश्वास है, मानो वह विश्वास उनकी रग-रग तकमें भरा हुआ हो। परन्तु कर्म किस प्रकार फल उत्पन्न करता है—यह तत्त्व अत्यन्त जटिल है, गीता कहती है, 'गहना कर्मणो गतिः'—कर्मकी गति गहन है। साधारण तौरपर इस विषयमें जो लोगोंकी धारणा है, वह घोर अदृष्टवाद है। हिन्दुओंके अधिकांश पुराणोंमें कर्मवादका जो वर्णन मिलता है, वह प्रायः इस प्रकार है :—

हरिणापि हरेणापि ब्रह्मणापि कथं च न।
ललाटलिखिता रेखा परिमार्ष्टुं न शक्यते॥

पूर्वजन्मके कर्मफलके अनुसार ललाटमें जो लिख गया है, उसे कोई टाल नहीं सकता—भोगके द्वारा जब सब कर्मोंका क्षय हो जायगा, केवल तभी हमारे दुःखोंका अन्त होगा। इस प्रकार विश्वास रखनेसे सब प्रकारके दुःखोंके भीतर एक प्रकारकी सान्त्वना और सहनशक्ति अवश्य प्राप्त होती है; परन्तु जातिकी दुर्बलताके युगमें इसके कारण घोर जड़ता, तामसिकता, निष्क्रियता उत्पन्न होती है—इस प्रकार अदृष्टवादसे, कर्मवादसे हिन्दुओंको बहुत अधिक हानि पहुंची है और आज भी पहुंच रही है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु वास्तवमें यह हिन्दुओंके कर्मवादकी विकृति है—बौद्धधर्मके प्रभावसे यह विकृति उत्पन्न हुई थी। उपनिषद् और वैदान्तिक दर्शनोंमें हम जिस कर्मवादको पाते हैं, वह ऐसा निराशासे भरा हुआ अदृष्टवाद नहीं है। वहांपर अदृष्टके साथ पुरुषकारका समन्वय किया गया है। बौद्धधर्मके साथ हिन्दूधर्मका भेद यही है कि बौद्धधर्ममें आत्मा या पुरुष कुछ भी नहीं है और हिन्दूधर्मके अनुसार आत्मा ही सब कुछ है, सर्वं खल्विदं ब्रह्म। यह सारा जगत् आत्माके अन्दर है, आत्माके द्वारा है और आत्माके ही लिए है। हम जो कुछ सोचते-विचारते हैं, जो कुछ कार्य करते हैं, जो कुछ अनुभव करते हैं, वह सब आत्माके लिए है। प्रकृति आत्माके ऊपर निर्भर करती है, इसकी सारी गति, सारे खेल, सारी क्रियायें आत्माके लिए हैं।

कार्य-कारणकी शृङ्खलाके अतिरिक्त अदृष्ट नामकी और कोई चीज नहीं, और यह शृङ्खला है नियमका ही एक दूसरा नाम—और नियम है पुरुषकी तृप्तिके लिए, भोगके लिए प्रकृतिके कर्मकी धारा। पाश्चात्य दर्शनमें इसको नियम कहा जाता है और हम लोगोंके दर्शनमें इसको धर्म कहा जाता है, यही विश्वकी क्रियाको धारण किये हुए है। प्रत्येक वस्तुका एक धर्म है और उसका कर्म उस धर्मके अनुसार ही परिचालित होता है :—जैसे, आगका धर्म है जलाना, जलका धर्म है शीतलता। प्रत्येक जीवका धर्म है, उसी तरह प्रत्येक श्रेणी या जातिका धर्म है, उसी तरह विश्वका भी धर्म है और ये सभी अपने-अपने धर्मके अनुसार ही कर्म करते हैं। विश्वके धर्मके अनुसार एक-एक प्रकारका कर्म एक-एक प्रकारका विशिष्ट फल प्रदान करता है। यही कार्य-कारणका सारा नियम है।

हिन्दुओंके मतानुसार केवल हमारा बाह्य कर्म और वाक्य ही नहीं, बल्कि हमारा विचार, हमारा भाव भी कर्मका ही अङ्ग है और ये सभी कर्म फल उत्पन्न करते हैं। और कृत कर्मका फल भी नाना प्रकारका होता है। एक प्रकारका फल है—हमारे विचार, अनुभूति और कर्मधाराके द्वारा इस जीवनमें हमारे अन्दर ऐसे अनेक प्रकारके अभ्यासों और संस्कारोंकी सृष्टि होती है, जो दूसरे जन्ममें हमारे सुख या दुःखके कारण होते हैं। मनुष्यकी मृत्यु होनेपर उसके शरीर और प्राण ही विश्व-शरीर और विश्व-प्राणमें मिल जाते हैं; परन्तु उसका सूक्ष्म शरीर अपनी शक्तियों और संस्कारोंको अपने साथ ले जाता है और उसीके अनुसार दूसरे जन्ममें उसका जीवन निर्धारित होता है। बृहदारण्यक उपनिषद्की टीकामें सुरेश्वराचार्य कहते हैं :—

जन्मान्तरारम्भहेतुः किं स्यादिति तदुच्यते।
विद्या सम्पादिता तेन पुरा कर्म च यत्कृतम्।
या वासना च तत् सर्वं जन्मभोग्यादि कारणम्॥

और एक प्रकारका फल होता है, हम अपने कर्मके द्वारा जब दूसरेका कल्याण या अकल्याण करते हैं, तब उसके फल-

स्वरूप हमें सुख या दुःख भोगना पड़ता है। फिर एक प्रकारके कर्मकी प्रतिक्रियाके रूपमें विपरीत प्रकारके कर्मकी उत्पत्ति होती है और उसके अनुसार सुख-दुःख भोग करना पड़ता है। यही कर्मका शृङ्खल, कर्मका बन्धन है। इसीको हिन्दू अदृष्ट कहते हैं और इससे मुक्ति पानेके लिए साधना करते हैं।

बौद्धधर्मके मतानुसार प्रकृतिकी यह कार्य-कारण-शृङ्खला ही विश्वका चरम नियम है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है—अतएव कोई इसे अतिक्रम नहीं कर सकता। भोगके द्वारा पूर्व कर्मका क्षय कर तथा नये कर्मोंको सञ्चित न कर निर्वाण प्राप्त करना ही, शून्यमें विलीन हो जाना ही दुःख निवारण करनेका सच्चा मार्ग है और यही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। परन्तु हिन्दू-मतानुसार प्रकृति ही सब कुछ नहीं है, हमारे भीतर एक ऐसी चीज वर्तमान है, जो प्रकृतिसे परे है, ईश्वर, प्रभु, विभु है। वह चिर-मुक्त और आनन्दमय है। यही हमारा आत्मा है। यह आत्मा मूलतः विश्वके परम आत्माके साथ एक है। आत्मा कर्म नहीं करता, इसीसे वह अपने कर्मके द्वारा बद्ध भी नहीं होता। प्रकृति ही कर्म करती है, सब वस्तुओंका स्वभाव निश्चित करती है; प्रकृतिसे ही नियम या धर्म उत्पन्न होता है। आत्मा या पुरुष स्वभावको धारण किये रहता है, कर्म और उसके फलको देखता है, भोग करता है, नियम या धर्मके लिए अपनी अनुमति देता है। आत्मा ही राजा, प्रभु, ईश्वर है, उसकी अनुमतिके बिना प्रकृति कुछ भी नहीं कर सकती; परन्तु वह राजा उस नियमसे ऊपर और मुक्त है।

पुरुषकी अनुमति देनेकी जो यह क्षमता है, यहींपर हमारी स्वाधीनता विद्यमान है। पुरुष अनुमति देता है कि उसका जीवन, उसका भोग देश, काल और निमित्तके द्वारा सीमाबद्ध होगा, स्वभाव और धर्मके द्वारा नियन्त्रित होगा; फिर प्रकृति उसीके अनुसार जीवनलीला प्रकट करती है, विकसित करती है। पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, रोग-स्वास्थ्य, सुख-दुःख—इन सबके लिए पुरुष या तो अनुमति देता है या नहीं देता, अपनी आसक्तिके अनुसार पुरुष जो चाहता है, प्रकृति उसीकी निरन्तर सृष्टि करती है। पुरुष जिस चीजसे विरक्त हो जाता है, उदासीन हो जाता है, उसे प्रकृति बन्द कर देती है। परन्तु प्रकृतिमें जो गति एक बार आरम्भ हो जाती है, उससे पुरुषके अनुमति हटा लेनेपर भी, उसे प्रकृति उसी क्षण बन्द नहीं कर सकती। तब पुरुष दृढ़ताके साथ जो कुछ इच्छा करता है, सङ्कल्प करता है, उसके अनुसार धीरे-धीरे प्रकृति अवश्य परिवर्तित हो जाती है। यही साधनाका रहस्य है। पुरुषकी इच्छासे ही जगत् चल रहा है, अदृष्ट इस इच्छाको पूरा करनेकी ही एक प्रक्रिया-मात्र है। आज आधुनिक जगत् इस बातको समझने लगा है।

परन्तु हम प्रकृतिके प्रभु हैं—इस बातका जीवनमें अनुभव प्राप्त करनेके लिए हमें अपने अन्दर विद्यमान आत्माके साथ युक्त होना चाहिए—अपनी इच्छाको विश्व-पुरुषकी इच्छाके साथ एक कर देना चाहिए। मूलतः हम उस विश्व-पुरुषके साथ एक हैं; परन्तु व्यष्टिगत वैचित्र्यके विकासके लिए मनुष्यको जो स्वाधीनता दी गयी है, उसका व्यवहार जब मनुष्य अज्ञानके वश होकर करता है, तब वह अपनेको बद्ध समझता है। जब हम ज्ञानपूर्वक उस स्वाधीनताका व्यवहार करते हैं, तब वही विश्वपुरुषकी इच्छाके प्रति हमारा आत्मसमर्पण कहलाता है। हमारी ही जो श्रेष्ठ सत्ता है, उसीके प्रति आत्मसमर्पण करके हम परम मुक्ति और ईश्वरत्व प्राप्त करते हैं।

भगवान् विश्वके अधीश्वर हैं और व्यष्टिगत जीव उन्हीं-का प्रतिनिधि है; जीवकी जो व्यष्टिगत प्रकृति है, उसके ऊपर वह भी ईश्वर, प्रभु है। प्रत्येक जीवका विशिष्ट धर्म है, उसके सभी कर्म उसी धर्मके द्वारा परिचालित होते हैं। तब क्या मनुष्य पूर्ण रूपसे अपनी प्रकृतिके वशमें है, उसका क्य कोई भी दायित्व नहीं ? परन्तु उसकी प्रकृति तो उसकी ह अपनी सृष्टि है, उसके प्राक्तन कर्मका फल है; और जिसकी सृष्टि उसने स्वयं की है, उसे वह परिवर्तित भी कर सकता है। मनुष्यकी प्रकृति और कर्म कैसा होगा, इसका निश्चय विश्व-प्रकृतिके द्वारा होता है; परन्तु इस विश्वप्रकृतिके नियमका ही एक अंश यह है कि हमारा अन्तरात्मा बार-बार जो कुछ चाहेगा, उसीके अनुसार वह हमारे जीवनका विकास करेगी। नाना प्रकारकी अभिज्ञताके द्वारा अपनी प्रकृतिका विकास करनेके लिए मनुष्यको स्वाधीनता दी गयी है, मनुष्य जब उस स्वाधीनताका उपयोग अनुचित ढङ्गसे करता है, तब उसकी प्रकृतिके अन्दर नाना प्रकारकी बाधाओं और बन्धनोंकी सृष्टि होती है; परन्तु मनुष्य यदि दृढ़ सङ्कल्पके साथ उन सब

बाधाओंको दूर करना चाहे, तो फिर उसकी प्रकृति भी बदल जाती है। पहले मनुष्यने अपनी शक्तिका जिस प्रकारसे उपयोग किया था, उसीके अनुसार विश्व-प्रकृतिने भी उसके साथ व्यवहार किया, और अब वह जिस प्रकार व्यवहार करेगा, विश्वप्रकृति भी उसीका प्रतिफल देगी—यही कर्मवादका मूल रहस्य है।

विश्व-प्रकृति किस प्रकारसे हमारे कर्मका फल देती है, यह समझना बहुत कठिन है; कारण, प्रकृतिके अन्दर नाना स्तर हैं, देह, प्राण, मन इत्यादि विभिन्न स्तरोंके विभिन्न नियम, विभिन्न धर्म हैं, उन सबकी जटिल क्रिया-प्रक्रियाके द्वारा कर्मकी गति और धारा निर्धारित होती है। जब हम विश्वपुरुषकी चेतनाके अन्दर प्रवेश करेंगे, तभी हम कर्मका पूरा-पूरा अर्थ समझनेकी आशा कर सकते हैं। अपनी अज्ञानपूर्ण मानुषी मन-बुद्धिके द्वारा हम उसका आंशिक क्षीण आभासमात्र पा सकते हैं। मोटे तौरपर यह कहा जा सकता है कि हम जैसा कर्म करते हैं, उसीके अनुसार फल पाते हैं; परन्तु वह फल ठीक कैसा और कितना होगा, इसका सूक्ष्म रूपमें हिसाब करके कहना सम्भव नहीं; क्योंकि वह बहुत जटिल शक्तियोंकी क्रिया-प्रतिक्रियाके द्वारा निर्धारित होता है। इसी कारण कर्मफलको अदृष्टकी क्रिया कहते हैं।

कर्मकी कुछ धाराओंका विश्लेषण किया जा सकता है। सबसे पहले है जड़ जगत्‌का नियम। आगमें हाथ डालनेसे हाथ अवश्य जलेगा; जहांपर प्रकृतिके नियमके अनुसार भूकम्प होता है, वहांपर जो लोग रहेंगे, उनको उसका फल भोगना ही होगा। यदि प्रकृतिको पद-पदपर यह हिसाब करना पड़े कि कौन बचेगा या कौन मरेगा और फिर उसके अनुसार अपनी कर्मधाराको बदलना पड़े, तो नियमानुगत जड़ जगत् ही नहीं रह सकेगा, और जड़ जगत् न होनेपर मनुष्य ही कहां रहेगा, उसका धर्माधर्म, उसका सुख-दुःख ही कहां रहेगा? अतएव जड़ जगत्‌में जो लोग रहना चाहते हैं, अपने जीवनका विकास करना चाहते हैं, उन्हें जड़ जगत्‌के नियमोंको जानकर और सावधान होकर चलना ही होगा, अन्यथा असावधानीका फल उन्हें भोगना ही होगा। जड़ जगत्‌में प्राणका विकास कर उसके भीतरसे होकर चैतन्यका उच्चसे उच्चतर विकास होता है, यही पार्थिव क्रमविवर्त्तनका लक्ष्य तथा विश्व-पुरुषकी इच्छा मालूम होती है, इसके अतिरिक्त विवर्त्तनकी और कोई युक्तिसङ्गत व्याख्या नहीं पायी जाती। प्राकृतिक दुर्घटनाके कारण जितने जीव ध्वंस होते हैं, उनकी क्षतिको प्रकृति निरन्तर अजस्र जीवोंकी सृष्टि करके पूरी कर रही है और इस प्रकार जीवनकी धाराको सुरक्षित रखते हुए विश्व-पुरुषकी इच्छा पूरी कर रही है।

परन्तु साधारण तौरपर कर्मफलका जो अर्थ समझा जाता है, उससे ऐसा मालूम होता है कि जगत्‌में एक प्रकारके नैतिक नियमका राज्य है, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्यका विचार है और तदनुसार मनुष्यको अपने-अपने कर्मका फल भोगना पड़ता है। परन्तु वास्तवमें न्याय या पुण्यके साथ सांसारिक सुख-दुःखका कोई अन्तरङ्ग सम्बन्ध नहीं है—न्याय और पुण्यका एक आदर्श और नीति है, बहुत बार उसका अनुसरण करनेके लिए बहुत कुछ त्याग करना, कष्ट स्वीकार करना पड़ता है, और उस आदर्शका अनुसरण करनेसे हमें जो फल प्राप्त होता है, वह है हमारे मनकी, चरित्रकी, आत्माकी उन्नति, बाहरी कोई सफलता या विजय नहीं। तो भी साधारण मनुष्यके बाह्य सुखभोगमें आसक्त होनेके कारण उसे सुखका लोभ दिखाकर ही पुण्यवान, नीतिवान बनानेकी चेष्टा की जाती है और इसी कारण प्रधानतः धर्म-शिक्षाके रूपमें यह कहा जाता है कि नैतिक आदर्श, न्याय, पुण्य इत्यादिका पालन निष्काम, निःस्वार्थ भावसे अवश्य करना चाहिए; व्यक्तिगत स्वार्थका हिसाब लगानेपर भी यह मालूम होता है कि इस आदर्शका अनुसरण करना ही युक्तिसङ्गत है, अन्त तक न्यायका ही पथ, धर्मका ही पथ सबसे अधिक लाभदायक है; क्योंकि इस जगत्‌में एक न्यायशील विचार-कर्त्ता हैं; मनुष्यसे कहा जाता है कि पापी लोग ध्वंस हो जायंगे, धार्मिक लोग ही सौभाग्यशाली होंगे, धर्मका मार्ग ही सच्चे सुखका मार्ग है। परन्तु वास्तविक जीवनमें यह देखा जाता है कि यह सत्य नहीं है, और मनुष्य भी सर्वदा अपने-आपको धोखा नहीं दे सकता, इस कारण यह कहा जाता है कि पाप-पुण्यका फल यदि यहां न मिले, तो स्वर्ग और नरकमें तथा परजन्ममें उसे भोगना पड़ता है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस साधारण मतमें बहुत कुछ सत्य विद्यमान है और इसके लिए परकालका हिसाब लेनेकी जरूरत नहीं होती, बल्कि इस पृथ्वीपर ही इसकी सत्यताका पर्याप्त प्रमाण पाया जाता है। परन्तु यह केवल आंशिक रूपमें

ही सत्य है—कर्मके फलकी सृष्टि करनेमें नैतिक नियमोंके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारकी शक्तियां कार्य करती हैं और, पाप-पुण्यके फलस्वरूप ठीक परिमाणके अनुसार वाह्य दुःख या सुख मिलेगा—इस स्थूल नियममें बहुत व्यतिक्रम देखा जाता है; अतएव यही इस विषयका सम्पूर्ण सत्य नहीं है। यदि वास्तवमें नैतिक नियमका ही जगत्में प्राधान्य होता, तो फिर बहुत बार शुभ फल प्राप्त करनेके लिए अशुभ उपायका क्यों अवलम्बन करना पड़ता? बहुत बार देखा जाता है कि जो अन्याय और पापके पथका अनुसरण करते हैं, वे बहुत शीघ्र अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करते हैं, 'जहां धर्म वहां विजय' का नियम भी वास्तविक जीवनमें लागू नहीं होता। अन्तमें यदि धर्मकी जय होती है, तो वह केवल धर्मके ही जोरसे नहीं होती, उसके साथ शक्तिका भी योग रहता है। महाभारतमें अन्तमें धर्म-पक्ष युधिष्ठिर आदिको विजय प्राप्त हुई थी; परन्तु वह केवल धर्मके जोरसे नहीं प्राप्त हुई थी, उसके लिए अर्जुन-जैसे धनुर्धरकी भी आवश्यकता हुई थी। फिर भी व्यक्तिगत, समष्टिगत या जातिगत सफलताके लिए जो शक्तियां कार्य करती हैं, उनमें धर्म और नैतिकताका भी एक स्थान है और जो उसके विरुद्ध आचरण करते हैं, उनको किसी-न-किसी दिन उसका अशुभ फल भोगना ही होता है। भारतके जिन नेताओं और राजाओंने अपने अन्दर कलह करके इस सोनेके देशको मुट्ठीभर बनियोंके हाथमें सौंप दिया था, उनके उस कर्मका अशुभ फल भारतीय जाति दो सौ वर्षोंसे भोग रही है। अंगरेजों और फरासीसियोंके साम्राज्यवादी कृत्योंके फलस्वरूप आज उनके ऊपर जर्मनीके साम्राज्यवादकी भीषण विपत्ति टूट पड़ी है।

कर्मका फल होता है; परन्तु ठीक किस नियमके अनुसार यह फल आता है, इसका ठीक-ठीक निर्णय करना मनुष्यकी साधारण बुद्धिसे परे है, यद्यपि इस विषयमें एक स्थूल नियम कायम करके मनुष्यको पापसे निवृत्त और पुण्यमें प्रवृत्त करनेकी चेष्टा की जाती है। कार्यतः कर्मवादसे हम केवल इतनी शिक्षा निश्चित रूपसे ले सकते हैं कि केवल प्रकृतिकी प्रेरणासे, काम, क्रोध, लोभ आदि रिपुओंकी प्रेरणासे अन्धेकी भांति न चल कर्तव्याकर्तव्यकी विवेचना करके ही कार्य करना उचित है। किसी भी तरह हमें अदृष्टवादको प्रश्रय नहीं देना चाहिए, क्योंकि हमारा वर्तमान दुःख यदि हमारे प्राक्तन कर्मका फल हो, तो हम अपने वर्तमान कर्मके द्वारा उस अशुभको जय भी कर सकते हैं, हिन्दूशास्त्रोंमें इसी कारण पुरुषकारके ऊपर ही विशेष जोर दिया गया है। योगवाशिष्टमें स्पष्ट रूपमें यह कहा गया है—

अथो येदशुभो भावः त्वां योजयति सांकृते।
प्राक्तनस्तद् आशु यत्नाज् जेतव्यो भवता बलात्॥

किसीको दुःख भोग करते हुए देखकर यह मानना कि वह अपने पापका फल भोग रहा है और उसका प्रतिकार करनेके लिए आगे न बढ़ना कर्मवादका जघन्य अपव्यवहार है। कारण, हम कह चुके हैं कि सब प्रकारके दुःख पूर्वकृत पापके कारण ही आते हों, ऐसी बात नहीं है, नाना प्रकारकी शक्तियोंके, नाना प्रकारके कारणोंके समवायसे मनुष्य सुख-दुःखरूपी फल प्राप्त करता है; इसके अतिरिक्त अनेक समय ऐसा भी होता है कि एक आदमीके कर्मका फल किसी दूसरे आदमीको भोगना पड़ता है। और यदि पापके फलसे ही कोई दुःख पावे, तो फिर उस दुःखभोगके द्वारा ही उसके कर्मका भोग शेष हो गया—यह भी कौन कह सकता है? अतएव कर्मवादकी दुहाई देकर किसीके दुःखको निवारण करनेसे अलग होना अथवा उसके दुःखकी मात्रा और भी बढ़ा देना हृदयहीनताका ही परिचायक है। दूसरी ओर, यदि यह ठीक हो कि जगत्के शाश्वत नियमके अनुसार सभी अपने-अपने कर्मका फल पायेंगे, तब फिर मनुष्यके लिए, समाजके लिए यह उचित नहीं है कि वह किसीको किसी पाप या अपराधके लिए दण्ड दे—जो लोग किसी भी कारणसे मनुष्यको दण्ड देते हैं, उन्हें उस दण्ड देनेके कर्मका फल भोगना ही होगा। अत्याचारी समाज स्वयं अपने अकल्याणको बुला लाता है। समाजका कर्तव्य यह नहीं है कि वह पापीको, अपराधीको दण्ड दे, बल्कि उसका कर्तव्य यह है कि वह ऐसी व्यवस्था करे, जिससे पापी, अपराधी मनुष्य अपना सुधार कर सके।

लौकिक धर्मोंकी जो यह शिक्षा है कि भगवान् न्यायके अवतार हैं, वह पापीको पापके लिए दण्ड देते हैं, पुण्यवानको पुरस्कार देते हैं, यह मानवीय राजाका आदर्श विश्वराजाके ऊपर आरोप करना है; इस तरह साधारण लोगोंको

भय दिखाकर या लोभ दिखाकर समाजमें एक प्रकारकी सुव्यवस्था रखी जा सकती है (इस युगमें अब यह भी सम्भव नहीं); परन्तु इस प्रकार मनुष्यको पुण्यात्मा नहीं बनाया जा सकता। दुःखके भयसे, सुखके लोभसे जो पुण्य किया जाता है, वह पुण्य ही नहीं है; जो न्याय है, जो सत् है, न्याय या सत् होनेके नाते ही उसे करना, फलाफलकी ओर दृष्टि न डालना यही वास्तविक पुण्याचरण है। इस प्रकारके पुण्यकर्मके द्वारा मनुष्यके आत्माकी उन्नति होती है, उसकी प्रकृति शुद्ध और रूपान्तरित होती है—यह विश्वके शाश्वत नियमके अनुसार ही होता है, इसके लिए किसी अपार्थिव राजाको पाप-पुण्यका विचार करके दण्ड या पुरस्कार देनेकी व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। विश्व-नियमके अनुसार केवल पापीको ही दण्ड नहीं मिलता, भूलके लिए, अज्ञानके लिए, बेवकूफीके लिए, दुर्बलताके लिए, सङ्कल्प और तपस्यामें त्रुटि करनेके लिए भी मनुष्यको दुःख भोगना पड़ता है। इस नियमका मर्म यही है कि हमारे अन्दर जो त्रुटियां, भूलें या दुर्बलतायें हैं, उन सबका फल हमें भोगना होगा, कभी-कभी वह फल साङ्घातिक भी हो सकता है; हम अपने कर्मकी, व्यवहारकी त्रुटिको सुधार सकते हैं, परन्तु हम यदि ऐसा न करें, तो उसका फल हमें भोगना ही होगा, यहां तक कि अपनी त्रुटिकी तुलनामें कहीं अधिक दुःख हमें भोगना पड़ सकता है, एक सामान्य भूलके कारण हमारी सारी तपस्याका फल नष्ट हो सकता है। यह नियम चाहता है कि मनुष्यको जो स्वाधीनता दी गयी है, इच्छा-शक्ति दी गयी है, उसका सद्व्यवहार करके वह अपनेको पूर्ण, निर्दोष बनावे, अपने अन्दर निहित भागवत सत्ताको विकसित करे। जब तक वह ऐसा नहीं करता, तब तक उसे आघातपर आघात खाना ही होगा।

कर्मकी एक और धारा होती है, उसे हम प्रतिशोधकी नीति कह सकते हैं। किसीके ऊपर हमने पत्थर फेंका, किसी गुप्त शक्तिकी क्रियाके द्वारा वह पत्थर लौटकर हमारे सिर लगा। हमने एक आदमीका सर्वनाश किया, कुछ दिन बाद हमारा भी सर्वनाश होने लगा। संसारमें साधारण तौरपर इस प्रकारका कर्मफल दिखाई न देनेपर भी किसी-किसी क्षेत्रमें ऐसा होता है और ऐसे दृष्टान्तके द्वारा मनुष्यकी असत् प्रकृति बहुत कुछ संयत होती है। तब इसका कोई कटा-छंटा सुनिश्चित नियम नहीं। कर्मकी एक दूसरी धारा यह है कि शुभ शुभकी सृष्टि करता है और अशुभ अशुभकी। यह नीति भी कुछ अंशमें सत्य है और मनुष्यकी व्यावहारिक बुद्धि इसका हिसाब करके चलनेकी चेष्टा करती है। परन्तु इसके ऊपर भी पूरी तरहसे निर्भर नहीं किया जा सकता। क्योंकि बहुत बार ऐसा देखा जाता है कि हमारे शुभ कर्म-का फल अशुभ होता है और फिर अशुभ कर्मका फल शुभ होता है। ईसा मसीहने शान्ति और प्रेमकी वार्ताका प्रचार किया और उन्हें 'क्रास' पर चढ़ना पड़ा। दूसरी ओर आटिला और चङ्गेज खां मृत्यु-काल तक सिंहासनपर आसीन रहे।

अतएव ऐसा मालूम होता है कि यह निश्चित करना कठिन है कि कर्मका फल ठीक किस नियमसे आता है, क्योंकि उसके अन्दर नाना प्रकारकी धारायें मिली हुई हैं। और यह नियम है ईश्वरका नियम, वह इसी नियमके द्वारा जगत्में अपनी इच्छा पूर्ण कर रहे हैं। उस इच्छाकी पूर्तिके लिए आवश्यक होनेपर वह इस नियमका व्यतिक्रम भी कर सकते हैं, इसी कारण भगवान्के शरणापन्न होकर मनुष्य समस्त कर्म और कर्मफलसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। सभी नियमोंका चरम-लक्ष्य है भगवान्के साथ मिलन—पूर्ण शरणागतिके द्वारा जो मनुष्य भगवान्के साथ युक्त हो जाता है, वह सभी नियमोंसे, सम्पूर्ण कार्य-कारण-शृङ्खलासे ऊपर चला जाता है।

———

जीनेकी कला

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि आप जीनेकी कलाको समझें। जिन्दगीका प्रति क्षण आपको चुनौती देता है कि आप बाह्य तथा आन्तरिक शक्तियोंके खिलाफ मोर्चा लें। यदि आप जागरूक रहे तथा सहजबुद्धिसे आपने काम लिया, तो वह क्षण निस्सन्देह आपके लिए विजयकी घड़ी साबित होगा; किन्तु यदि आप वहां गाफिल पड़े या मौकेसे चूक गये, तो वही क्षण आपके लिए निराशा-जनक साबित हो सकता है।

केवल बाह्य परिस्थितियां ही हमारे जीवनकी सफलताओंपर पूर्ण नियन्त्रण रखती हैं—ऐसा सोचना एक भारी गलती है। समान परिस्थितियोंमें भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न तरहसे पेश आते हैं। जिन्दगीका प्रत्येक दिन हमारे लिए एक बहुमूल्य प्रयोग है। आनेवाले कलके लिए हम अपने इस प्रयोगसे सबक सीख सकते हैं। अपने ही तजरुबे नहीं, अन्य लोगोंके तजरुबेसे भी हम फायदा उठा सकते हैं।

आपने इतने दिन इस संसारमें बिताये हैं। इस लम्बे अरसेमें आपने अपने व्यक्तित्वका कहां तक विकास किया है? दुनियामें आगेको कदम बढ़ानेके लिए सबसे कीमती पूंजी आपका व्यक्तित्व, आपका ज्ञान है। आपके व्यक्तित्वमें निहित हैं—आपकी आदतें, आपकी रुचि, आपका ज्ञान और आपकी दूसरोंको प्रभावित करनेकी क्षमता। आपके व्यक्तित्वके ये भिन्न-भिन्न पहलू जिस हद तक उन्नति कर पाये होंगे, उतनी ही अधिक सम्भावना आपके जीवनके सफल होनेकी हो सकती है।

तो जरा आप अपने अन्दर झांकिये। जरा इन प्रश्नोंका उत्तर ढूंढ़िये और तब आपको मालूम होगा कि आप अपने व्यक्तित्वका निर्माण कहां तक कर पाये हैं। क्या आप समूचा दिन अकेले व्यतीत कर सकते हैं? इस अवकाशमें क्या आप अनेक ऐसे काम करते हैं, जो आपके ध्यानको आकर्षित रखते हैं? कहीं आप मनहूसोंकी-सी सूरत बनाकर उदास तो नहीं बैठ रहते? सन्ध्याके डूबते हुए सूर्यकी अरुणिमा अथवा सिनेमाके वक्त या चा-पार्टीमें यदि आपका साथी न आ सका, तो आपकी तबियत एकदम उचट तो नहीं जाती? यदि ऐसे मौकोंपर आप अकेले ऊबते नहीं, बल्कि उल्लासके साथ अपना समय व्यतीत कर लेते हैं, तो आप अपनी गिनती उन व्यक्तियोंमें कर सकते हैं, जिनकी आत्मनिर्भरताका विकास पर्य्याप्त रूपमें हो चुका है।

आत्म-संयमका भी आपके व्यक्तित्वमें एक विशिष्ट स्थान है। जिन्दगीके खेलमें दांव-पेंच लगाते समय आत्म-संयमसे बड़ी मदद मिलती है। धैर्य्य और आत्म-संयम ही आपकी गाढ़े समयपर मदद करते हैं। अतः इसकी जांचके लिए भी आपको अपने अन्दर झांकना होगा। तो जरा इन प्रश्नोंपर गौर कीजिये—किसी काममें असफल होनेपर क्या आप झल्ला उठते हैं? क्या ऐसे मौकेपर झूठ-मूठका, एक हठीले बालककी तरह, आप बावेला मचा देते हैं? नाकामयाबी हासिल होनेपर क्या आप हफ्तों तक उसीके रञ्जमें पड़े रहते हैं या जल्द ही उसके प्रतिकारके लिए नयी योजना बना लेते हैं?

अब देखना है, आपकी निपुणताका क्या हाल है। अपने पेशेमें आप निपुणता प्राप्त किये बगैर कभी स्वयं अपने पैरोंपर खड़े हो ही नहीं सकते, और न अगली लाइनमें ही पहुंचनेकी कभी आशा कर सकते हैं। जो आदमी अपने कामको बखूबी जानता है, वह किसीकी मददका मुहताज नहीं रहता—अपना कन्धा ऊंचा करके वह सबके सामने निकल सकता है। इसके प्रतिकूल जो लोग अपने काममें कच्चे होते हैं, उनके दिलमें हर वक्त एक धुकधुकी-सी पैठी रहती है। दूसरोंकी बांह पकड़े बगैर वे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। इस सिलसिलेमें इन प्रश्नोंपर गौर करना हितकर होगा—

क्या आप अपनी गलतियोंकी जिम्मेवारी दूसरोंके ऊपर न डालकर स्वयं अपने कन्धोंपर उसे ले लेते हैं? क्या आप किसी समस्यापर निर्णय बिना द्विधामें पड़े ले सकते हैं? क्या बिना अफसोस किये या पछताये, आप पुरानी योजनाको छोड़कर नयी योजनाको अपना लेते हैं? क्या एकाएक

नवीन परिस्थितियोंमें पड़ जानेपर आप बिना घबराये हुए फौरन् अपना आगेका कार्यक्रम निश्चित कर सकते हैं? क्या जब आपके प्रति अन्याय होता है, तो समझौतेकी बात न सोचकर आप उस अन्यायके प्रतिकारकी मांग निडर होकर पेश कर सकते हैं? क्या आप जज्बात और जोशको पीछे धकेलकर अपनी बुद्धिके सहारे हर मसलेको तय कर सकते हैं? क्या आपकी गलतियां दिखायी जानेपर आप वास्तवमें आलोचकके प्रति कृतज्ञ होते हैं? उत्तेजना पानेपर भी क्या आप अपने क्रोधको वशमें रखते हैं? क्या अपने रास्तेमें आनेवाली अड़चनोंको दूर करनेके लिए अन्य लोगोंसे परामर्श लिये बगैर आप समुचित उपाय स्वयं सोच सकते हैं? क्या आपको अपने निर्णयपर स्वयं भरोसा है, चाहे बादमें वह गलत ही क्यों न साबित हो? अपने कामके सम्पादनमें क्या आप महसूस करते हैं कि उसे जितनी अच्छी तरह अन्य कोई सम्पादित कर सकता है, उतनी ही अच्छी तरह आपने भी उसे सम्पादित किया है? क्या ऐसी परिस्थितिमें भी, जब कि वे लोग, जिन्हें आप आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, आपके खिलाफ राय रखते हैं, आप अपनी रायपर टिके रह जाते हैं?

यदि इन प्रश्नोंके उत्तरमें आप 'हां' कह सकते हैं, तो अवश्य आप अपनेको अपनी निपुणताके लिए बधाई दे सकते हैं। और यदि आप अपनेमें निपुणताकी कमी महसूस करते हैं, तो फौरन् कमर कसकर अपनी इस कमीको दूर करनेमें जुट जाइये, वर्ना अपने पेशेमें आप जीवन-पर्यन्त पिछली पांतमें ही पड़े सड़ते रहेंगे।

अपने काममें निपुण व्यक्ति दूसरोंकी खूबियोंकी जी खोलकर प्रशंसा भी करता है। व्यर्थमें वह परछिद्रान्वेषण नहीं करता। दूसरोंकी नाहक नुक्ताचीनी केवल ऐसे लोग किया करते हैं, जो स्वयं अपनी कमजोरी महसूस करनेके कारण 'इन्फीरियारिटी काम्प्लेक्स' के शिकार बने हुए होते हैं। निपुण व्यक्ति नये कामको बखूबी अञ्जाम देता है, वह चुपचाप बैठकर हैरान दिलसे सोचता नहीं है कि मैं अमुक काम कर सकता, तो अच्छा था। थ्योरीको प्रैक्टिसमें सोचनेको काममें परिणत करना वह जानता है। अपनी हार और नाकामयाबीको वह अपना कीमती अनुभव बनाकर भविष्यमें उसीके आधारपर सफलता प्राप्त करता है। अपनी तमाम शक्तियोंको अपने लक्ष्यपर केन्द्रित करके वह सफलताकी ओर पूरे इतमीनानसे बढ़ता है। निपुणतामें जागरूकता, सतर्कता, अध्यवसाय सभी कुछ शामिल हैं। इन्हींकी मददसे निपुण व्यक्ति रूढ़िवादिता, प्रारब्ध तथा जनमतसे लोहा लेता है। वह जानता है, किस प्रकार अपनी आदत, अनुभव, ज्ञान, अभिलाषा और बुद्धिका इस्तेमाल अभीष्ट लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए किया जा सकता है। अपनी इच्छाओंपर उसे पूर्ण नियन्त्रण है। सारांश यह कि आत्मसंयम, एकाग्रता और दूरदर्शिता तथा सहज-बुद्धि निपुणता प्राप्त करनेके प्रमुख साधन हैं।

पतिङ्गेकी तरह जिस व्यक्तिका मस्तिष्क एक चीजपरसे कूदकर दूसरी चीजपर हरदम जानेको तैयार रहता है, वह कभी भी पूर्ण रूपसे सफल हो ही नहीं सकता। गौरसे देखा जाय तो वास्तवमें ये ही बेचारे दुनियाका सारा काम, जिसमें अनायासका परिश्रम होता और थकावट आती है, करते रहते हैं; किन्तु न तो उनका लाभ होता है और न उन्हें किसी प्रकारका श्रेय ही मिलता है। क्योंकि किसी एक कामसे चिपटकर लगनके साथ उसमें लगकर उन्होंने कभी उसमें विशेष योग्यता हासिल ही नहीं की। जेठकी दुपहरियाकी प्रखर सूर्यरश्मियां भी तिनकेको साधारणतः नहीं जला सकतीं; किन्तु आतशी शीशे द्वारा जब उन्हींको एक विन्दुपर केन्द्रित कर लेते हैं, तो फौरन् तिनकेमें आग लग जाती है। विज्ञानका यह नियम आपकी मानसिक शक्तियोंपर भी लागू है। चन्द मिनट तक भी जो किसी एक विषयपर सोच नहीं सकता, जो अपनी बिखरी हुई मानसिक शक्तियोंको एकत्रित नहीं कर सकता, उसे हर काममें यदि नाकामयाबी हासिल हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

प्रतिदिन हमें अपने जीवनमें काहिलीके खिलाफ भी लड़ना पड़ता है। निर्जीव जगत्का नियम है—निश्चल पड़े रहना। हमारे शरीरका भी यही हाल है। आरामतलबी और काहिली हमारे शरीरको भी खूब पसन्द है—अतः जब कभी भी किसी ऐसे कामको शुरू करना हुआ जिसमें परिश्रम करना पड़ता है, हमारी काहिली हमारे सामने आ खड़ी होती है। उसे धक्का देकर अलग हटाना जरूरी होता है। एक जगहपर खड़ी हुई गाड़ीको जब कहीं खींचकर ले जाना होता है, तो पहले उसे जमीनसे छुड़ाना होता है—और ऐसा करनेके

लिए पर्याप्त बल लगानेकी जरूरत होती है। स्वयं अपनी काहिलीको भी दूर करनेके लिए सक्रिय प्रयत्न करनेकी आवश्यकता होती है। एक-दो बार इस काहिलीको यदि पराभूत कर दिया गया, तो भविष्यमें इससे मोर्चा लेना और भी आसान हो जाता है। एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकने इस ढङ्गकी काहिली दूर करनेके लिए एक उपयोगी नुस्खा बताया है कि आप अपनेको शरीरसे अलग जानें। शरीर यदि काहिलीका अनुभव करता है, तो उसे डांट दीजिये और काममें उसे जबर्दस्ती लगाइये। गाड़ी जब एक बार अपने स्थानसे डिग गयी, तो फिर उसे चालू रखनेमें कोई खास दिक्कत पेश न आयेगी।

कोई नयी पुस्तक पढ़नी है या कोई लम्बा पत्र लिखना है, और हम उसे शुरू करनेसे भागते हैं। कभी पेन्सिलकी नोक ठीक करने लगते हैं, तो कभी अखबारमें अपना मन बहलाने लगते हैं। और तुर्रा यह कि हम जानते रहते हैं कि इस पुस्तकमें हमारा मन लगेगा या उस पत्रके लिखनेमें हमारी पूरी दिलचस्पी है। ऐसे मौकेपर हमें अपनी काहिलीपर विजय प्राप्त करनेके लिए अपने शरीरके प्रति थोड़ी निष्ठुरता दिखानी होगी। "फिर कभीके बजाय तुरन्त अभी" इस आदर्श वाक्यको सदैव हमें ध्यानमें रखना लाजिमी है।

जीवनके हरएक पहलूमें हमें भिन्न-भिन्न श्रेणीके व्यक्तियोंसे मिलना-जुलना पड़ता है। अजनबी शख्ससे मिलते समय आप घबरा तो नहीं उठते? क्या आप भरसक प्रयत्न करते हैं कि अनजान लोगोंसे आपको मिलना-जुलना न पड़े? मित्रोंकी टोलीमें घूमनेके बजाय क्या आप घरके एकान्तमें बैठकर दिलचस्प पुस्तक पढ़ना ज्यादा पसन्द करते हैं? दूसरोंके सामने क्या आपको अपनी सादगी और मामूली पोशाकके बारेमें चिन्ता हो उठती है? कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेनेके पहले क्या दूसरोंसे परामर्श लेना आप जरूरी समझते हैं? क्या अकसर मौकोंपर आपको उदासी और उन्मन भावनाओंका दौरा हो आता है? यदि इन प्रश्नोंके उत्तरमें आप 'हां' कहते हैं, तो आपकी गिनती अन्तर्मुखी (इण्ट्रावर्ट) व्यक्तियोंमें होगी। ऐसे व्यक्ति बाह्य संसारके संसर्गसे भागते हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अन्तर्मुखी व्यक्ति समाजमें न तो लोकप्रिय हो सकता है और न वह विशेष कामयाबी ही हासिल कर सकता है। ऐसे व्यक्ति अच्छे लेखक, कलाकार या वैज्ञानिक बन सकते हैं; क्योंकि ऐसे पेशोंमें अधिक लोगोंसे मिलना-जुलना आवश्यक नहीं। किन्तु वकालत, एजेण्टी या डाक्टरी सदृश पेशेमें यह नितान्त जरूरी है कि आप लोगोंसे मिलें-जुलें और उन्हें अपनी ओर आकर्षित भी कर लें। यदि आपकी प्रकृति अन्तर्मुखी है, तो इन पेशोंमें आप हरगिज कामयाबी हासिल नहीं कर सकते।

इसके प्रतिकूल वहिर्मुखी प्रकृतिवाले व्यक्ति हर घड़ी और लोगोंसे मिलनेके लिए लालायित रहते हैं। इनकी खास पहचान यह है कि ये अपने अनुभवके किस्से दूसरोंको सुनानेके लिए हमेशा उत्सुक रहते हैं। अपना काम छोड़कर भी दूसरोंके काममें शामिल होना उन्हें अभीष्ट होता है। अपने ख्यालात जाहिर करनेमें ये जरा भी नहीं हिचकते। बचपनसे ही खेल आदिमें अपनी टोलीका ये नेतृत्व करते रहते हैं। दूकानदारके कहनेमें आकर बे-जरूरतकी चीजें ये कभी नहीं खरीदते। अजनबियोंसे भरे हुए कमरेमें प्रवेश करनेमें इन्हें जरा भी हिचक नहीं होती। बहस-मुबाहिसेमें आसानीसे ये लोग गर्म हो उठते हैं। इनके मित्रोंकी संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों इनकी प्रसन्नता भी बढ़ती है।

सार्वजनिक जीवनमें वहिर्मुखी व्यक्ति ही नाम कमा पाते हैं। नेता, एजेण्ट, वकील प्रायः वहिर्मुखी प्रकृतिके हुआ करते हैं। किन्तु ऐसे व्यक्ति किसी खास हुनरमें माहिर नहीं हो सकते। इनकी बहुत-सी शक्ति अन्य व्यक्तियोंके संसर्गमें बिखर जाती है। जमकर ये किसी एक काममें लग नहीं सकते और न अपनी समूची शक्तियोंको एक विन्दुपर केन्द्रित ही कर सकते हैं।

अब जरा अपनी जांच कीजिये और देखिये, कहीं आप ऐसे पेशेमें तो नहीं पड़े हुए हैं जो आपकी प्रकृतिके खिलाफ है। यदि आप वहिर्मुखी प्रकृतिके हैं, तो आप अपनी शक्तियोंको केन्द्रित करनेका अभ्यास कीजिये—जब किसी कामको आप हाथमें लेते हैं, तो उसे पूरा किये बगैर मत छोड़िये। भीड़के पीछे चलनेकी आदत छोड़कर अपनी स्वतन्त्र राय कायम करना सीखिये। जल्दी ही उत्तेजित होनेकी बानको भी छोड़िये; गम्भीर स्वभाव अपने अन्दर पैदा कीजिये। और

यदि आप अन्तर्मुखी प्रकृतिके हैं, तो जरा अपनी अंधेरी कोठरीसे बाहर निकलिये, और जिस दुनियामें आपको अपनी जिन्दगी बसर करनी है, उस दुनियाके लोगोंसे विचारोंका आदान-प्रदान कीजिये—उनके आमोद-प्रमोदमें दिल खोलकर शामिल होइये। अपने खास पेशेके दायरेसे बाहरकी चीजोंमें भी दिलचस्पी लीजिये, क्योंकि जब तक आप अन्य व्यक्तियोंके मामलोंमें दिलचस्पी न लेंगे, तब तक आपकी सुहबतके लिए लोग उत्सुक भी नहीं हो सकते।

विज्ञानके प्रभावसे ओत-प्रोत इस आजके संसारमें भी हजारों व्यक्ति असफलताका पत्थर गलेसे बांधे हुए अपने पेशेमें एक भार-स्वरूप जिन्दगी बिता रहे हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि आपके अन्दर प्रतिभा तो किसी और पेशेकी है और आप किसी और पेशेमें पड़े हुए हैं। आपके अन्दर एक ऊंचे दर्जेके साहित्यज्ञ और कलाकार होनेकी योग्यता है; किन्तु समाजके बन्धनोंमें पड़कर आप कलकत्तेके बाजारमें दलाली करते फिरते हैं। वैज्ञानिक अन्वेषण करनेकी योग्यता आपके अन्दर मौजूद है; किन्तु आप तनखाहके लोभसे आई० सी० एस० बनकर रामलीला और ताजियेका प्रबन्ध कर रहे हैं। इसी प्रकार कितने ही व्यक्ति गलत जगहोंमें पड़े हुए हैं—न तो वे अपने पेशेमें कामयाबी हासिल कर पाते हैं और न उसमें उनका मन ही लग पाता है।

सफल जीवन बिता सकनेके लिए उपर्युक्त बातोंके अतिरिक्त मौलिकताकी भी जरूरत होती है। यदि आपके अन्दर नयी-नयी बातोंके बारेमें सोच सकनेकी क्षमता है, तो निस्सन्देह आप अपने पेशेमें अन्य लोगोंसे हमेशा दो-चार कदम आगे रहेंगे। मौलिकता एक ऐसा गुण है, जो आपको फौरन् औसत दर्जेके व्यक्तियोंसे ऊंचा उठा देता है।

बेशक नयी बातोंको लेकर आगे बढ़नेमें अनेक खतरे हैं; किन्तु दुनिया ऐसे ही हिम्मतवर लोगोंके माथेपर सेहरा बांधती है। सैकड़ों हजारों व्यक्ति जिस लाइनपर सोचते आ रहे हैं, यदि उसी लाइनपर आप भी सोचेंगे, तो कौन आपकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित हो पायेगा? गलत या सही, भीड़से अलग जब आप खड़े होंगे, तभी लोग आपकी ओर दृष्टि फेर सकेंगे।

विज्ञानके इतिहासके पिछले पन्नोंको उलटिये, तो आप देखेंगे कि तत्कालीन रूढ़िको छोड़कर जिन लोगोंने अपने तर्जपर वैज्ञानिक गुत्थियोंको सुलझानेका प्रयत्न किया, उनका नाम संसारमें सदैवके लिए अमर हो गया। किन्तु अपनी मौलिकताके लिए उन्होंने कितने महंगे दाम चुकाये थे? क्या आपको मालूम है, गैलीलियो सरीखे चोटीके वैज्ञानिकको जेलकी दीवारोंके भीतर कितने दिनों तक अपने मौलिक विचारोंके कारण सड़ना पड़ा था? कोपर्निकसने पहली बार यह कहनेकी जुरअत की थी कि पृथ्वी अचल नहीं है, वरन् यह सूर्य्यके चारों ओर प्रदक्षिणा लगाती है—इस सिद्धान्तके प्रचारके कारण कोपर्निकसको क्या हद दर्जेकी यातना नहीं सहनी पड़ी थी? डार्विनके विकासवादके सिद्धान्तमें भी अपूर्व निर्भीकताकी एक लम्बी कहानी निहित है।

सच तो यह है कि मौलिकताके बिना किसी भी क्षेत्रमें उन्नति हो ही नहीं सकती। आगे बढ़नेके लिए जरूरी है कि वृत्ताकार रास्तेसे निकलकर घेरेके बाहर कदम उठाया जाय। अनेक व्यक्तियोंके दिमागमें मौलिक विचार पैदा होते अवश्य हैं; किन्तु उनके अन्दर इतना साहस या शक्ति नहीं कि उसे वे कार्य्यान्वित कर सकें। अतः ये अधखिली कलियां योंही मुरझाकर नष्ट हो जाती हैं। आलस नहीं, कायरताके कारण लोग नयी स्कीमोंको अमली जामा पहनाते हुए डरते हैं। ऐसे लोग नयी स्कीम चालू करके खतरा उठाना नहीं चाहते। बड़े-बड़े राष्ट्रोंके इतिहाससे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। चीनने मौलिक और नयी-नयी बातोंका सोचना त्याग दिया, फौरन् वह गहरे गर्त्तमें पहुंच गया। रोम-साम्राज्यके अन्दरसे मौलिकता गयी, तो कुछ ही वर्षोंमें रोम-साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गया।

यह सही है कि मौलिक रास्तेपर चलनेवालोंने हमेशा ही सफलता हासिल नहीं की है—अपने अनुमानमें अकसर ऐसे लोगोंने भारी धोखा खाया है। किन्तु यह भी सही है कि बिना मौलिक रास्तेपर चले आज तक किसी भी शख्सने देश, समाज, धर्म या विज्ञानको एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया है। कामयाब जिन्दगीका गुर है—मौलिकता+अध्यवसाय+साहस+लक्ष्यमें विश्वास।

समस्याका समाधान

श्री लक्ष्मीनाथ श्रीवास्तव प्रशान्त, बी० ए०

धीरे-धीरे टहलते हुए दार्शनिकने एक बार नीचे-ऊपर और फिर सामनेके विस्तीर्ण बन-प्रान्तरकी ओर अवसाद-भरे नेत्रोंसे देखा। पार्श्वमें नदीकी लहरें उछलती-कूदती, इठलाती भागी जा रही थीं और उस पार बन-कुक्कुटोंका झुण्ड दियारेके अनाजोंका भक्षण कर रहा था। अपराह्नका पीलापन सन्ध्याकी लालिमामें शनैः-शनैः परिवर्तित हो रहा था। मन्द-मधुर हवा चल रही थी।

दार्शनिक बेचैन था। दर्शनकी जटिल गुत्थियोंमें माथा उलझाकर उसने अपने अन्तरको आलोड़ित कर रखा था। जीवनकी अन्धाधुन्ध दौड़में वह अपने सिद्धान्तोंके बलपर कूदना चाहता, पर सदा अपनेको अधम, अज्ञानी-सा पाता। अनेकों ग्रन्थोंकी उसने रचना की, प्रसिद्धि पायी। यश और समृद्धि भी मिली। पर मन उसका सदैव बेचैन रहता। सिद्धार्थकी व्याकुल आत्मा मानो अभ्यन्तरमें पैठ उससे वसुधाके दुःख-दैन्यका दमन करवाना चाहती। वह दर्शनकी गुत्थियोंमें दिन-रात उलझा रहता। जीवनका लक्ष्य क्या है? परम शान्तिका मार्ग कौन-सा है? जगत्के जञ्जालका सुलझाव कहां है?—इत्यादि प्रश्न उसके मस्तिष्कको डांवाडोल किये रहते। इन्हीं चिन्ताओंमें वह सब कुछ भूला रहता। परिवारकी चिन्ता नहीं, दुनियाकी खबर नहीं। पत्नी उसे टोक-टोककर भोजन कराती, इष्ट-मित्र उसके बिगड़ते कामोंकी सुधि दिलाते। पूर्वजोंकी अर्जित सम्पत्ति हो और प्रकृतिका दिया हुआ मस्तिष्क; फिर दर्शनकी गवेषणा क्यों न हो। निरन्तर वह दर्शनसे लिपटा रहता।

दार्शनिक बेचैनीमें इधर-उधर टहलता रहा। समस्याका समाधान नहीं। वह क्या करे, कहां जाय। और क्या सोचे। अन्यमनस्क-सा फिर भी वह सोचता रहा। गहन-विचार-सरितामें पड़ी मनकी नैयाको कहीं किनारा नहीं। कोई सहारा नहीं। प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोंके 'वाद'-बवण्डरसे यह डगमगाती नाव और भी डूबने-डूबनेको हो आती है। निर्णय-उपकूल और दूर चला जाता है। वह विकल-हृदय जङ्गलके झुरमुटोंकी ओर मुड़ा। खट-खट, खट-खटकी कठोर-शुष्क आवाजने अचानक उसकी विचार-धारामें व्याघात दिया। दार्शनिकने चिढ़ी हुई आंखोंसे उधर देखा। पाकड़के पुराने पेड़की मोटी डालको एक लकड़हारा काट रहा है। कुछ कटा है, कुछ कटनेको बाकी है। टांगा अबाध, अथक गतिसे चल रहा है। लकड़हारा पसीनेसे लथपथ है। हांफ रहा है। प्रति क्षेपपर 'खट' की आवाजके साथ उसके मुखसे अनायास ही निकल जाता है-'हुंह'-उसकी थकानका सहज द्योतक। और इस खट-हुंह, खट-हुंहके सम्मिलित स्वरके साथ-साथ दिनका प्रत्येक पल बीत रहा है। लोहित वर्णकी रवि-रश्मि उस लौह-शस्त्रको कान्ति प्रदान करती हुई किञ्चित्-किञ्चित् क्षीण हो रही है। सब कुछ भूलकर वह एकान्तचित्त डाल काटता चला जा रहा है। एक-एक क्षेप मञ्जिलका एक-एक डग है। प्रति क्षेपके साथ जरा-सी चुन्नो उड़ती है और डाल कटने-कटनेको होती आती है। लकड़-हारा यह देख-देख परम सन्तोषके साथ अपने काममें लगा हुआ है। एक मन, एक प्राण। मानो उसके जीवनकी यही एकान्त साधना है, उसे ही पूर्ण पाकर वह सब कुछ पा जायेगा। और कुछ चाहना नहीं, कोई दूसरी कामना नहीं।

टांगेकी कर्कश आवाज और चकमकसे चिड़ियां चांव-चांव करती पेड़के इर्द-गिर्द मड़रा रही हैं। दार्शनिक उन्हें देख रहा है, देख-देखकर कुढ़ रहा है। अपने विचारोंमें व्याघात वह सह नहीं सकता। और बिना विचारे वह रह भी नहीं सकता। विचार, विचार, विचार। उसके जीवनमें और है ही क्या। उसे कौन समझावे। वह चिढ़कर वहांसे चला जाना चाहता है। घर जाकर अपने कमरेकी सभी खिड़कियों और दरवाजोंको बन्द कर एक मक्खीको भी उसमें नहीं रहने देगा। और वहीं खूब विचारेगा। व्याघात वह सह नहीं सकता और बिना विचारे रह भी नहीं सकता। वह विचारते ही विचारते उठता है और उन्हींमें डूबा चला जाता है।

× × ×

दस वर्ष बीत जाते हैं। दार्शनिककी अवस्था शोचनीय हो जाती है। उसका घर उजड़ जाता है। सम्पत्ति नष्ट हो जाती है—कुछ कारिन्दोंके हाथ जाकर, कुछ सम्बन्धियोंके। उसे अपने विचारोंसे फुर्सत ही कहां मिलती थी कि यह सब देखता। पत्नी बीमार पड़ी और घुल-घुलकर मर गयी। दर्शनकी गुत्थियां सुलझ नहीं पाती थीं। दार्शनिकको अवकाश नहीं मिलता था, डाक्टरको कौन बुलावे, सेवा-शुश्रूषा कौन करे। सीता-सी बहूका वियोग मांको असह्य हुआ और वे भी चल बसीं। दार्शनिकके परिवारमें अब केवल दो प्राणियोंका बसेरा है। एक स्वयं उसका और दूसरा उसकी एकमात्र सन्तान सप्तवर्षीया कन्याका। वैभवके स्मृति-स्वरूप, दाम्पत्यकी धरोहर-सी। तब दार्शनिकको विचारोंसे अवकाश नहीं मिलता था, सिद्धान्तोंके निराकरणमें मन-मस्तिष्क बेचैन रहते थे, अब उसे कामसे फुर्सत नहीं। उसकी अबोध बच्ची है बेमांकी। घरमें दाने नहीं, कपड़े नहीं। दार्शनिक कभी भर पेट खाता है, कभी आधा पेट। पर उसकी अबोध बच्ची—बे-मांकी, उसे खाना चाहिए, कपड़े चाहिए। और चाहिए पिताका प्यार भी। दार्शनिकके सिद्धान्तोंमें विराट् परिवर्तन होता है। उसकी साधनाकी दिशा ही बदल जाती है। बेमांकी लड़की, अन्न-वस्त्र-विहीन परिवार, पुत्री उसके जीवनका आधार। मायाके महान् सागरमें एक उद्वेलन होता है, उसीमें दर्शनकी गुत्थियां सदाके लिए विलीन हो जाती हैं। वह कठिनसे कठिन परिश्रम करता है और अपनी प्यारी पुत्रीकी दिलजोई करता है। बहुत कुछ सोच-समझकर उसने लकड़ी काटनेका काम उठा रखा है। प्रतिदिन जङ्गलमें जाकर लकड़ियां काटता है और शामको बाजारमें बेच देता है। उसीसे दो प्राणियोंका खाना-कपड़ा चल जाता है। दुनियासे उसे कोई वास्ता नहीं। भीड़-भड़क्के कामोंमें उसकी चाहना नहीं। लकड़ियोंको बेचना और अपनी एकान्त कुटियामें पुत्रीके सङ्ग सहवास, उसके जीवनके यही दो नियत कार्यक्रम हैं। और परम सन्तोष और शान्तिके साथ उसके दिन कटते जा रहे हैं। चिन्ताकी एक रेखा भी नहीं। उसके दैनिक कार्यक्रममें सबसे आह्लादकारी समय वह होता है, जिस समय शामको लकड़ियां बेचकर वह अपने और बच्चीके लिए भोजनकी सामग्री खरीदता है और उसके लिए कुछ मिठाइयां; और उत्सुकता-पूर्वक तेजीसे कदम बढ़ाता हुआ अपनी कुटियाकी ओर चल देता है। लड़की कभी अपना पाठ पढ़ती होती है, कभी तितलियोंके पीछे दौड़ती हुई होती है और कभी अपने झोंपड़ेको फूलोंसे सजाकर पिताको घूम-घूमकर दिखाती है। दूर कदम दूर ही से वह दौड़कर पिताके कन्धोंसे लिपट जाती है और पिता-पुत्री इधर-उधरकी बातें किया करते हैं। रातमें खा-पीकर लड़की दुलारसे कहती है—बाबू! कोई कहानी कहो! और दार्शनिक बड़े प्रेमसे, एकान्त तल्लीनतासे राम-सीताकी, नल-दमयन्तीकी कहानियां सुनाता है। इसी तरह हंसते-बोलते दोनों प्रगाढ़ निद्रामें अभिभूत हो जाते हैं। दिन-भर तो उसे कुछ सोचनेका अवकाश ही नहीं मिलता, रातकी बेहोशीमें कभी-कभी, मधुर स्वप्नकी तरह अतीतकी एक हल्की स्मृति उसके उर-अन्तरमें एक कोमल हिल्लोल-सी उठा जाती है। वह एक क्षणको व्यस्त होता है, पर दूसरे ही पलमें अपनी अमूल्य निधि, प्यारी बच्चीकी ओर देखता है—चांदनीके सुहासित प्रकाशमें, उसकी मुंदी पलकोंपर जगत्‌की सुषमा विराजती होती, निर्दोष सुन्दर आननकी आभामें दार्शनिकके विस्मृत वैभव और प्रत्याशित प्रणयकी छाया लोटती होती। वह सब कुछ भूल जाता। हृदयके रससे भींगी पलकोंसे वह अपने जिगरके टुकड़ेको निहारता और उसीमें सब कुछ पाकर परम सन्तोषकी सांस लेता। पवनके पङ्खोंके सहारे प्रकृतिका शान्ति-सन्देश उसे पुनः थपकियां देकर सुला देता। उसके अत्यन्त नियमित और कठोर जीवनकी ये घड़ियां रूखे भोजनमें चटनीका काम करतीं। और जैसे विश्वके वैषम्यसे अलग उसके दिन कटते होते।

× × ÷

'खट-खट'—'खट-खट'

नदीका किनारा है। उसके पार्श्वका वन-प्रान्तर। पाकड़के पेड़की मोटी डालको एक लकड़हारा तल्लीनतापूर्वक काट रहा है। कुछ कटा है, कुछ कटनेको बाकी है। वह पसीनेसे लथपथ है, हांफ रहा है। प्रतिक्षेपपर 'खट' की आवाजके साथ, उसके मुखसे निकल जाता है—हुंह। उसकी थकानका द्योतक। और इस 'खट-हुंह'—'खट-हुंह' के सम्मिलित स्वरके साथ दिनका प्रत्येक पल बीत रहा है। लोहित वर्णकी रवि-रश्मि उस लौह-शस्त्रको कान्ति प्रदान करती हुई किञ्चित्-किञ्चित् क्षीण हो रही है। सब कुछ—जैसे अपनेको

भी—भूलकर वह डाल काटता चला जा रहा है। अन्तः प्रदेश-में विद्युत्-लहरकी नाईं एक विचार-धारा दौड़ जाती है—बापकी प्रतीक्षामें ताकती प्यारी बेटी, निर्जन झोंपड़ीका शान्त वातावरण, अनन्त मनुहारोंमय बाप-बेटीका प्यार-भरा कथोपकथन। और दूने उत्साहसे वह लकड़ी काटने लगता है।

सुहावनी सन्ध्या और रात प्रकृतिके किसी एकान्त कोनेसे शनैः शनैः खिसकती चली आ रही हैं। और टांगेका प्रत्येक क्षेप मञ्जिलका एक-एक डग है।

कई वर्षों पहलेकी समस्या—जब दर्शनकी गुत्थियोंसे मन-मस्तिष्कको उलझाये, घूमता-घामता दार्शनिक, पसीनेसे लथपथ किसी लकड़हारेको देख रहा था—शायद हल हो गयी थी।...शायद...।

———

तेलका युद्ध

श्री 'चन्द्र'

आजकी लड़ाई पिछली लड़ाईसे बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। उस लड़ाईमें भाग लेनेवाले राष्ट्रोंको कई कठिन समस्याओंका सामना करना पड़ा, जैसे अस्त्र-शस्त्र, भोजन-सामग्री व धन आदिकी समस्यायें। लेकिन अब जो उनके सामने मुख्य और सबसे कठिन समस्या है, वह तेल-की है। यह कहना अनुचित न होगा और प्रायः सभी अनुभवी राजनीतिज्ञ कह रहे हैं कि जिसने इस समस्याको हल कर लिया, उसकी अबकी अवश्य विजय होगी। इसी समस्याको हल करनेके लिए प्रायः प्रत्येक देशके सरकारी वैज्ञानिक जी-जानसे जुटे हुए हैं और उन्हें इसमें बहुत कुछ सफलता भी मिली है, अर्थात् कुछ देशोंने बीज आदि चीजोंसे तेल निकालना भी आरम्भ कर दिया है। जापान जैसे अनुभवी राष्ट्र तथा अन्य राष्ट्रोंने तो चाबीदार मोटरों व पेट्रोलके बदले कोयला या ऐसी ही कोई अन्य चीजें इस्तेमाल करनी शुरू कर दी हैं, जिससे जितना ज्यादा हो सके, लड़ाईके लिए या जरूरतके लिए पेट्रोल जमा कर लिया जाय। क्योंकि सभी देशोंको आशा है कि अगर लड़ाईमें वे शामिल न हुए, तो भी वे इसे बेच-बेचकर बहुत ज्यादा लाभ उठा सकेंगे।

गणनाके अनुसार मालूम हुआ है कि लड़ाईकी बड़ी लारीके २५ मील चलनेमें एक गैलन, हवाई जहाजके २ मील चलनेमें करीब २। गैलन, समुद्री जहाजके एक घण्टे चलनेमें ७॥ टन, टैङ्कके १॥ मील चलनेमें एक गैलन व सबमाइनके एक घण्टे चलनेमें करीब ¼ टन तेल खर्च होता है। इन दिये हुए अङ्कोंसे सहज ही में यह नतीजा निकाला जा सकता है कि अबकी इस लम्बी लड़ाईमें लड़ाकू राष्ट्रोंको इन लड़ाईके मुख्य हथियारों-के लिए कितने अधिक पेट्रोलकी आवश्यकता पड़ेगी। जर्मनी जैसे लड़ाकू राष्ट्रोंने तो हजारों छोटे-बड़े अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हथियार बना भी डाले। लेकिन इस समस्याने उन्हें एकदम चौकन्ना कर दिया है और अब वे इस फेरमें हैं कि अब उन छोटे-छोटे राष्ट्रोंको हड़पना या दबाना चाहिए, जिनके पास तेल-की काफी खाने हैं। और यही कारण है कि जर्मनी व रूस रूमानियापर; इटली यूगोस्लेविया और अन्य तेलवाले मुसलिम राष्ट्रोंपर और जापान डच ईस्ट इण्डीजपर बुरी तरह-से आंख गड़ाये हुए है।

तेलवाले देशोंमें मुख्य देश ये हैं:—अमेरिका, रूस, ईरान, रूमानिया, ईराक, मेक्सिको, डच ईस्ट इण्डीज, बर्मा, कनाडा और जर्मनी ; जिनकी सहायतासे तेलकी कमी पूरी की जा सकती है और ये देश हजारों गैलन तेल प्रतिदिन सहज ही दे सकते हैं। इन तेल निकालनेवाले देशोंमें पहला नम्बर अमेरिकाका है, जो करीब २००,०००,००० टन तेल निका-लता है; दूसरा नम्बर रूसका है, जो करीब ३०,०००,००० टन (इसमें पोलैण्डका भाग भी शामिल है) तेल निकालता है; तीसरा ईरान है, जो करीब १०,१९९,३७० टन; चौथा रूमानिया व डच ईस्ट इण्डीजका है, जो करीब ८,०००,०००

और ६,०००,००० टनके बीच तेल निकालते हैं। पांचवें मेक्सिको और ईराक हैं, जो ९,५००,००० से लेकर ४,०००,००० टन तक निकालते हैं। बाकी अन्य देश यानी बर्मा, कनाडा, जर्मनी इत्यादि १,०००,००० से लेकर ५००,००० टन तक तेल निकालते हैं। इन देशोंके पास अपनी रक्षाके लिए तो तेल काफी जमा ही है, ये दूसरे देशोंको भी अच्छी तरहसे काफी लाभ उठाकर तेल दे सकते हैं। सच पूछिये तो अबकी लड़ाईमें विजय पानेका उत्तरदायित्व इन्हीं देशोंपर है।

इन तेलवाले देशोंमें ज्यादातर ब्रिटेन ही के सहायक हैं। तेलकी खनिजमें पहला नम्बर रखनेवाला अमेरिका तो पिछले युद्धमें भी इसका सहायक था, और अबकी भी इसकी नीति स्पष्ट है कि या तो यह पूर्णरूपसे ब्रिटेनके साथ रहेगा, या फिर तटस्थ रहेगा, लेकिन ब्रिटेनको यह दोनों रूपसे सहायता देगा। दूसरे तेलवाले देश, जैसे बर्मा, कनाडा, ईराक और ईरानके तेलपर तो बहुत कुछ ब्रिटेनका पूरा नियन्त्रण है। दूसरी बात उसकी सुन्दर स्थिति और धनपर है। नक्शे देखनेसे मालूम होगा कि ब्रिटेनके जहाज इन तेलवाले देशोंमें सहज हीमें जा-जाकर तेल दे सकते हैं। यह आसानी जर्मनीको नहीं है। ब्रिटेनका जहाजी रास्ता इतना अच्छा है कि वह प्रायः अपने मित्रोंसे सहज ही में व्यापार कर सकता है, और जिस चीजकी उसे जरूरत होगी, वह सहज ही में मंगा सकता है। दूसरी आसानी उसके धनवान होनेकी है। क्योंकि कोई भी देश ऐसा नहीं है, जो बिना लाभके किसीको कुछ दे, और वे सभी जानते हैं कि ब्रिटेन बड़ा धनवान राष्ट्र है, अगर उसे तेल बेचेंगे, तो लाभ भी बहुत ज्यादा होगा।

ब्रिटेन और फ्रान्सके राजनीतिज्ञोंके अनुसार दोनोंको मिलाकर करीब ९०, ०००, ००० टन तेल प्रति वर्षके हिसाबसे आवश्यकता पड़ेगी। इतना तेल तो इन लोगोंको केवल ईरान, ईराक और कनाडासे प्राप्त हो सकता है, बल्कि इनको अपने पिछले पक्के साथी अमेरिकाके १००,०००,००० टन तेलमेंसे बहुत कुछ हिस्सा प्राप्त हो जायेगा। और हम लिख चुके हैं कि ब्रिटेनका समुद्री रास्ता इतना सुन्दर है कि आवश्यकता पड़नेपर वह हर जगहसे तेल ले सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटेन और फ्रान्सके लिए यह समस्या बहुत सरलतासे हल हो सकती है। और यही कारण है कि ब्रिटेन और फ्रान्स निश्चिन्त होकर युद्धमें डटे हुए हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि तेलकी सहायता तो उनपर यथाशक्ति है ही। दूसरी बात भोजन व अस्त्र-शस्त्रकी है, जो उनके पास हैं ही। अगर जरूरत पड़ी, तो अकेले अमेरिका, कनाडा व आस्ट्रेलिया इन सब बातोंमें सहायता देनेमें काफी हैं।

दूसरी तरफ हम देखते हैं कि जितनी ही ब्रिटेनको तेल पानेमें सहूलियत है, उतनी ही जर्मनीको कठिनाई। न तो जर्मनीके पास कोई ऐसा सुन्दर बन्दरगाह है और न उसकी स्थिति ही इतनी अच्छी है कि वह ब्रिटेनकी तरह सब देशों-से स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार कर सके। न उसका इटली-को छोड़कर ऐसा कोई तेलवाला देश साथी है, जिसपर वह निर्भर रह सके। दूसरी बात यह है कि सभी राष्ट्र यह जानते हैं कि जर्मनी एक दिवालिया राष्ट्र है, अगर इसे तेल देंगे तो कुछ भी लाभ न होगा; यही कारण है कि कुछ देशोंको छोड़कर कोई भी देश इसे कर्जपर तेल नहीं देना चाहता और नगद धनकी जर्मनीमें कमी है।

इतना होते हुए भी यह न समझ लेना चाहिए कि जर्मनी इस समस्यामें पूरा दिवालिया है। वह भी इस समस्यामें अपनेको किसीसे कम तगड़ा नहीं रखना चाहता। हिटलर बड़ा चालाक आदमी है। वह जानता था कि उसे इस समस्याका सामना करना पड़ेगा, यही कारण था कि उसने पहलेसे ही जर्मनीमें तेल इकट्ठा करना शुरू कर दिया था, जो कि बहुत काल तक उसके काम आ सकता है। इधर रूस भी, जिसमें करीब ३०,०००,००० टन तेल निकलता है, वह भी इसका मित्र हो गया है, जिससे इसके हौसले बढ़ गये हैं; क्योंकि रूससे धन और तेल दोनों ही की सहायता इसे प्राप्त होगी। और इधर रूमानियाकी ऐसी बुरी स्थिति पड़ गयी है कि लाजिमी उसे जर्मनीको तेल देना पड़ता है।

फ्रान्सके एक अनुभवी राजनीतिज्ञके अनुसार अबकी-वाली पूरी लड़ाईके लिए कुल ७०,०००,००० टन तेलकी आवश्यकता पड़ेगी (क्योंकि लोगोंका ख्याल है कि लड़ाई करीब एक साल या और कुछ थोड़े महीने चलेगी)।

अब देखना चाहिए कि इसमेंसे जर्मनी कितना तेल पा सकता है, जिससे लड़ाईमें डटा रहे। ब्रिटेन और फ्रान्स-

के राजनीतिज्ञोंके अनुसार, पोलैण्डके जर्मनीमें मिल जानेसे करीब ८००,००० टन तेल तो वह खुद निकालता है, ६००,००० टन (या इससे कुछ अधिक) का रूससे वादा है, ४८०,००० के करीब रूमानिया इसे तेल दे सकता है। कहा जाता है कि करीब ७, ९००,००० टन तेल इसपर पहले जमा था। बाकी बहुत-सा तेल इसे खरीदनेपर अमेरिका, ईरान व ईराक इत्यादि देशोंसे प्राप्त होगा। इसी तेलकी समस्याको पूरा करनेके लिए उसने जापानको डच ईस्ट इण्डीज-के लिए उसका दिया है, जो कि तेल निकालनेमें करीब रूमानियाके बराबर है। और अभी हालमें खबर भी आयी थी कि जापान डच इण्डीजपर हमला करनेकी बात सोच रहा है।

इस प्रकार हमने देख लिया कि इस समस्यामें प्रायः दोनों ही तगड़े पड़ते हैं। तिसपर भी दोनों ही विरोधियों-को कुछ न कुछ शङ्का बनी ही है कि ईश्वर जाने, आगे क्या होगा ? क्या मालूम, कोई साथी सहायता देनेमें मुकर जाये य। दुश्मन बन बैठे ? इस बातका ज्यादा खतरा जर्मनीको ही है; क्योंकि अपनी ताकत और इटलीको छोड़कर कोई भी स्पष्ट उसका पक्का साथी नहीं है, जिसपर वह निर्भर रह सके। रूस, रूमानिया और जापानकी कोई स्पष्ट नीति नहीं, इसी कारण जर्मनी इनपर पूर्ण विश्वास नहीं करता, तथापि वह इन्हें अपना सच्चा मित्र समझता है। केवल इतने ही खटकेके होनेसे जर्मनी ब्रिटेनसे इस समस्यामें कमजोर पड़ता है।

इधर ब्रिटेनके लिए हम लिख चुके हैं कि ब्रिटेन ईराक, ईरान और कनाडासे ९०,०००,००० टन तेल सरलता-से प्राप्त कर सकता है। धनवान होने व उपनिवेशों तथा अमेरिकाके साथ होनेसे इसका खतरा जर्मनीसे कम है।

इस कारण सभी अनुभवी राजनीतिज्ञ कह रहे हैं कि इस लड़ाईमें तेलकी समस्या सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। कहते हैं कि पिछले महायुद्धमें किसी अनुभवी राजनीतिज्ञने कहा था कि "कोई ऐसा भी समय आयेगा, जब कि एक बूंद तेलका मूल्य एक बूंद खूनके बराबर होगा," जो कि इस लड़ाईमें लड़ाकू राष्ट्रोंके लिए अक्षराक्षर सत्य सिद्ध हो रहा है और आगे (सभ्य ?) लड़ाइयोंमें होगा !

———

रूमानिया

श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०

रूमानियाकी उर्वरा भूमि मनुष्य और वर्तमान युद्धमें मनुष्यके दाहिने हाथ मेशीन, दोनों ही के लिए प्रचुर मात्रामें खाद्य पदार्थ उत्पन्न करनेकी क्षमता रखती है। प्रकृतिने भी रूमानियाको चीड़के विशाल वन और खनिज तेलका अनन्त भण्डार प्रदान करके उसे और अधिक समृद्धिशाली बना दिया है। रूसके बाद यूरोपमें सबसे अधिक खनिज तैल—पेट्रोल, रूमानियामें ही उत्पन्न होता है। संसारके समस्त पेट्रोल-उत्पादक क्षेत्रोंमें भी रूमानियाको प्रमुख स्थान प्राप्त है। यहां प्रति वर्ष लगभग ७० लाख टन पेट्रोल तैयार किया जाता है। पेट्रोल ही के समान रूमानियामें गेहूं और दूसरे अनाजोंका भी बाहुल्य है। अपनी जरूरतोंको पूरा करनेके बाद रूमानियामें विदेशोंको भेजनेके लिए बहुत काफी पेट्रोल, गेहूं और दूसरे अनाज बच जाते हैं। रूमानियाका यही वैभव और प्राकृतिक सम्पत्ति आजदिन उसकी स्वाधीनताको खतरेमें डाले हुए है।

रूमानियाके पड़ोसी उसके इस वैभवपर ईर्ष्या करते हैं। हिटलर और स्टेलिन दोनों ही उसे अपना ग्रास बनानेकी चेष्टामें हैं। जर्मनीको हमेशा ही पेट्रोलकी जरूरत बनी रहती है। वर्तमान युद्धने उसकी इस आवश्यकताको और अधिक प्रबल एवं व्यापक बना दिया है। आम तौरपर जर्मनी प्रतिवर्ष विदेशोंसे जितना पेट्रोल खरीदता है, वह सब उसे रूमानियासे मिल सकता है। पिछले वर्ष जर्मनीमें विदेशोंसे जितना पेट्रोल आया था, उतना ही पेट्रोल रूमानियामें उत्पन्न हुआ था। अपनी युद्ध-नीतिको सफल बनानेके लिए जर्मनी रूमानियाको जर्मन साम्राज्यका एक अङ्ग बनानेके लिए अत्यन्त उत्सुक है। उधर रूस भी रूमानियाको हड़प जानेके लिए आये दिन नये बहाने ढूंढ़ रहा है। प्रस्तुत लेखमें इसी रूमानियाके बारेमें संक्षेपमें कुछ ज्ञातव्य बातें बतलायी जायंगी।

रूमानियाकी गणना यूरोपके नये राज्योंमें की जाती है। रूमानियाका कोई अपना पुराना इतिहास है भी नहीं। वास्तवमें रूमानियाको बने हुए अभी पूरे १०० साल भी नहीं हुए। १८५९ ई० में वालेशिया और मालदेविया नामक दो रियासतोंको जोड़कर रूमानियाका निर्माण किया गया था। परन्तु आधुनिक रूमानिया तो और भी बादकी बात है। वर्तमान रूमानियाका आधेसे अधिक भाग और आधेसे अधिक आबादी, उसमें महायुद्धके बाद शामिल किये गये हैं। रूमानियाके तीन प्रमुख प्रान्त बेसारबिया, बुकोविना और ट्रान्सिलवेनिया रूमानियामें १९१८-१९ में शामिल किये गये थे। बेसारबिया रूससे और ट्रान्सिलवेनिया हंगरीसे लेकर रूमानियामें मिला दिये गये थे।

रूमानियाकी आबादी १९३० में होनेवाली जनगणनाके अनुसार १ करोड़, ८० लाख, २५ हजार है। इसमेंसे २३,४४००० बेसारबियामें, २३,२६००० ट्रान्सिलवेनियामें और ८ लाख व्यक्ति बुकोविनामें रहते हैं। रूमानियाका कुल क्षेत्रफल १ लाख २२ हजार २८२ वर्गमील है। रूमानियाके पूर्वमें कालासागर है, और बाकी भाग बलगेरिया, यूगोस्लेविया, हंगरी, पोलैण्ड और रूससे घिरे हैं। पोलैण्डका जो भाग रूमानियासे मिला हुआ है, वह अब रूसके कब्जेमें है।

रूमानियाकी आबादी भी विभिन्न जातियोंका मिश्रण है। रूमानियाके मूल निवासियोंके अतिरिक्त हंगेरियन, जर्मन, रूसी, तुर्क, बलगार्स (बलगेरियाके निवासी), जिप्सी और यहूदी भी वहां प्रचुर संख्यामें आबाद हैं। रूमानियाके खास निवासी इटैलियन लोगोंसे बहुत मिलते-जुलते हैं। उनकी भाषा भी बहुत कुछ इटलीवालों ही से मिलती-जुलती है। उसका उद्गम लेटिन भाषा ही है। विभिन्न जातियोंके देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें आबाद होनेके कारण उन सबके रीति-रिवाज और आचार-व्यवहारमें भी बड़ा अन्तर है। रूमानियाके अधिकांश निवासी ईसाई हैं; परन्तु यहूदियों और मुसलमानोंकी भी अच्छी संख्या है और उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। ईसाई गिरजाघरोंके साथ ही साथ स्थान-स्थानपर यहूदियोंके सिनेगाग और मुसलमानोंकी मसजिदें भी देखनेमें आती हैं। जिप्सियोंके झुण्डके झुण्ड
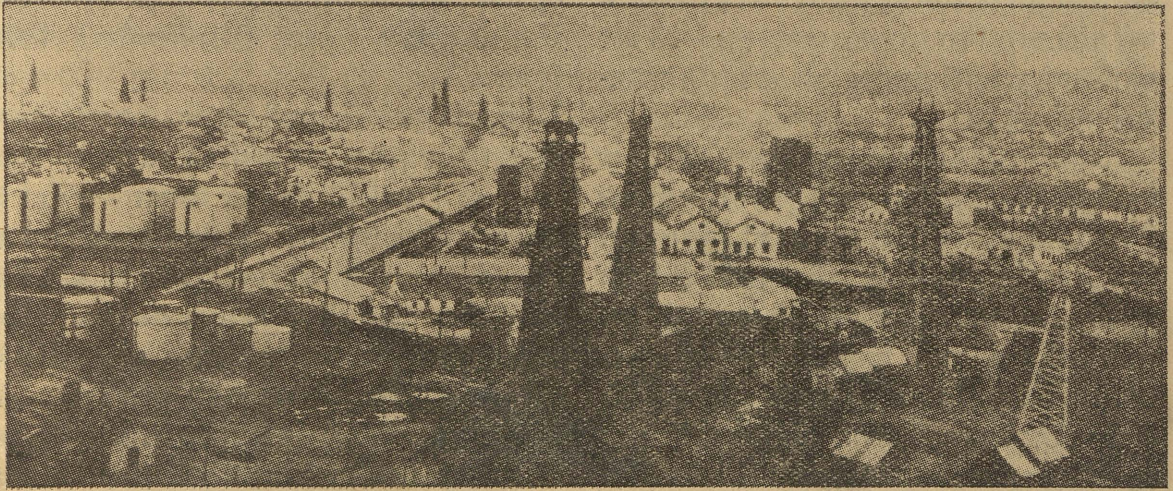
रूमानियाका तेल-क्षेत्र, जिसपर लोलुप राष्ट्रोंकी दृष्टि गड़ी हुई है।

गांवोंमें घूम-घूमकर किसानोंका मनोरञ्जन करते रहते हैं।

रूमानियाका मुख्य उद्यम कृषि है। देशके अधिकांश निवासी खेती-बारीमें लगे रहते हैं। गेहूं, जौ और मकई बहुतायतसे पैदा की जाती है। इधर हालके कुछ वर्षोंसे उद्योग-धन्धोंको सङ्गठित करने और नये उद्योग-व्यवसाय जारी करनेके प्रयत्न भी किये जाने लगे हैं। गेहूं और तेलके अतिरिक्त रूमानिया-में बहुत-से महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थ भी पाये जाते हैं। लोहा, तांबा, कोयला, जस्ता, पारा, सोना और अल्यूमिनियम रूमानियामें मिलनेवाले कुछ प्रमुख खनिज पदार्थ हैं। इन सबको भली भांति काममें लानेके उद्देश्यसे रूमानियामें जल-बलसे बहुत सस्ती बिजली पैदा करनेकी भी कोशिश की जा रही है। जल-विद्युत्के पूर्ण रूपसे उन्नत हो जानेपर रूमा-नियाका महत्त्व और अधिक बढ़ जानेकी पूरी सम्भावना है।

यूरोपके अन्य देशों ही के समान रूमानियामें भी सैनिक शिक्षा अनिवार्य है। इधर हालकी घटनाओंने रूमा-नियाको भी दूसरे यूरोपियन देशोंकी तरह सैनिक तैयारी करनेके लिए विवश कर दिया है। सैनिकोंकी संख्या बढ़ाकर लगभग २५ लाख कर दी गयी है। इन सैनिकोंको आधुनिक अस्त्र-शस्त्र और दूसरे वैज्ञानिक साधनोंसे सुसज्जित किया गया है। साधारण सेनाके साथ ही साथ जल-सेना और हवाई सेना भी सङ्गठित की गयी है। हवाई सेनाके सङ्गठन-में अंगरेजोंका प्रमुख हाथ है। हाल ही में इंगलैण्डने रूमा-नियाको अपने ब्लेनहीम नामक प्रसिद्ध वायुयान भेजे हैं। इन वायुयानोंसे हवाई सेनाके तीन दलोंका सङ्गठन किया गया है। ६ मास पहले हवाई सेनामें ८०० वायुयान और १२००० सैनिक बतलाये जाते थे। इंगलैण्डसे हवाई जहाज मंगानेके अतिरिक्त कुछ लड़ाकू वायुयान देशमें भी तैयार करने-का प्रबन्ध किया जा चुका है। काले सागरमें जल-सेना भी पहलेकी अपेक्षा मजबूत बनायी जा रही है। अपनी स्वाधी-नताकी रक्षाके लिए रूमानिया अपने आपको पूरे तौरपर तैयार करनेकी चेष्टा कर रहा है।

रूमानियाका शासन दो व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा होता है। एक सभाके सदस्य जनसाधारण द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। प्रत्येक बालिगको वोट देनेका अधिकार प्राप्त है। यह सभा चेम्बर आव डिपुटीज कहलाती है। दूसरी सभा सीनेट कहलाती है। सीनेटमें निर्वाचित और नामजद दोनों ही प्रकारके सदस्य होते हैं। कुछ व्यक्ति आजीवन सीनेटके सदस्य बना दिये जाते हैं। व्यवस्थापिका सभायें शासन-प्रबन्धके लिए प्रधान मन्त्रीके नेतृत्वमें अपना मन्त्रि-मण्डल नियुक्त करती हैं। यही मन्त्रिमण्डल सब काम देखता है।

प्रकट रूपमें यह प्रबन्ध जनसत्तात्मक मालूम होता है। परन्तु रूमानियाके बादशाह कैरोल द्वितीय रूमानियापर एक डिक्टेटरकी भांति हुकूमत करते हैं। उन्होंने शासन-प्रबन्ध

और शिक्षा आदिके बारेमें बहुत सुधार किये हैं। १९२६ में उन्हें गद्दीसे उतार दिया गया था; परन्तु १९३० में वे फिर रूमानियाकी राजधानी बुखारेस्ट लौट आये और शासन-कार्य चलाने लगे हैं।

डिक्टेटरों द्वारा शासित दूसरे यूरोपियन देशोंकी तरह रूमानियामें भी वर्दी पहननेका चलन बहुत लोकप्रिय हो गया है। सरकारकी ओरसे भी वर्दी पहनना अनिवार्य-सा बना दिया गया है। स्त्रियोंको भी वर्दी पहननी होती है। सिविल सर्विसमें काम करनेवाली स्त्रियोंको काम करते समय अपनी नीली वर्दीमें रहना पड़ता है। युवक-आन्दोलनका रूमानियामें भी काफी प्रभाव है। अपनी छोटी आयुमें ही बालक-बालिकायें इस आन्दोलनमें सम्मिलित हो जाते हैं। स्कूलोंमें पढ़नेके साथ ही साथ उन्हें साधारण सैनिक शिक्षा भी दी जाती है। छुट्टियोंके दिनोंमें शिविर सङ्गठित किये जाते हैं। कुछ वर्ष पहले तक जनसाधारणको शिक्षा-सम्बन्धी विशेष सुविधायें न प्राप्त थीं। नवीन शासन-सुधारोंके काम-में लाये जानेसे अन्य क्षेत्रों ही के समान शिक्षा-विभागमें भी महत्त्वपूर्ण सुधार हुए हैं। उद्योग-धन्धोंके आधुनिक ढङ्गके स्कूलों और पुस्तकालयोंका सङ्गठन किया गया है। बादशाह कैरोल भी जनताके, विशेषकर किसानोंके जीवनमें विशेष दिलचस्पी लेने लगे हैं।

जैसा कि इस लेखके शुरूमें बतलाया गया है, रूमा-नियाका राज्य १८५९ ई० में वालेशिया और मालदेविया नामक दो रियासतोंको मिलाकर बनाया गया था। ये दोनों रियासतें उन दिनों टर्कीके अधीन थीं। नये राज्यका सङ्गठन हो जानेपर भी रूमानिया १८७८ तक टर्की ही के अधीन रहा। १८७८ में रूमानिया स्वतन्त्र हो गया और १८८१ ई० में मौजूदा बादशाह कैरोलके दादा, कैरोलने अपनेको रूमानियाका बादशाह घोषित किया। १९१४ में उसकी मृत्यु हो गयी और उसका बेटा फर्डिनेण्ड गद्दीपर बैठा। महायुद्ध आरम्भ होनेपर फर्डिनेण्डने अंगरेजोंका साथ दिया। अंगरेजोंका साथ देनेके कारण जर्मनीने रूमानियापर जबर्दस्त आक्रमण किया और रूमानियाके अधिकांश भागपर अपना कब्जा कर लिया। उन दिनों भी जर्मनीको आजकल-की तरह पेट्रोलकी सख्त जरूरत थी; परन्तु रूमानियापर कब्जा कर लेनेपर भी वह उसके पेट्रोलको समुचित रूपसे

रूमानियाकी महिलायें भी किसी सङ्कट-कालके लिए पहलेसे तयार हैं।

काममें न ला सका। शत्रु पेट्रोलका लाभ न उठा सके, इस उद्देश्यसे रूमानियाकी फौजने पेट्रोलके अधिकांश कुओं और कारखानोंको हारते-हारते नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। महायुद्धकी समाप्तिके बाद रूमानियाके इस प्रमुख व्यवसायका फिरसे सङ्गठन किया गया है। महायुद्धकी समाप्तिपर रूमानियाको हरजानेके तौरपर रूसी सूबा बेसारबिया भी दे दिया गया। रूसको यह बात बराबर बहुत अखरती रही है। वह बराबर इस बातका मौका ढूंढ़ता रहा है कि वह अपने इलाकेको किस तरह रूमानियासे वापस ले सके।

वर्तमान युद्ध शुरू होते ही रूसकी ओरसे बेसारबियाके रूसी निवासियोंमें—जो वहां अल्पमतमें हैं—आन्दोलन शुरू कर दिया गया। कोशिश की जा रही है कि बेसारबियाके निवासी स्वयं इस बातकी घोषणा कर दें कि उन्हें रूमानियाकी हुकूमतमें बहुत तकलीफ मिल रही है और वे फिर रूसमें शामिल हो जाना चाहते हैं। इस बातकी भी अफवाह उड़ायी गयी थी कि रूस और जर्मनीमें रूमानियाके बारेमें परस्पर समझौता हो गया है। और यदि इन दोनोंको रूमानियापर आक्रमण करना ही पड़ा, तो रूस बेसारबियापर कब्जा कर लेगा और जर्मनी रूमानियाके पेट्रोल-उत्पादक क्षेत्रोंपर। परन्तु जर्मनीके लिए रूमानियापर कब्जा कर लेना अब आसान काम नहीं रह गया है। उसे रूमानियापर आक्रमण करनेके लिए हंगरी होकर जाना होगा। पोलैण्डका वह भाग, जो रूमानियासे मिला हुआ है, रूसके कब्जेमें है। हां, यदि रूस और जर्मनी दोनों मिलकर रूमानियापर आक्रमण करें और रूस जर्मन सेनाको रूसी पोलैण्डमें होकर जाने दे, तो सर्वथा नवीन परिस्थितियां उत्पन्न हो जायंगी।

वर्तमान युद्ध आरम्भ होनेपर बालकन प्रायद्वीपके सभी राष्ट्रोंने अपनेको युद्धसे तटस्थ घोषित किया। रूमानिया भी युद्धमें तटस्थ है और बराबर अपनी तटस्थताकी रक्षा कर रहा है। परन्तु फिर भी वह पूरे तौरपर निश्चिन्त नहीं है। इंगलैण्ड और फ्रान्स दोनों ही उसपर काफी दबाव डाल रहे हैं। विगत महायुद्धकी मित्रताकी याद दिलाकर अपने गुट्टमें शामिल होनेका आग्रह भी कर रहे हैं। उधर जर्मनी अलग दबाव डाल रहा है। रूससे वह स्वयं भयभीत हो रहा है। इधर जर्मनीने तटस्थ देशोंके साथ जैसा व्यवहार किया है, उससे रूमानियाकी स्थिति और भी नाजुक हो गयी है। परन्तु जर्मनीको एकदमसे रूमानिया रुष्ट भी नहीं करना चाहता। अभी पिछले दिनों जर्मनी और रूमानियामें फिरसे व्यापारिक सन्धि हुई है और इसके अनुसार रूमानियाने जर्मनी और जर्मनी द्वारा रक्षित राज्योंसे (पोलैण्डके अतिरिक्त) व्यापार करना स्वीकार किया है। इस सन्धिसे कुछ ही दिन पहले रूमानियाने अपने देशसे गेहूं बाहर भेजना बन्द करनेकी घोषणा की थी। इस सन्धिके अनुसार इस घोषणाके पूर्व जर्मनीको माल भेजनेके लिए जो कण्ट्रैक्ट हो चुके हैं, उनको पूरा करनेका आश्वासन दिया गया है।

रूमानिया, इसके अलावा भी अपनी देशी और विदेशी दोनों ही नीतियोंमें बड़ी सतर्कतासे काम ले रहा है। रूमानियाके विभिन्न राजनीतिक दलोंको सन्तुष्ट करके एक संयुक्त मोर्चा बनानेकी चेष्टा की जा रही है। और इसमें बहुत कुछ सफलता भी मिली है। इसके अतिरिक्त रूमानिया अपने पड़ोसियोंसे भी मैत्री पुष्ट करके पारस्परिक सहयोग और सद्भाव बढ़ानेकी चेष्टा कर रहा है। परन्तु आज यूरोपमें जो राजनीतिक एवं आर्थिक सङ्घर्ष हो रहा है, अपने-अपने स्वार्थोंके लिए, स्वाधीनताके नामपर जो खूंरेजी हो रही है, उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि आजके शान्त रूमानियामें किस दिन रणभेरी बज उठेगी।

अपने कविके प्रति

चुन लो मोती मानसके मेरे, ओ मञ्जुल कलहंस सखे !
यह जीवन रैन अंधेरी तुम श्रीमन्त नखत अवतंस सखे !

प्राणोंके प्यालेमें सुखकी दुखकी जो भरी गरल-हाला
तुम उसमें एक तरङ्ग लिये हो बुदबुद-मयी फेन-माला

साकी ! तेरे बिन मोल कौन, यह मिट्टीका प्याला रीता !
कोरे कागजका तन कैसे बनता शुचि रामायण-गीता !

मेरी पार्थिव लाचारीके तुम वियति-बिहारी पङ्ख सखे !
प्रभुके मुझ प्रेम-पुजारीके तुम नव ॐकारी शङ्ख सखे !

तुम उड़ो कनक-पञ्छी मेरे, इस गहन कुहासेसे ऊपर
सो रहे निराशामें अधीर कितने ये प्रात-विहग भूपर

कुहरान,—प्रातका पथ संवरा, यह वही धूल नभको घेरे
तुम वह खग बनो कुहासेमें जो नव प्रकाश हेरे टेरे !

उमड़ी यह गोल-गोल आंधी कम्पित हैं नगर गांव-खेरे
इस विश्व-विटपके जीर्ण-शीर्ण उड़ रहे पत्र पियरे-पियरे

उड़ रही छिपी स्वरमें इनकी नव जीवनकी बदली-कजली
तुम जान रहे कटनेपर ही फलती है संसृतिकी कदली

फिर क्यों उदास मेरे माली ! लू कौन न जिसमें नमी हुई
इस जगके आलवालमें कब नव-नव प्रवालकी कमी हुई !

प्रभुकी करुणामें अचल भक्ति-सी क्षितिमें छांह उछाह-भरी—
जो ग्रीष्म दुरन्त ज्वलन्त अग्निकी सेज चढ़ो भी हरी-भरी

उन तपस्विनी दूबोंकी बन तू शीतल सुन्दर शाख सखे !
बन जगकी संसृति-शकुन्तलाको ढकनेवाले पांख सखे !

कल जिनका तुङ्ग गरूर-श्रृङ्ग नभको लज्जित करते देखा
प्रभुताकी स्वर्ण-तरीपर चढ़ उदयास्त जिन्हें तिरते देखा

अब गिरी गाज सुध-बुध उन नीरी-जारोंको खोते देखा
सच कहो परन्तु कभी फूलोंको भी तुमने रोते देखा ?

जब खड़ी विश्वपतिके आंगन यह प्रकृति-उर्वशी-सी दासी
बर्बर कर सकते ध्वस्त कभी क्या मानवकी मथुरा-काशी ?

तुझको निदेश उस चिर सुन्दरका गुञ्जित करो दिगन्त सखे !
तुम कोकिल अमर अजर यह प्रभुका पावन सृष्टि वसन्त सखे !

—केसरी ।

अपहृत हिन्दू नारियोंकी समस्या

श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

आंसुओंकी धारामें विश्वकी जितनी पीड़ायें पाली जाती हैं, उनमें सबसे अधिक तीव्र एवं मर्मभेदी उन अभागिनी नारियोंकी अश्रुधारामें बसती हैं, जो मानव-समाज और विशेषकर पुरुष-समाजके निष्ठुर अत्याचारोंके द्वारा, केवल अपने गृहोंसे ही नहीं, वरन् अपने समस्त सुखों और उन सुखोंकी कोमल स्मृतियोंसे अपहृत हैं। श्रीयुत जयकरने अपने एक वक्तव्यमें बताया था कि हमारे देशमें भगायी जानेवाली हिन्दू युवतियों और बालिकाओंकी संख्या औसतन् प्रति-दिन ११ है और जिनका पता नहीं लगता, उनकी संख्या अज्ञात है। यही कारण है कि प्रतिदिन हमें समाचार-पत्रोंमें इस प्रकारकी एक-दो घटनाओंका रोमाञ्चकारी वर्णन पढ़नेको मिलता है। प्रतिदिन ११ हिन्दू युवतियोंका अपहरण, और प्रत्येकके साथ अपना-अपना अन्याय, अत्याचार और हमारी निर्बलताकी करुण कथा एक ऐसी क्रूर वस्तुस्थिति है, जिसके प्रति कभी-कभी निराशाजनक उदासीनताका अनुभव किये बिना कोई नहीं रह सकता।

किन्तु नारी-अपहरणका स्त्री-मनोविज्ञानसे बहुत अधिक सम्बन्ध है। इस शास्त्रकी उपेक्षा करके हम इस सामाजिक व्याधिसे मुक्त नहीं हो सकते। प्रकृतिने स्त्रियों और पुरुषोंमें स्त्री-प्रवृत्ति इतनी प्रबल रखी है कि कड़े धार्मिक अनुशासनों और कठोर राजनैतिक दण्डोंके होते हुए भी जब-जब उनको आपसमें अमर्यादित रूपसे मिलने-जुलनेका अवसर मिलेगा, वे निश्चय ही सभी मर्यादाओं और बाधाओंको कुचलकर मनोविकारोंका शिकार हो जायंगे। यह किसी एक देश, किसी एक जाति या किसी एक युगकी बात नहीं है। आज होता है और आगे भी होता रहेगा। मानव-प्रकृति ही कुछ इस तरहकी बनी है। यद्यपि हम इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकते कि भारत तथा अन्य देशोंमें नारी-अपहरणकी समस्याओंके भीतर भिन्न-भिन्न कारण और पृथक्-पृथक् शक्तियां काम कर रही हैं; पर कारण और शक्तियोंकी भिन्नतासे परि-णाममें कोई अन्तर नहीं आता। जिस प्रकार भारतमें, ठीक उसी प्रकार यूरोप तथा अमेरिकामें अपहृत नारियोंका जीवन असह्य एवं दूभर है तथा वेश्यालयों अथवा इस प्रकारके अन्य विलासितापूर्ण पाप और व्यभिचारके अड्डोंके आडम्बर-पूर्ण जीवनमें सदैव उनके हृदयोंसे यौन-निःश्वास निर्गत होते हैं।

कुछ दिन पूर्व इस बातका अनुमान किया गया था कि केवल इंगलैण्ड तथा वेल्स प्रान्तोंसे ही प्रति वर्ष कमसे कम पचास सहस्र युवतियां उड़ायी जाती हैं। जिस दायित्वपूर्ण अंगरेजी पत्रमें मैंने यह बात पढ़ी है, उसीमें आगे इस प्रकार लिखा है:—

"इन भगायी गयी बालिकाओंमें अधिकांशके सम्बन्धमें बिलकुल ही पता नहीं लगता। परन्तु कभी-कभी कुछ सनसनी-पूर्ण घटनाओंसे उन युवतियोंमें एक बड़ी संख्याका भाग्य सुस्पष्ट रूपसे प्रकट हो जाता है।"

यह तो रही ब्रिटेन-जैसे सभ्य एवं उन्नतिशील राष्ट्रकी बात। मिस मेयोकी जन्म-भूमि अमेरिकाकी भयानकताका अनुमान करना कठिन है। अभी कुछ दिन पूर्व संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके पेन्सिल्वेनिया नामक राष्ट्रमें नारी-अपहरणके केवल एक दृष्टान्तकी चर्चा पत्रोंमें इस प्रकार प्रकाशित हुई थी:—

"पेन्सिल्वेनियाके छोटे और बड़े व्यावसायिक नगरोंकी सुन्दर पुत्रियोंकी मातायें सदा उन श्वेतदस्युओंके भयमें रहती हैं, जो तरुणियोंको बलपूर्वक कैद कर मोटरोंमें ले भागते हैं।"

दर्जनों तरुणियोंने इस प्रकारकी घटनाओंके भयानक वृत्तान्त पुलिससे कहे हैं। वे सभी ऐसे पुरुषों द्वारा सड़कोंपरसे भी गयीं और उन्होंने उन्हें न्यूयार्कमें सिनेमाकी अच्छी नौकरियां देनेका वचन दिया। जेजी वाल्टरसन नामक एक पन्द्रह वर्षीया बालिकाने पुलिसके सामने अपना बयान देते हुए कहा कि जब दो पुरुषोंने उसे 'स्टेज' में अच्छी नौकरी दिलानेका वचन दिया और जब उसने उसे अस्वीकार कर दिया, तो वे दोनों पुरुष उसे बलपूर्वक घसीटकर अपनी मोटरमें ले गये, पर किसी प्रकार बड़े

प्रयत्नोंके साथ वह अपनेको उनके चंगुलसे मुक्त कर सकी।

× × ×

मुसलमानोंमें अपहरणकी घटनायें कुछ कम नहीं हैं। मनुष्य-प्रकृति सर्वत्र एक-सी है। लेकिन वर्तमान हिन्दू-समाज और मुसलिम और क्रिश्चियन समाजमें अन्तर है। उन समाजोंमें नारी-अपहरणसे थोड़ी-सी सामाजिक अशान्तिके सिवा और कोई बड़ी हानि नहीं होती। परन्तु हिन्दू नारीका अपहरण हिन्दू-समाजकी घोर हानि ही नहीं, वरन् एक प्रकारसे उसकी मृत्यु है। मुसलमान स्त्री अपहृत होनेपर भी मुसलमान ही रहती है। वह हिन्दू बनकर हिन्दू धर्ममें खप नहीं सकती। भारतमें हिन्दू और मुसलमान इकट्ठे रहते हैं। इसलिए उनका एक-दूसरेकी स्त्रियोंको भगाना बहुत साधारण-सी बात है। कड़े सामाजिक बन्धन, धार्मिक भय और राजदण्डका शासन इसे किसी बड़ी हद तक रोक नहीं सकता। भारतीय अमेरिका और यूरोपसे गोरी स्त्रियां लाते हैं। अमेरिकामें निग्रो लोगोंसे इतनी घृणा होते हुए भी वहां गोरा और काला रक्त मिल ही जाता है। तिलक-धारी पण्डितोंका मुसलमानिनों और भङ्गिनोंसे सम्बन्ध हो ही जाता है। मनुष्यकी प्रवृत्ति ही ऐसी है। वासनाका वेग सभी बन्धनोंको तोड़ डालता है। कहनेका आशय यह कि यह दुष्कृत्य पूर्णरूपसे बन्द नहीं हो सकता। हां, इसका मर्यादासे अधिक बढ़ जाना खतरनाक है। हिन्दुओंके लिए इस ओर ध्यान देना आवश्यक है, नहीं तो उनका राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक पतन निश्चित है। तो फिर करना क्या चाहिए?

इसमें सन्देह नहीं कि अनमेल विवाह, विधवा विवाह-का निषेध सासोंका बहुओंके साथ दुर्व्यवहार और पतियोंका पत्नियोंको अपने पिताके यहांसे रुपये लानेके लिए तङ्ग करना आदि बहुत-सी कुरीतियोंसे दुखी होकर भी कुछ स्त्रियां घरसे भाग जाती हैं और इन कुरीतियोंकी जितनी जल्दी हो सके, रोक-थाम होनी चाहिए। परन्तु ये बुराइयां कुछ ऐसी नहीं, जो केवल हिन्दू-समाजमें ही हों। मुसलमानोंमें यह दुर्गुण हिन्दुओंसे कम नहीं है। मुसलमानोंमें भी सैयद और राज-पूत-जैसी कई जातियां विधवाओंका विवाह नहीं करतीं। परन्तु हिन्दुओंमें एक और बड़ी खराबी फैल रही है। हमारे कुछ पत्र और पत्रिकायें हिन्दू स्त्रियोंके सामने हिन्दू समाजका ऐसा वीभत्स चित्र अङ्कित करती हैं, मानो समस्त दुनियाकी क्रूरता, नृशंसता, अन्याय-व्यभिचार सब हिन्दुओंमें ही पुञ्जीभूत हो रहा है और हिन्दू स्त्रियोंपर बहुत बड़ा अत्या-चार हो रहा है। इसका कुफल यह होता है कि हमारी अनुभवहीन, कच्ची अक्लकी भावुक लड़कियोंमें व्यर्थ ही हिन्दू पुरुषोंके प्रति घृणा उत्पन्न होती है और वे मुसलिम आदि दूसरे समाजोंको, जिनका उन्हें ज्ञान नहीं होता, अच्छा समझने लग जाती हैं और जरा-सा भी बहाना मिलनेपर भाग जाती हैं, पीछेसे चाहे उन्हें अपनी भूलपर रोना ही पड़े। मैं अभिमानके साथ कह सकता हूं कि इस गये-बीते समयमें भी हिन्दूके समान स्त्रीका सम्मान करनेवाला, पत्नी-भक्त और प्रेमी पति दूसरा कोई नहीं है। हिन्दू पत्नी अब भी अपने घरकी रानी है। हिन्दुओंमें बहुविवाहकी मनाही न होते हुए भी एक ही विवाहकी प्रथा है। हजारमें एकाध यदि दूसरा विवाह करता भी है, तो वह बहुत ही लाचारीकी हालतमें। परन्तु मुसलमानोंमें यह आम रिवाज है। हालमें उनकी एक पत्रिकामें एक शिकायत छपी थी कि आजकल मुसलमान गैर-मुसलमान बनने लगे हैं; क्योंकि वे अपनी लड़कीका सम्बन्ध करनेके पूर्व पूछने लगे हैं कि पुरुषके पहले-की कोई स्त्री तो मौजूद नहीं। मुसलमान स्त्रियां अपने पतियों-से इतनी तङ्ग हैं कि यदि हिन्दू पुरुष उन्हें ग्रहण करना चाहें, तो वे सहर्ष उनके साथ विवाह करनेको तैयार हो जायं। वे अपनी हिन्दू बहनोंकी स्वतन्त्रताको ईर्ष्याकी नजरसे देखती हैं। पर बेचारी करें क्या, विवश हैं। पिछले दिनों पञ्जाबकी मुसलमान स्त्रियोंमें एक लहर-सी बह चली थी। वे ईसाई होकर तलाक प्राप्त कर लेती थीं और अपने अत्याचारी मुसलिम पतिसे छुटकारा पाकर किसी दूसरेसे विवाह कर लेती थीं। इसपर मुसलिम समाज बहुत चिन्तित हो गया था। अब भी मुसलमान देवियोंको अपने छुटकारेके लिए इसी उपायका अवलम्बन करना पड़ता है।

मैं अपने अनुभवसे कहता हूं कि जितनी हिन्दू स्त्रियां भागकर मुसलमानोंमें जाती हैं, उनमेंसे अधिकांश पीछेसे बहुत ही पछताती हैं। परन्तु रोने-पीटने, चीखने-चिल्लानेके सिवा फिर वे अपनी मुक्तिका कोई उपाय नहीं कर सकतीं। वे कैदियोंकी तरह चहारदीवारीमें बन्द कर दी जाती हैं। पर्दे-

के अन्दर कैद हो जानेसे बाहर वे संसारको अपना दुख-दर्द नहीं सुना सकतीं और भीतर ही भीतर घुल-घुलकर मर जाती हैं।

मनु आदिने जो यह लिखा है कि बचपनमें पिता, जवानीमें पति और बुढ़ापेमें पुत्र स्त्रीकी रक्षा करें, स्त्री अरक्षित कभी न रहे, यह स्त्री जातिपर कोई लाञ्छन नहीं है, वरन् उसकी प्रकृतिका गम्भीर अध्ययन करके निकाला हुआ एक तथ्य है। इसकी अवहेलना करनेसे स्त्री और पुरुष दोनों जातियोंका अपकार होता है।

मनुने लिखा हैः—

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः
रूपं वा निरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते।
पौश्चल्याच्चलं चित्ताच्च नैःस्नेह्याच्च स्वभावतः
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते।
एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापति निसर्गगम्
परमं यत्न मातिष्ठेत् पुरुषो रक्षणं प्रति।

—स्त्रियां न पुरुषकी सुन्दरताको परखती हैं, न उसकी आयुको देखती हैं, चाहे सुन्दर हो या असुन्दर, वे पुरुषमें लिप्त हो जाती हैं। प्रजापतिने स्त्रियोंका स्वभाव ही ऐसा बनाया है, इसलिए पुरुषोंको चाहिए कि बड़े यत्नसे स्त्रियोंकी रक्षा करें।

स्त्रियोंकी झूठी चापलूसी करके उनको प्रसन्न करनेवाले, हर बातमें स्त्री और पुरुषको बराबर माननेवाले और भारतवर्षमें रहते हुए भी अपनेको इंगलैण्डमें समझनेवाले, हिन्दू ऊपर लिखी हुई सम्मतिके लिए मनु और उसके साथ ही शायद मुझे भी बुरा-भला कहें; परन्तु अनुभव बताता है कि मनुकी बात सत्य है। जो भी व्यक्ति इसकी अवहेलना करता है, उसे पीछे रोना ही पड़ता है।

जहां-जहां भी स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता और पुरुषऔर स्त्रीकी समानताके नामपर स्वच्छन्दता की गयी है, वहां पश्चात्ताप करनेके सिवा और कुछ भी परिणाम नहीं हुआ है।

× × ×

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जिस प्रकार मुसलिम स्त्रीकी रक्षाके लिए मुसलमान लोग पल-भरमें हजारोंकी संख्यामें एकत्र हो जाते हैं और अदालत और पुलिसकी भी परवाह न करके उसे छीन ले जाते हैं, वैसे हिन्दू बिलकुल नहीं करते। ऐसे अवसरोंपर हिन्दू युवक दुम दबाकर भाग जाते हैं या हिन्दू स्त्रीको सङ्कटमें देखकर भी पास खड़े हंसते रहते हैं। वास्तवमें देखा जाय, तो इसमें युवकोंका उतना दोष नहीं। उनकी कायरता और दुर्बलताका मूल कारण हिन्दुओंकी वर्णव्यवस्था है। एक मुसलमान अपनेको एक बड़ी भारी जातिका एक अङ्ग अनुभव करता है। वह समझता है कि सात करोड़ मुसलमान उसके भाई हैं, विपत्तिमें वे उसकी सहायता करेंगे। इसलिए वह अपनेको एक नहीं, सात करोड़ समझता है। इसके विपरीत हिन्दू अपनेको अकेला समझता है। उसने कभी २३ करोड़को अपना भाई समझा ही नहीं। वह तो अपनेको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चमार या कहार समझता है, हिन्दू नहीं। हिन्दूका भाईचारा केवल उसकी अपनी ही छोटी-सी बिरादरी है। इसलिए लड़ाई-झगड़ेके मौकेपर वह अपनेको अकेला और कमजोर पाता है और जान बचाकर भागता है।

यदि आज हमारे युवकोंमें जातीय अभिमान व आत्मगौरवकी भावनायें तथा युवकोचित साहसकी कमी न होती, तो हमें हिन्दू नारियोंकी यह दुर्गति कभी भी देखनेको न मिलती। इसके विपरीत हमारे अधिकांश नवयुवक एक ऐसी लज्जाजनक मनोवृत्तिके शिकार हो रहे हैं, जिसके कारण इस जातीय अपमानका विरोध करनेके स्थानमें वे उसके उत्साहित करनेके कारण बन रहे हैं। जिन घटनाओंको देखकर प्रत्येक हिन्दूका रक्त खौल उठना चाहिए, अपने तथा अपनी जातिका कलङ्क व अपमान समझकर जिन घटनाओंको बन्द करनेके लिए, प्रत्येक हिन्दूको अपने प्राण तक अर्पण करनेमें सङ्कोच नहीं होना चाहिए, उन्हीं लज्जाजनक घटनाओंका रोमाञ्चकारी वर्णन सुनकर हमारे कानोंपर जूं तक नहीं रेंगती। अन्य जातियोंके उदाहरण हमारे सामने हैं। अंगरेज युवतियां स्वतन्त्रतापूर्वक चाहे जहां घूमती हैं, उनकी ओर आंख उठाने तकका साहस किसीको नहीं होता। अभी तक वह घटना भूली नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व किसी अंगरेज युवतीको सीमाप्रान्तके पठान भगा ले गये थे, जिससे समस्त ब्रिटिश साम्राज्य दहल गया था। और जब तक लड़की वापस नहीं मिली, तब तक अंगरेजोंने चैन नहीं लिया। अभी कुछ दिन पूर्व एक मुसलमान घरानेकी युवा लड़कीने सजातीय गुण्डों द्वारा पीड़ित होकर एक आर्य

अनाथालयकी शरण ली। उसने अदालत व पुलिसके सामने स्पष्ट कहा था कि वह बालिग है तथा उसने अपनी इच्छासे ही उस मार्गका अनुसरण किया था। अब वह किसी अवस्थामें भी लौटकर अपने घर नहीं जाना चाहती। दूसरे दिन लड़की खुली अदालतमें बयान तक न दे सकी। हजारों उत्तेजित मुसलमान लठैत अदालतको चारों ओरसे घेरे खड़े थे। उनका कहना था कि अदालत व लड़की चाहे जो कहे, लेकिन हम लोग लड़कीको लिये बिना नहीं लौटेंगे। आखिर मजबूरन् लड़की मुसलमानोंके हवाले कर दी गयी। क्या कभी किसी हिन्दू युवतीके लिए हिन्दुओंने भी ऐसा जाति-प्रेम दिखाया है?

हमारी नयी रोशनीके बाबू लोग जो हिन्दू स्त्रियोंको उलाहना दिया करते हैं कि वे अंगरेज स्त्रियोंकी तरह स्वतन्त्रतापूर्वक अकेली क्यों नहीं घूमतीं, डरती क्यों हैं, उन्हें गुण्डोंका मुकाबला करना चाहिए। वे यह नहीं सोचते कि अंगरेज स्त्रियोंकी निडरता उनके व्यक्तिगत शारीरिक बलमें नहीं, वरन् उनकी जातिके सामूहिक बलमें है, जिसको वर्णव्यवस्थाने हिन्दुओंमेंसे बिलकुल नष्ट कर दिया है। यदि नारीके पीछे उसकी रक्षा करनेवाला समाजका सामूहिक बल न हो, तो वह अकेली कुछ भी नहीं कर सकती।

इसलिए स्पष्ट है कि हिन्दू स्त्रियोंका अपहरण बन्द करनेके लिए हिन्दुओंकी जाति-पांतिका विध्वंस करके उनकी मनोवृत्तिको बदलनेकी जरूरत है। यदि गुण्डों-बदमाशोंको यह विश्वास हो जाय कि हिन्दू युवतियोंको भगाना खतरेसे खाली नहीं है, तो वे ऐसा दुस्साहस न कर सकेंगे। अभी तक वे हिन्दू स्त्रियोंको पञ्चायती हलवा समझते हैं। वे जानते हैं कि उनको हाथ लगाते ही उनपर उनका जन्मसिद्ध अधिकार हो जाता है। वे जानते हैं कि हिन्दुओंमें विरोध करनेका साहस नहीं है।

आकांक्षा

विकल मानवके उरका सिन्धु
लहरियों-सी उसमें दिन-रात
नाचती आकांक्षायें मौन
साथ मिल ज्ञात और अज्ञात!

किया इसने निर्मित अभिराम
कुसुम कण्टकमय पथपर जाल,
निराशा-आशा-फलसे युक्त
करी इसने जीवन-तरु-डाल!

जगत्के मरुथलमें विस्तीर्ण
हमारा जीवन-मार्ग अछोर
यहां बन मृग-जल-सी यह क्रूर
हमें भटकाती है निशि भोर।

बिना आकांक्षा जीवन-स्रोत
कहांसे पायेगा गति गान?
बिना आकांक्षा ध्येयकी ओर
बढ़ेगा कैसे जीवन-यान?

कभी उठ असित घटा-सी शीघ्र
विहंसते मानसमें चुपचाप
बनाती अश्रु-वृष्टिको फैल
हृदयकी पीड़ाओंकी भाप!

अरे यह मानवको अभिशाप
अरे यह मानवको वरदान—
संभाले विह्वल उरका भार
बढ़े वह निज पथपर अविराम!

—व्रजमोहन गुप्त।

मजदूरोंकी कुछ समस्यायें

श्री विनयकुमार

भारतके मजदूर-आन्दोलनकी प्रगतिपर विचार करनेके बाद कोई इस निर्णयपर पहुंच बिना नहीं रह सकता कि भारतमें मजदूर-आन्दोलन अभी काफी कमजोर है, इसीलिए उनकी मांगोंकी उपेक्षा की जाती है। बम्बईकी कपड़ेकी मिलोंमें अभीकी हड़ताल और उसका जिस रूपमें अन्त हुआ, वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। लाभका सारा अंश हजम कर जानेकी प्रवृत्तिको रोकने और देशमें नवीन आर्थिक प्रणालीकी स्थापनाकी समस्या देशके अर्थ एवं समाज-शास्त्रियोंके सम्मुख है। मजदूर-आन्दोलनका यह एक ऐसा पहलू है, जिसका उत्तरदायित्व मजदूरों और मिल-मालिकोंको छोड़कर अन्योंपर भी है। कितनी ही हड़तालें मजदूर करें अथवा पूंजीपति कितनी ही उदारता दिखायें, इस आन्दोलनकी विशुद्ध आर्थिक समस्याका हल कर सकना उनके लिए कठिन है। पर इन आर्थिक समस्याओंके अतिरिक्त कुछ ऐसी समस्यायें भी हैं, जो मजदूरोंको पशुवत् जीवन व्यतीत करनेको बाध्य करती हैं और यदि पूंजीपति और मजदूर नेता चाहें, तो बिना किसी प्रकारके सङ्घर्षके उनका सरलतासे हल कर सकते हैं।

विशुद्ध आर्थिक समस्याओंमें मजदूरोंकी इन अवस्थाओंपर भी विचार किया जाना चाहिए :—(१) मजदूरीमें वृद्धि, (२) मजदूरोंके लिए प्राविडेण्ट फण्ड एवं दुर्घटना आदिके समयकी क्षतिकी पूर्ति और (३) सवेतन छुट्टियां।

यदि हम यह कह दें कि भारतमें आजका मजदूर-आन्दोलन आर्थिक समस्याके इन्हीं अङ्गोंके पूर्त्यर्थ है, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। भारत संसारमें एक ऐसा देश है, जहां चीनको छोड़कर सबसे कम मजदूरी मजदूरोंको मिलती है। सरकारकी ओरसे ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जो मजदूरीकी कमसे कम दर नियत कर सके।

मजदूरोंकी आर्थिक समस्याओंके हल करनेको महत्त्वपूर्ण आन्दोलन हुए हैं और होते रहते हैं। उनमें जितनी शक्तिका व्यय होता है, उतनी सफलता नहीं मिलती। इसके अनेक कारण हैं। इन विशुद्ध आर्थिक समस्याओंके अतिरिक्त मजदूर-आन्दोलनकी कुछ ऐसी समस्यायें भी हैं, जिनका उद्गम यद्यपि अर्थसे है, तथापि उन्हें इस आन्दोलनकी नैतिक समस्यायें कहना अधिक उपयुक्त होगा। इनके विषयमें न तो मजदूर नेताओंने कोई महत्त्वपूर्ण आन्दोलन किया है, न मजदूरोंने स्वयं ही बहुत अनुभव किया है। वर्तमान मजदूर नेताओंके इन समस्याओंको हाथमें न लेने और महत्त्व न देनेका कारण यह है कि किसी भी पहलूको वे अर्थकी अथवा राजकीय दृष्टिसे ही देखते हैं, नैतिक दृष्टिसे नहीं। इतना सब होनेपर भी यह कहना न होगा कि ये गैर-आर्थिक समस्यायें मजदूरोंकी वर्तमान दुरवस्थाके महत्त्वपूर्ण कारण हैं। उन समस्याओंमें ये मुख्य हैं—(१) मजदूरोंकी भर्ती, (२) ऋणका बोझ।

मजदूरोंकी भर्ती

पूर्व इतिहास—भारतमें कारखानों, खदानों व अन्य स्थानोंमें मजदूरोंकी भर्तीकी वर्तमान प्रणाली आजसे एक शताब्दीसे भी पूर्वसे प्रचलित उस बर्बर कुली-प्रथाका परिवर्तनमात्र है, जिसके द्वारा विदेशी कम्पनियां भोले-भाले गरीब भारतीयोंको अनेक प्रकारके लालच देकर मजदूरोंके रूपमें भर्ती कर विदेशोंमें खेतीके कामके लिए ले जाती थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके भारतमें आनेके बाद सन् १८३६ में यह कुली-प्रथा—शर्तबन्दी मजदूरी—कानूनन् जायज कर दी गयी। मजदूरोंकी भर्तीकी इस प्रथाको ('Indentured Labour') 'शर्तबन्दी मजदूरी' प्रथा कहते थे। इस प्रथाका उल्लेख सरकारी रिपोर्टोंमें निम्न प्रकार है :—

"उपनिवेशोंकी सरकारें भारतके मुख्य शहरोंमें अपने एजेण्ट नियुक्त करती थीं, जो मजदूर भर्ती करनेवालोंको नौकर रखते थे। ये नौकर, लोगोंको मजदूर बनकर विदेश जानेको तैयार करते थे और मजिस्ट्रेटके सामने ले जाकर रजिस्टरमें नाम लिखवा देते थे। वे मजदूर बम्बई, कलकत्ता अथवा मद्रास ले जाये जाते थे और वहां एजेण्टोंकी स्वयंकी निगरानीमें रखे जाते थे।"

उपर्युक्त प्रणालीके विषयमें स्व० श्री सी० एफ० एण्डरूज-

ने अपनी "इण्डिया एण्ड पेसिफिक" नामक पुस्तकमें जो लिखा है, वह इस प्रथाकी बर्बरता और पाशविकताके दिग्दर्शनके लिए यथेष्ट है :—

"भारतमें मजदूरोंकी भर्तीकी वह सम्पूर्ण प्रथा बहुत बदनाम थी, क्योंकि मजदूर भरती करनेवाले (दलाल) अपने उद्देश्यके पूर्त्यर्थ सब नीच उपायोंका अवलम्बन करते थे और जब एक जिला (जहां वे भरतीका काम करते थे) उनके विरुद्ध बगावत कर देता था, तो वे दूसरे जिलेमें प्रवेश करते थे।" आगे वे लिखते हैं :—

"शर्तबन्दी मजदूर-प्रथाके अन्तर्गत गरीब ग्रामीण मजदूरोंकी दशा अत्यधिक करुणाजनक थी। इस प्रथाके अन्तर्गत काम करनेवाले ग्रामीण मजदूरोंमें आत्महत्याकी संख्या इसका ज्वलन्त प्रमाण है। क्योंकि भारतीय ग्रामोंमें आत्महत्या प्रायः नहीं-सी है।"

भारतीय मजदूरोंको विदेशोंमें गुलाम बनाकर भेजनेकी उपर्युक्त प्रणालीमें सन् १८८३ में कुछ परिवर्तन किया गया था, पर पूर्णरूपेण यह प्रणाली सन् १९२० में बन्द की गयी थी। आज भारतमें भिन्न-भिन्न कारखानों अथवा खदानों या चायकी खेती आदिमें मजदूरोंकी जो भर्ती की जाती है, वहां यद्यपि उपर्युक्त प्रणाली अपने प्रारम्भिक रूपमें नहीं है, पर उसके मूल दो सिद्धान्तों—(१) दलालों द्वारा भर्ती और (२) शर्तबन्दी—मेंसे प्रथम आधारको तो सर्वत्र काममें लाया ही जाता है और आसाम प्रान्तमें तो यूरोपियन कम्पनियों द्वारा की जानेवाली चायकी खेतियोंमें उस पुरानी प्रणालीके दोनों सिद्धान्त आज भी अधिकांश रूपमें काममें लाये जाते हैं।

खदानों, कारखानों अथवा चाय आदिकी खेतीके मालिक मजदूरोंकी भर्ती करनेके लिए ठेकेदार रखते हैं। ये ठेकेदार गांव-गांवमें घूमते हैं और ग्रामीणोंकी गरीबी और कर्ज-समस्याका अनुचित लाभ उठाकर उन्हें शहरकी चटकीली-भड़कीली बातों और अधिक मजदूरीका लालच देकर भर्ती कर लेते हैं। यह ठीक है कि गांवोंकी अपेक्षा उन्हें शहरोंमें अधिक मजदूरी मिलती है, पर उन गरीबोंको शहरके खर्चीले रहन-सहनका कुछ भी ज्ञान नहीं होता। ठेकेदार अनेक स्थानोंपर उन भावी मजदूरोंको स्वयं कर्ज देकर उनका पिछला कर्ज भी चुका देता है। इस प्रकार दिये गये ऋणको ब्याज सहित वसूल करनेमें बादमें वह जिस निर्दयतासे काम लेता है, वह हृदयको हिला देनेवाली है। इस तरह जो ठेकेदार होता है, उसके दो धन्धे चलते हैं। प्रथम कम्पनीके मालिकसे प्रति मजदूर पीछे दलाली मिल जाती है और इधर मजदूरोंके साथ उनका लेन-देनका व्यापार भी बहुत अच्छी तरहसे चलता है। गरीब देहाती अधिक सुखकी आशासे दलालोंके फन्देमें फंसकर शहरमें आ जाता है और पूरा जीवन केवल उस दलाल द्वारा दिये गये ऋणको ही चुकानेमें व्यतीत कर देता है। इस विषयमें पाठक अन्यत्र दिये गये उदाहरणसे मेरे कथनकी सचाईको जान सकेंगे।

भारतीय मिलोंमें मजदूरोंकी भर्ती 'जाबर' लोग किया करते हैं। उसीके अधीन मजदूर रखने या अलग करनेका काम होता है। वह मजदूर भरती करते समय मजदूरोंसे अपनी पूरी दलाली वसूल करता है। अनेक स्थानोंपर तो जाबर लोग अपनी एक निश्चित दर बना लेते हैं। प्रति मजदूर पीछे उसे १०), १५) या २०) तक मिल जाता है। यदि उसे इकट्ठे १००), २००) की आवश्यकता हो, तो वह १०, १५ मजदूरोंको किसी न किसी बहाने नौकरीसे अलग कर देता है और दूसरे मजदूरोंकी भरतीके समय अपनी मनोवाञ्छित रकम उनसे प्राप्त कर ले सकता है। इस विषयमें श्री जान गुन्थरने अपनी पुस्तक 'इनसाइड एशिया' (Inside Asia) में एक अच्छा उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं :—

"मान लीजिये, आपको नौकरी चाहिए। आप जाबरके पास गये। जाबर आपसे इस प्रकार नौकरी दिलानेके लिए कुछ इनाम चाहेगा। कानपुरमें साधारणतः जाबर २०) लेता है। आपके पास २०) नहीं हैं। परन्तु यह पारितोषिक काम मिलनेके लिए आवश्यक है। अतः आपने २०) उसी जाबरसे उधार ले लिये, जो कि लेन-देनका व्यवसाय भी करता है। उसके बाद आपको खानेके लिए भी कम्पनीके भण्डारसे क्रेडिटपर मिल जायगा, क्योंकि वही जाबर स्टोरकीपर भी है। ब्याजकी साधारण दर दोअन्नी रुपया मासिक है, जो करीब १५०) सैकड़ा होता है। जाबर यह कभी नहीं चाहेगा कि आप उसका कर्ज चुका दें। वह ब्याजपर ही धनवान होता जाता है।" (पृष्ठ ४२९-३०)

भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें खदानोंमें मजदूरोंकी भर्तीके

भिन्न-भिन्न तरीके हैं। बिहार और उड़ीसामें मजदूरोंकी भरती करनेके लिए सरदार होते हैं। ये सरदार ग्रामोंमें घूम-घूमकर मजदूर इकट्ठा करते हैं। इस प्रकार वह सरदार जिन मजदूरोंको इकट्ठा करता है, उन्हींका वह सरदार बन जाता है। उसीके अधीन वे मजदूर काम करते हैं। इस प्रकार मजदूर भरती करनेके लिए उस सरदारकी आवश्यकतानुसार ८), १०) और १२) तक भी प्रति मजदूरके लिए एडव्हान्स दिया जाता है। इसके सिवा कम्पनियोंसे उसे वेतन या दलाली और मिलती है।

मध्यभारतमें दो, तीन और चार पैसे तक प्रति सप्ताह प्रति मजदूरको उस मुकद्दमको देना होता है, जो उन्हें भरती करता है। आसाममें यूरोपियन कम्पनियोंकी चायकी खेतियोंमें अभी तक भी शर्तबन्दी मजदूरी किसी न किसी रूपमें चलती है। २४ मई सन् १९२९ ब्रिटिश गवर्नमेण्टने एक शाही कमीशनकी नियुक्ति की थी। इस कमीशनने आसामके चायके बगीचोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी इस शर्तबन्दी मजदूरी-प्रणालीकी जांच कर कुछ सूचनायें दी थीं और उन्हीं सूचनाओंके आधारपर भारत-सरकारने मार्च सन् १९३२ में केन्द्रीय धारा-सभामें एक बिल पेश किया, जो पास होकर अप्रैल सन् १९३३ में अमलमें लाया गया। उक्त कानूनके अनुसार—

(१) लायसन्सशुदा सरदार ही मजदूरोंको भरती करनेका काम कर सकते थे।

(२) १६ वर्षकी अवस्थासे कमके बालक जब तक कि उनके माता-पिता साथ न रहें, भरती नहीं किये जा सकते।

(३) जो मजदूर बाहरसे काम करनेके लिए लाये जाते हैं, उन्हें तीन वर्षके पश्चात् अपने घरोंको जानेका पूरा अधिकार होगा।

(४) तीन वर्षके भीतर भी मजदूर अपने घरको लौट सकेगा, यदि यह बात 'सिद्ध' कर दी जायगी कि उसे कम्पनीकी या व्यक्तिकी ओरसे उचित काम नहीं दिया जाता अथवा उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता अथवा उसकी मजदूरी नियमपूर्वक नहीं दी जाती।

(५) इसके सिवा मजदूरको कानूनन् कभी भी लौटनेका अधिकार है, यदि ठेकेदार अथवा मालिक मजदूरसे मार-पिटाई करे।

कानूनकी उपर्युक्त धाराओंसे यह प्रतीत होता है कि आसाममें अभी भी वह बर्बर शर्तबन्दी मजदूर-प्रथा प्रचलित है, जिसके विषयमें स्व० गोखलेने कहा था कि "यह प्रथा स्वतः अन्यायपूर्ण है, छल-कपटकी नींवपर स्थित है और बल द्वारा इसका सञ्चालन होता है।"

आसाममें मजदूर-प्रथाके लिए उक्त कानून है। आसामके चायके बगीचोंमें काम करनेवाले मजदूरोंपर होनेवाले अत्याचार भारत-प्रसिद्ध हैं। कानून उस प्रथामें और अधिक बुराइयोंको रोकनेके लिए है, न कि प्रणालीको बदलनेके लिए। गरीब मजदूरके लिए, जिसके पास खानेको पैसा नहीं होता, जो ठेकेदारोंके कर्जसे दबा होता है, यह सम्भव ही नहीं है कि वह कानूनकी शरण लेकर किसी अन्यायको 'सिद्ध' कर, अपने अधिकारोंकी रक्षा कर अपने घर सुरक्षित लौट सके। तीन वर्षके भीतर तो क्या, उसके बाद भी कर्जसे दबे होनेके कारण उन्हें वहीं पशुवत् जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। सन् १९३१-३२ के तद्विषयक अङ्कोंसे प्रतीत होता है कि उस वर्षमें ५०००० से भी अधिक मजदूर आसाममें भरती किये गये और करीब ७५ ठेकेदारोंपर मजदूरोंकी भरती करनेमें अन्याय और अत्याचार करनेके कारण मुकदमे चलाये गये। इन प्रकट मामलोंके अतिरिक्त अप्रकट अनेक अत्याचार होते हैं, जो कानूनकी दृष्टिसे किसी प्रकार बच जाते हैं। मजदूरोंकी भरतीकी यह प्रणाली सिद्धान्ततः ही पाशविक और अनुचित है। उक्त प्रथाके विषयमें श्री सी० एफ० एण्डरूजके ये शब्द हमारे कर्तव्यकी ओर स्पष्ट सङ्केत करते हैं कि "यदि भारतवर्षके शुभ नामको अधिक कलङ्कित होनेसे बचाना हो, तो यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इस भ्रष्ट प्रथाको अब एक दिन भी कायम नहीं रखना चाहिए।"

मजदूरोंकी भरतीकी वर्तमान प्रणालीमें मुख्यतः दो बुराइयां हैं, जिनका शीघ्रातिशीघ्र दूर होना आवश्यक है :—

(१) शर्तबन्दी मजदूरी—चाहे आसाममें चायकी खेतीके लिए हो अथवा बिहार और मध्यप्रान्तकी कोयलेकी खदानें हों, कहीं भी इस अवाञ्छनीय प्रथाको रहने न देना चाहिए। मजदूरोंको मानवोचित अधिकारोंसे वञ्चित रख उन्हें पशुवत् जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य करना वास्तवमें न केवल सम्बन्धित सरकार, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्रके लिए कलङ्ककी बात है।

(२) मजदूरोंकी भरतीके लिए दलालोंका उपयोग—उक्त प्रणालीसे न केवल मजदूरोंमें ही आर्थिक बुराइयां पैदा होती हैं, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्रको इस घूसखोरीकी प्रथासे अत्यन्त हानि पहुंचती है। जापानी माल संसारके बाजारमें क्यों सस्ता बैठता है, इसके कारणोंका उल्लेख करते हुए जान गुन्थरने अपने पूर्वोक्त ग्रन्थमें लिखा है कि "दूसरा कारण औद्योगिक क्षेत्रमें ईमानदारीका होना है। जापानी फैक्ट्रीमें घूसखोरी नहीं है, इनाम भी नहीं है और न जाबर या दलाल ही हैं, जिन्हें किसी प्रकार धन देना पड़े।"

राष्ट्रोन्नतिके इस महत्त्वपूर्ण कार्यकी ओर मजदूर नेताओंको ध्यान देना चाहिए। इसमें पूंजीपतियोंका पूर्ण सहयोग भी सरलतासे प्राप्त किया जा सकता है।

२ ऋणका बोझ

मजदूरोंकी आजकी दयनीय अवस्थाके कारणोंमेंसे एक प्रधान कारण उनकी ऋण-समस्या है। शाही कमीशनने मजदूरोंकी ऋण-समस्याके बारेमें लिखते हुए कहा है कि "मजदूरोंकी गरीब स्थितिके कारणोंमें ऋणी बोझ प्रधान है।"

मजदूरोंकी ऋण-समस्याके विषयमें यद्यपि ठीक-ठीक अङ्क प्राप्त नहीं होते, तथापि जो कुछ भी होते हैं, उनपरसे ही यह ज्ञात होता है कि ७० से ७५ फीसदी मजदूर ऋणके बोझसे दबे हुए हैं। बम्बई प्रान्तके तद्विषयक अङ्कोंसे ज्ञात होता है कि वहां ६० से ७० प्रतिशत मजदूर ऋणी हैं। पञ्जाबमें खेतीमें काम करनेवाले मजदूर भारतमें सबसे अधिक कर्जदार हैं। मद्रास प्रान्तमें भी मजदूर अत्यधिक कर्जदार हैं और यह कहा जाता है कि मजदूरोंका ७५ प्रतिशतसे भी अधिक वेतन "पे-डे' के दिन साहूकारों द्वारा छीन लिया जाता है। मजदूरोंके ऋणकी तादादके विषयमें बम्बई लेबर आफिसके अङ्कोंसे ज्ञात होता है कि प्रति मजदूरपर औसतन् उसके २॥ मासके वेतनके बराबर ऋण होता है। अहमदाबादमें सन् १९२६ से १९३० तक ६९ प्रतिशत परिवार कर्जदार थे। यों तो सम्पूर्ण भारतीय किसान और मजदूर ऋणके बोझसे दबे हुए हैं; परन्तु यदि तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया जाय, तो जितना मजदूरोंका कर्ज उनके लिए दुःखदायी है, उतना किसानोंका कर्ज उनके लिए दुःखदायी नहीं है। मजदूरोंके लिए भी ऋणका बोझ उतना दुःखदायी नहीं होता, जितना कर्जकी वसूलीके तरीके और ब्याजकी दर होती है। किसानोंको कर्ज देने वाले अक्सर अधिक सम्पतिशाली सेठ-साहूकार होते हैं। उनकी ब्याजकी दर अनेक मामलोंमें अनुचित नहीं होती। ऋणकी वसूलीके लिए वे कानूनी कार्यवाहीकी शरण लेते हैं। परन्तु मजदूरोंमें लेन-देनका व्यवसाय करनेवाले साधारणतः कम पूंजीवाले और निम्न सामाजिक श्रेणीके लोग होते हैं। कर्जकी वसूलीके लिए वे कानूनी कार्यवाही द्वारा समय और धन नष्ट करना पसन्द नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि १०) का कर्ज लेकर एक मजदूर २४ घण्टेकी परेशानी मोल ले लेता है। मिलके फाटकसे घरके दरवाजे तक वह जहां जाये, अपने पीछे डण्डेवाला पठान हर समय पायेगा। इस विषयमें शाही कमीशनने अपनी रिपोर्टमें लिखा है :—

"बहुत-से साहूकार, जो मजदूरोंपर शिकारकी नाईं तके रहते हैं, न्यायालयकी कार्यवाहीकी अपेक्षा पाशविक शक्तिपर ही निर्भर रहते हैं। उनका न्यायाधीश लाठी ही है, जिससे वे अपील करते हैं। और "पे-डे" के दिन कारखानोंके बाहर अपने कर्जदारोंसे रुपया वसूल करनेके हेतु भूखे शेरकी तरह वे उनपर झपट पड़ते हैं।" [पृष्ठ २३९]

इसका उपाय बताते हुए कमीशनने लिखा है कि "किसी भी कारखानेके पास इस प्रकार कर्ज-वसूलीके हेतु घेरा डाले रखनेको फौजदारी और "कागनिजेबल' अपराध बना देना चाहिए।"

इस विषयमें बङ्गाल और मध्यप्रान्तकी सरकारोंने कुछ कदम उठाया है। बङ्गाल सरकारने सन् १९३४ में "बङ्गाल मजदूर रक्षा कानून" (Bengal Workman's Protection Act, 1934.) नामक कानून पास किया, जिसके अनुसार ऐसे व्यक्तिको, जो किसी कारखाने, खदान, डाक या रेलवे स्टेशनके पास मजदूरोंसे पैसा वसूल करनेके लिए चक्कर काटता हो, ६ मास तककी सजा हो सकती है। बङ्गाल सरकारसे मध्यप्रान्तीय सरकारने एक कदम और आगे बढ़ाया और सन् १९३६ में एक बिल पेश किया, जिसके अनुसार काम करनेके स्थानके सिवा रहनेके स्थानपर भी उसी हेतु चक्कर काटते रहना भी आपत्तिजनक था। सेलेक्ट कमेटीने इस बिलमें कुछ परिवर्तन किया और सन् १९३७ में वह कानून बन गया।

कर्ज-वसूलीकी दुःखजनक प्रणालीके अतिरिक्त मजदूरोंके लिए ब्याजकी दर भी असहनीय-सी है। इस विषयमें श्री जान गुन्थरने एक उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं कि "इस प्रकारका एक मामला हुआ है, जिसमें एक व्यक्तिको ११०) का ऋण दिया गया था। उस व्यक्तिने मूलधनपर ९७०) केवल ब्याज दिया था और अन्तमें पुलिसने उसमें हस्तक्षेप किया।"

मजदूरोंको दिये जानेवाले कर्जपर दो आना प्रति रुपया प्रति मास अथवा १५०) सैकड़ा सालाना ब्याज लेना एक बहुत ही साधारण बात है। इसे सिवा अमानुषिक व्यवहारके और क्या कहा जा सकता है?

जिन लोगोंका मजदूरोंसे कुछ थोड़ा भी सम्बन्ध होता हैं, वे जानते हैं कि इस कर्जके कारण उन्हें किस प्रकार पशुवत् जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। यहां तक कि अपनी स्त्रियोंकी इज्जत तक भी बचानेमें वे असमर्थ हो जाते हैं। मनुष्यका मनुष्यपर इससे बढ़कर और अधिक अत्याचार क्या हो सकता है? इस विषयमें पूंजीपति, सरकार और मजदूर नेताओंके सङ्गठित प्रयत्नसे कुछ कार्य किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित कुछ उपाय काममें लाये जा सकते हैं:—

१—मालिक स्वयं मजदूरोंको आवश्यक कर्ज देनेकी व्यवस्था करे। उचित ब्याजके साथ वह न्यायोचित ढङ्गसे मासिक वेतनमेंसे पैसा वसूल कर सकता है।

२—सरकार कानून द्वारा लायसेन्स-प्राप्त व्यक्तियोंको ही मजदूरोंको कर्ज देनेका अधिकार दे सकती है। लायसन्सकी शर्तोंमें कर्ज-वसूलीके तरीके और ब्याजकी दर विषयक साधारण शर्तें ही होनी चाहिए, ताकि वह कुछ लोगोंकी "मोनोपली" ही न बन जाय।

३—मजदूर नेता शिक्षा-प्रचार, रात्रि-पाठशालाओं, सभाओं, पोस्टरों और मेजिक लेण्टर्न द्वारा मजदूरोंको मितव्ययतासे लाभ और कर्जकी बुराइयां बताकर कर्ज लेनेकी उनकी आदत तथा अन्य प्रकारके उनमें प्रचलित दुर्व्यसनोंको कम करनेका प्रयत्न कर।

इस दिशामें इस प्रकारके रचनात्मक और ठोस कार्यसे ही मजदूरोंकी वर्तमान दयनीय अवस्थामें सुधार हो सकता है। क्या यह आशा की जा सकती है कि भारतके पुनर्निर्माणमें मजदूरोंकी महत्त्वपूर्ण समस्याको विस्मृत नहीं किया जायगा?
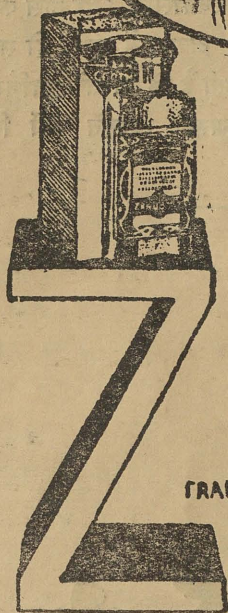
———

युद्धकालीन कुछ मनोरञ्जक बातें

कहा जाता है कि प्रेम और युद्धमें कोई बात अनुचित या असम्भव नहीं है। इसलिए युद्धकालमें कुछ अजब और मनोरञ्जक बातें सुनाई पड़ती हैं। विभिन्न विदेशी पत्रोंसे लिये गये कुछ नमूने यों हैं :—

इटलीकी शक्ति : इटली यद्यपि अब जर्मनीके साथ लड़ रहा है, पर जब तक वह युद्धमें पड़ा नहीं था, तब तक उसको लेकर तरह-तरहकी अटकलें लगायी जा रही थीं। एक बार पश्चिमी मोर्चेपर लड़नेवाले जेनरल गेमलिनने एक पत्र-प्रतिनिधिके यह पूछनेपर कि इटलीकी सैन्यशक्ति कैसी है, कहा—"अगर इटली तटस्थ रहे, तो उसकी देख-रेखके लिए मुझे ९ डिविजन सैनिकोंकी आवश्यकता पड़ेगी। अगर वह हिटलरके साथ जाकर हमारे विरुद्ध युद्ध करने लगे, तो उसे हरानेके लिए मुझे दस डिविजन सैनिक चाहिए। लेकिन अगर वह मित्र-शक्तियोंकी ओरसे लड़ाईमें भाग ले, तो उसकी सहायताके लिए मुझे १९ डिविजन भेजने पड़ेंगे।

सेन्सर : युद्ध-कालमें सेन्सरका महत्त्व खूब बढ़ जाता है। और यह किस हद तक साधारण पत्र-व्यवहारोंपर भी कड़ाई करता है, इसके नमूने भी बड़े मनोरञ्जक हैं। एक बार एक पुरुषने अपनी प्रेमिकाके नाम एक पत्र लिखा। पत्रको सेन्सर अफसरने खोलकर पढ़ा और प्रेमिकाके पास भेज दिया। बड़े चावसे प्रेमिकाने पत्र खोला, तो देखा सारे पत्रपर सेन्सरकी लाइनें खिंची हुई हैं और पत्रकी एक भी पंक्ति पढ़ी नहीं जा सकती। सिर्फ ऊपरकी पंक्तिमें 'प्रिय जेन' और अन्तमें "तुम्हारा अपना गिलबर्ट" यह अंश बिना सेन्सर हुए सही-सलामत प्रेमिकाके पास तक पहुंच सका।

ऐसी ही एक घटनाका उल्लेख 'नार्थ चाइना हेरल्ड'ने किया है। एक डेनिश युवती अपने प्रेमीके पत्रकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसे प्रेमीसे एक विस्तृत पत्रकी आशा थी कि अकस्मात् एक दिन सेन्सर बोर्डका एक लिफाफा उसे मिला, जिसमें लिखा था : "इस पत्रमें आपके प्रेमी मि० ......का एक लम्बा-चौड़ा पत्र था। वह बड़ा बातूनी मालूम होता है। उसने ऐसी न जाने कितनी बातें लिख मारी थीं, जिनका उससे कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिए वह पत्र नष्ट कर दिया गया।

"लेकिन हम आपको विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वे बहुत आरामसे हैं और आपके लिए अभिवादन, प्रेम और असंख्य चुम्बन भेज रहे हैं।"

"दूसरी बार जब आप उन्हें पत्र लिखने लगें, तो उन्हें सावधान कर दें कि वे आपको सिर्फ प्रेम-पत्र ही लिखा करें। और तब वे पत्र बड़ी आसानीसे आपके पास पहुंच जाया करेंगे।"

जब तक गञ्जे न हो जायें : सङ्कटकालमें प्रत्येक देश अपने नागरिकोंसे देशके लिए त्याग और बलिदानकी मांग पेश करता है, इसलिए अगर जर्मनी भी ऐसा करे, तो इसमें किसी प्रकारके आश्चर्यकी बात नहीं है। लेकिन लिपजिगके एक पत्रने जर्मन पुरुषों और नारियोंसे एक अनोखा त्याग करनेको कहा है। उसने लिखा है कि आशा की जाती है कि देशभक्त जर्मन पुरुष और स्त्रियां अपने केश काटकर राष्ट्रको भेंट करेंगी, जिससे जर्मनोंको दूसरे देशोंसे ऊन और फेल्ट खरीदनेकी आवश्यकता न रह जाय।

प्रेमके लिए आश्रय : युद्धकालीन बम-वर्षासे नागरिकोंकी रक्षाके लिए जो छिपनेके आश्रय बनाये गये हैं, उनका एक और उपयोग होने लगा है, जैसा कि 'नाटिङ्घम पोस्ट' ने लिखा है। अधिकारियोंने अबसे निश्चय किया है कि इन सारे आश्रयस्थलोंको ताला लगाकर बन्द करके रखा जाय। "यह संयोगकी बात है कि हमारे लिए रातको खतरेकी घण्टी नहीं बजानी पड़ी" एक ए० आर० पी० अफसरने बताया, "नहीं तो नागरिकोंको बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता, क्योंकि देखा गया कि कितनी ही बार प्रेमी-प्रेमिकायें उक्त आश्रय-स्थलों" में रातमें पायी गयी हैं। आखिर प्रेमके लिए भी तो आश्रय चाहिए!

आकाशसे प्रश्नोंकी वर्षा : रायल एयर फोर्स द्वारा जर्मनोंके बीचमें आकाशसे जो पर्चे गिराये गये थे, उनमें कैसी-कैसी बातें रहीं, इसका नमूना 'पेरिस सोर' ने छापा है। राइनलैण्डके उद्योग-क्षेत्रोंमें काम करनेवालोंसे ये प्रश्न पूछे गये थे :—

फील्ड मार्शल गोयरिंगको जर्मन जनताकी बचत आमदनीको खर्च करनेका अतिरिक्त अधिकार क्यों दिया गया है?

इसका क्या अर्थ कि वेतन मुद्रामें न होकर बाण्ड द्वारा होगा?

रीख बैङ्कके प्रेसिडेण्ट डा० वाल्टर फङ्क बार-बार क्यों इस बातको दुहरा रहे हैं कि जर्मनीमें कागजके नोट अत्यधिक नहीं चलाये जायेंगे, जबकि वे जानते हैं कि ठीक इसका उल्टा होनेवाला है।

जर्मन मजदूरोंको उन मशीनोंके लिए किस्त चुकाते रहनेके लिए क्यों मजबूर किया गया, जब कि यह बात स्पष्ट है कि कमसे कम युद्धकालमें तो वे मशीनें उन्हें नहीं मिल सकतीं।

उन पर्चोंपर नात्सीदलका स्वस्तिक चिह्न भी छपा रहा है।

वे भी सिनेमा देखते हैं

संसारका भ्रमण करनेवाले एक अमेरिकन पत्रकारने अपने अनुभवोंका वर्णन करते हुए लिखा है कि यूरोप और एशियाके वर्तमान महान् व्यक्तियोंमें अनेक फिल्मोंमें बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। इस सम्बन्धमें उसने गांधीजी, चांग-काई-शेक, स्टैलिन, जापानके सम्राट्, हिटलर, मुसोलिनी, फ्रैङ्को तथा नार्वे और स्वीडनके राजाओंका उल्लेख किया है।

गांधीजीसे मुलाकात करनेपर उस पत्रकारको यह देखकर बड़ी निराशा हुई, जैसा कि उसने लिखा है कि, उनका उस दिन मौनव्रत था। अतः उन्होंने किसी भी प्रश्नका उत्तर नहीं दिया। उसने लिखा है :—मैं इस बातपर सोच ही रहा था कि मेरी ८९ सौ मीलकी यात्रा असफल हुई कि मुझे पता लगा कि भारतका यह महान् पुरुष मुझसे एक प्रश्न करना चाहता है। उन्होंने कहा :—

"मैं अमेरिकाके बारेमें बहुत कम जानता हूँ, महाशय। अमेरिकाको जो कुछ मैं जानता हूँ, केवल उसकी फिल्मों द्वारा ही, जिन्हें मैं समय-समयपर देखा करता हूँ। पर आप किस श्रेणीके व्यक्ति हैं?"

पहले तो मैंने सोचा कि मैं गांधीजीसे यह कह दूँ कि अमेरिकामें श्रेणी-भेद है ही नहीं, पर मैंने सोचा कि पहले उनके इस प्रश्नका और भी खुलासा करवा लूं। अतः उन्होंने कहा : "आप किस श्रेणीके हैं? आप गुण्डा, भद्र अथवा प्रेमी—किस श्रेणीके हैं!"

अमेरिकन फिल्मोंकी यह बड़ी ही सच्ची आलोचना है, इसमें सन्देह नहीं, पर लेखकको इस बातमें विश्वास करना असम्भव है, क्योंकि गांधीजी वस्तुतः फिल्म देखते ही नहीं और यह आलोचना तो अमेरिकन फिल्मोंकी अच्छी जानकारीके बाद ही की जा सकेगी।

जेनरल मोला और फ्रैङ्कोके सम्बन्धमें लेखकने लिखा है कि उन्हें अपराध और खूंरेजी-भरी रहस्यमयी फिल्में अधिक पसन्द हैं। लेकिन स्पेनमें जब राजा अलफंजोका शासन था, तब प्रेम और श्रृङ्गारकी फिल्में बहुत पसन्द की जाती थीं। "अष्टम हेनरी' के व्यक्तिगत जीवनपर बनी फिल्म अलफंजोको बहुत पसन्द थी।

बेलजियमके राजाका फिल्म-प्रेम प्रसिद्ध है। उन्हें जो फिल्में पसन्द आ जाती थीं, उन्हें कई बार देखते थे। 'थिन मैन' उन्होंने ग्यारह बार देखा था।

जर्मनी छोड़नेके बादसे कैसर नियमानुकूल सप्ताहमें दो दिन फिल्म देखते हैं। अमेरिका और ब्रिटेनकी सभी बढ़िया फिल्में उन्होंने देखी हैं।

फ्रान्सके वर्तमान प्रेसिडेण्ट लेब्रून तथा हेरियोका भी फिल्म-प्रेम प्रसिद्ध है। पहलेको शर्ली टेम्पुल तथा दूसरेको चार्ली चैपलिन बहुत पसन्द है।

हिटलर और मुसोलिनी फिल्में अधिक नहीं देखते, पर साम्यवादकी भावनावाली फिल्में उन्हें बेहद नापसन्द हैं।

स्वीडनके राजा गुस्टव तथा नार्वेके हेकन फिल्मोंके बड़े प्रेमी हैं। गुस्टव हफ्तेमें कमसे कम चार फिल्में देखते हैं और हेकन हफ्तेमें आठ।

अमेरिका फिल्म बनानेवाले देशोंका राजा है और उसके प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टके अतिथि इस बातको जानते हैं कि दावत खानेके बाद वे अमेरिकाकी बढ़ियासे बढ़िया फिल्में भी दिखाकर अतिथियोंका स्वागत करते हैं।

कलापूर्ण फिल्में बनानेके लिए रूसकी संसार-भरमें काफी प्रसिद्धि है। अमेरिकन फिल्में वहां कम पसन्द की जाती हैं, क्योंकि स्टैलिनका ख्याल है कि वे फिल्में राजनीतिक दृष्टिकोणसे अनुचित प्रभाव डालनेवाली होती हैं। वह या तो वाल्ट डिसनेके मनोरञ्जक कार्टून पसन्द करता है अथवा "विवा विल्ला" जैसी क्रान्तिकारी विषय रखनेवाली फिल्में; फिर भी वह अमेरिकाकी उन फिल्मोंको काफी पसन्द करता है, जिनमें या तो गुण्डाशाही दिखायी जाती है अथवा उच्चकोटिका चरित्र-चित्रण। क्लार्क गेबुल, वालेस बीथरी और पालमुनी उसे बहुत पसन्द हैं। यूने लायन्सने अभी स्टैलिनका जो जीवन-चरित्र लिखा है, उसमें इन बातोंपर भी प्रकाश डाला है।

कल्पनासे रुपये कमाओ

काम करनेकी शैली सबकी अपनी होती है और अनुभवोंके आधारपर कोई भी अपने लिए समझ सकता है कि कौन-सी शैली उसके उपयुक्त है। लेखकोंके सम्बन्धमें मशहूर है कि वे बहुधा रातको लिखा करते हैं और कवियोंने एकान्त रात अथवा सवेरा अपने लिए पसन्द किया है। कितने ही लोगोंका विश्वास है कि कुछ घण्टे नियत कर उन्हींमें काम करना चाहिए, और कुछ करते भी हैं; पर देखा गया है कि मौलिक ढङ्गसे सोचनेवाले—चाहे वे कलाकार हों, चाहे व्यापारी—सदा अनियमित ढङ्गसे काम करते हैं। वे बंधी हुई घड़ियोंमें बंधे हुए काम भले ही कर सकते हों, पर कोई मौलिक सूझ उनके पास नहीं हो सकती।

डोलर्ड लेयरने एक पुस्तक लिखी है, जिसका विषय है कि काम करनेकी क्षमता कैसे बढ़ायी जाय। उसने अमेरिकाकी जलवायुके लिए लिखा है कि वहांके लोगोंमें आम तौरपर ६५ अंशके तापमान तथा अप्रैल और अक्टूबरमें अत्यधिक काम करनेकी क्षमता होती है। भारतके सम्बन्धमें ठीक-ठीक यही बात लागू नहीं हो सकती; पर आम तौरपर सवेरे काम करनेकी शक्ति तथा विचार-शक्ति कहीं अच्छी रहती है और ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता चलता है, यह शक्ति घटती चलती है। सन्ध्याका भोजन कर लेनेके बाद एक बार फिर थोड़ी देर तक काम करनेको जी चाहता है। एक व्यक्तिने अपने अनुभवोंके बलपर लिखा है :—

सवेरेका समय ऐसा है, जिसमें मनुष्यकी शक्तियां विश्रामके बाद पहली बार जगी होती हैं। अतः उन्हें तत्काल काममें न लगा दीजिये, तो वे फिर सोनेकी तैयारी करने लगेंगी। पहले मेरी आदत थी कि मैं सवेरे दोस्तोंके साथ बैठकर चाय पीता, धूम्रपान करता और गप्पें लड़ाता; लेकिन थोड़े दिनोंके बाद ही एक-दो बार प्रयत्न करनेपर मैंने उनकी अनुपस्थितिमें अपनेको शिथिल पाया। मैंने अब अपनी उस आदतमें सुधार कर लिया है और अब मैं सवेरे अपने काममें लग जाता हूं। सवेरेका समय दोस्तोंके साथ गप्पें करनेका नहीं है। यह समय बड़ा ही कीमती है।

रे गाइल्सने अपनी पुस्तक "अपनी कल्पनासे रुपये कमाओ" में लिखा है:—मैं जब पहली बार विज्ञापन लिखनेपर नियुक्त हुआ, तब उस कमरेमें तीन व्यक्ति और बैठते थे। तीनोंके साथ मेरी खूब बनने लगी। हम लोग यहां तक एक दूसरेसे हिलमिल गये कि साथ-साथ सिनेमा देखने जाते, प्रतिदिन एक साथ खाना खाते और घूमने जाते। हम लोगोंकी दिलचस्पी एक दूसरेसे बढ़ने लगी।

इस तरह कई सप्ताह बीत गये; पर हम लोगोंमेंसे प्रत्येकने महसूस किया कि यह उमङ्ग अब घटने लगी है। पहलेवाला वह उत्साह नहीं आता। प्रत्येकने यही महसूस किया; पर सङ्कोचके मारे किसीने भी प्रकट नहीं किया। अन्तमें अपने आप यह हुआ कि हम लोग कभी-कभी अकेले और इसी तरह दो-दो करके आने-जाने लगे। और हम सभीने महसूस किया कि हमारी दिलचस्पी फिर बढ़ने लगी। वास्तवमें हममें जो एकरसता आ गयी थी, एक बंधी

शैलीके बन्धनमें जो हम पड़ गये थे, वह नष्ट हो गयी, तो फिर आनन्द आने लगा।

रोजाना एक ही तरहसे न खाओ और न एक ही चीज खाओ। रोज-रोज वही खाते रहे, तो देखोगे कि कभी-कभी खानेकी तरफ मन नहीं बढ़ेगा। भोजनका असर सिर्फ शरीरपर ही नहीं, मनपर भी पड़ता है और जब ऐसा है, तब मनको जो परिवर्तन प्यारा है, वह भी उसे जरूर चाहिए। कामके सम्बन्धमें भी यही बात है। मोनोटनी—एकरसता कभी अच्छा परिणाम नहीं दे सकती और न एक ही शैली कभी कोई महान् विचार उत्पन्न होने देती।

निर्वासितोंको फिक्र नहीं

जेकोस्लोवेकियाके राष्ट्रपति डा० एडवर्ड बेनेसके सम्बन्धमें भाषण करते हुए डा० गोबेल्सने एक बार कहा था :—मैं उसकी तनिक भी परवाह नहीं करता, वह तो एक भागने-फिरनेवाला नष्ट-भ्रष्ट निर्वासित है। इसपर एक अमेरिकन पत्र 'ट्रिब्यून' ने टिप्पणी करते हुए लिखा है :—गोबेल्स निर्वासितोंको कुछ भी महत्त्व नहीं देना चाहता। लेकिन मानव-जातिके इतिहासके कितने ही महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प अध्याय निर्वासितोंके लिखे हुए हैं।

वर्तमान रूसकी सृष्टि लेनिन तथा उसके निर्वासित मित्रों द्वारा ही हुई है, जो १९१७ में रूसमें वापस आये थे।

रिपब्लिक चीनके प्रथम प्रेसिडेण्ट सन यात सेन २६ साल पहले अनेक वर्षों तक निर्वासित रहनेके बाद आये थे।

प्रथम महायुद्धके पहले वर्षों तक निर्वासित रहनेवाले पिल्सडुस्कीके हाथों द्वारा ही पोलैण्डके प्रजातन्त्रकी प्रतिष्ठा हुई थी।

कितने ही ऐसे भी निर्वासित अवश्य हैं, जो केवल गरजते हैं और बरस नहीं सकते; पर डा० बेनेस भी क्या ऐसे ही हैं?

जर्मनीके लिए ईश्वरकी व्यवस्था

जर्मनीका डा० गोबेल्स प्रचारकार्यमें अपने हथकण्डों एवं मिथ्या दम्भोंके लिए विश्व-भरमें प्रसिद्ध हो चुका है। कहा जाता है कि निधड़क झूठ बोलनेमें वह संसारमें अद्वितीय है। गोबेल्सने मिथ्या-प्रचारको एक वैज्ञानिक रूप दे दिया है और जर्मनीके कितने ही पत्रोंने भी इस विज्ञानकी थोड़ी बहुत जानकारी हासिल की है। एक नात्सी पत्रका एक अंश इस बातको प्रमाणित करेगा कि जर्मन जनताको ठगनेके लिए वहां कैसी-कैसी अनर्गल बातें फैलायी जाती हैं। उक्त पत्रने लिखा है :—

"कभी-कभी ऐसे लोग भी मिल जाते हैं, जिनका ख्याल है कि दूसरोंकी अपेक्षा वे बहुत अधिक जानकारी रखते हैं। और जब वे सोचते हैं कि उनकी बात कोई नहीं सुन रहा है, तब वे आपसमें कानाफूसी करने लगते हैं कि "यह निश्चय ही सन्देहपूर्ण है कि हमारी विजय होगी, क्योंकि हमें याद रखना चाहिए कि पिछले महायुद्धमें हमारी करारी हार हुई थी।"

ऐसे बेहूदे मूर्खों तथा उनके सम्पर्कमें आनेवाले अपने देशवासियोंसे हम कह देना चाहते हैं कि उन्हें एक बातका ध्यान रखना चाहिए कि वर्तमान युद्धकी तुलना बिगत महायुद्धसे कभी नहीं हो सकती।

यूरोपमें जर्मनीकी एक महान् शक्तिके रूपमें प्रतिष्ठा, रीखका अन्तरिक पुनर्गठन, नात्सी जर्मनीकी वैदेशिक नीतिकी महान् सफलता ('घेरा' डालनेके प्रयत्नोंका विध्वंस और बृहत्तर जर्मनीका उदय)—इन बातोंसे समझदार व्यक्तियोंको स्पष्ट मालूम हो जाना चाहिए कि भगवान् हमसे और भी महान् कार्य करवाना चाहता है।

इस संसारमें अकारण कुछ नहीं होता और दैवी इच्छा, जो सदा हमारे साथ रही है, कभी भूल नहीं कर सकती।

हम विजयके लिए बुलाये गये हैं और हमारी विजय होकर रहेगी, क्योंकि अपना कार्य सम्पादन करनेके लिए भगवान् उन्हींको नियुक्त करते हैं, जिन्हें वह इसके योग्य समझते हैं।

क्षुद्रों और चेतनारहित व्यक्तियोंसे एक बात और कह देनी है। उन्हें इस बातके लिए सावधान हो जाना चाहिए कि उनकी भी गणना मनुष्य जातिके उन क्षुद्रोंके साथ ही होगी, जिन्हें बीती शताब्दियोंसे निकालकर हमने अपने साथ जर्मन व्यवस्थामें लिया है।

दुनिया पागल हो रही है

समाज-शास्त्रियों एवं वैज्ञानिकोंने मानव-जातिके लिए जितनी भीषण भविष्यवाणियां की हैं, उनमें उन्होंने यह भी

एक भयावनी बात कही है कि दुनियामें पागलोंकी संख्या बड़ी तेजीसे बढ़ रही है। और अगर मानसिक विकारका यही क्रम चलता रहा, तो दुनियाकी एक बहुत बड़ी आबादी पागल हो जायगी। एक अमेरिकनने इस सम्बन्धमें खोज करके आंकड़े एकत्र किये हैं। उसका कहना है कि अमेरिकन अस्पतालोंमें दस लाख रोगियोंमें आधे मानसिक विकारसे पीड़ित पाये गये। इसके साथ ही दूसरे आंकड़े भी हैं, जो यही प्रमाणित करते हैं, जैसे आत्मघात और स्नायविक दुर्बलताके रोगियोंकी बढ़ती हुई संख्या।

सभ्यताने इतने दिनोंमें मानव-जातिको क्या यह मानसिक विकार ही सिखलाया है? इतने वैज्ञानिक आविष्कारोंने क्या मनुष्यको स्नायविक दौर्बल्य ही दिया है? आजकी सभ्यता क्या इतनी निराशाजनक है कि इसमें इतना मानसिक विकार आ जाय कि मनुष्य आत्मघात किये बिना रह न सके? आज संसार-भरमें जो साहित्य मनोविज्ञानपर प्रकाशित हो रहा है और मनस्तत्त्व-विश्लेषणकी आज जो इतनी महिमा बतायी जाती है, क्या उसका मनुष्यको मानसिक रोगसे ग्रसित करनेमें कोई हाथ नहीं है? कभी-कभी इस प्रकारके ग्रन्थ पढ़ते-पढ़ते मनुष्य अपने आप कहने लगता है कि 'अरे, ऐसी ही मानसिक स्थिति तो एक बार मेरी भी हुई थी।' उस व्यक्तिकी कहानी इसका एक प्रचण्ड उदाहरण है, जिसे इस बातका विश्वास हो गया था कि उसकी पीठ कांचकी बनी है। उसका पागलपन इतना बढ़ गया था कि उसको लेकर कई घटनायें हो गयी थीं।

हमारी भावनायें कभी-कभी वास्तवमें पागलोंकी-सी हो जाती हैं; पर हम अपनेको पागल नहीं समझते। हम समझते हैं कि अमुक परिस्थितियोंमें हमारी अमुक ढङ्गकी भावनायें बिलकुल स्वाभाविक हैं। यही कारण है कि हमारी गणना पागलोंमें नहीं होती। अन्यथा अगर लोग जान जायें कि यह भावनायें यों ही उत्पन्न हो जाती हैं, तो हमारी गणना पागलोंमें होगी और हम चाहे जितने होशमें हों, हमें अपने रोगका इलाज कराना पड़ेगा।

आर्थिक दुरवस्थाके दुष्परिणाम पागलपनमें दिखाई पड़ते हैं या नहीं, इसकी छानबीन करनेके लिए अमेरिकामें एक समितिकी स्थापना हुई थी, जिसने १०४ संस्थाओं तथा १६८ अस्पतालोंके रोगियोंकी जांचकर यह परिणाम निकाला था कि इससे पागलपन नहीं होता। पर इससे कौन इनकार कर सकता है, जैसा कि डा० किरनने कहा है कि यह अवस्थायें सीधे पागलपन न उत्पन्न करती हों, पर स्नायविक दौर्बल्य तथा मानसिक कमजोरी इनसे इतनी आ जाती है कि आदमी आत्मघात कर लेता है और उस आदमीके लिए ऐसे मानसिक विकारसे बढ़कर, जो उसकी मृत्युका कारण हो जाय, और कौन-सा पागलपन होगा?

भारतकी भाषाओंमें हिन्दुस्तानीका स्थान

भारतके सम्बन्धमें जो कितनी ही जानने योग्य दिलचस्प बातें हैं, उनमें इसका भाषा-बाहुल्य भी है। भारतमें कुल मिलाकर २२५ भाषायें बोली जाती हैं; जिनमें विभिन्न जगहोंकी बोलियोंका समावेश नहीं है। यह बोलियोंकी संख्या आसाम और बर्माको मिलाकर १९० से ऊपर बतायी जाती है। भाषा सम्बन्धी इन छानबीनोंका परिणाम देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी भाषा-भाषियोंकी संख्या ही सबसे अधिक नहीं है, बल्कि भारतके समस्त बड़े-बड़े शहरोंमें, जहां विभिन्न भाषा-भाषी रहते और परस्पर सम्पर्कमें आते हैं, उनमें विचारोंके आदान-प्रदानका साधन हिन्दी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी ही अन्तर-प्रान्तीय भाषाका स्थान ग्रहण कर सकती है।

इस सम्बन्धमें एक और दिलचस्प बात यह है कि जिन स्थानोंपर ऐसे लोग हैं, जो भारतकी कोई भी प्रान्तीय भाषा नहीं जानते हैं, वे भी उस स्थानकी भाषा न बोलकर हिन्दीको ही अपने विचार-विनिमयका माध्यम बनाते हैं। उदाहरणार्थ यूरोपियनोंको लीजिये, वे चाहे बङ्गाल, गुजरात, मद्रास कहीं भी हों, उस प्रान्तकी भाषामें न बोलकर हिन्दुस्तानीमें बोलेंगे। बङ्गालमें हिन्दी-प्रचारका इतिहास बताता है कि प्रारम्भसे ही अंगरेजोंने सर्वत्र हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिए हिन्दुस्तानीमें पुस्तकें प्रकाशित करनेमें बड़ा परिश्रम किया। चाहे उनका उद्देश्य उस समय हिन्दुस्तानीका उत्थान करना न रहा हो, पर उन्होंने यह स्पष्ट देख लिया था कि हिन्दुस्तानीके प्रचारके बिना विचार-विनिमय करना असम्भव है और तब शासन-प्रबन्ध भी करना कठिन हो जायगा। इसका अर्थ हम निकालते हैं कि समस्त भारतके लिए उन्होंने भी एक भाषा—और वह भाषा हिन्दुस्तानी हो—इसकी आवश्यकता महसूस की थी।

१९४१ में होनेवाली जनगणनाके अनुसार निश्चय ही हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी संख्या १९३१ की अपेक्षा कहीं अधिक होगी। क्योंकि पिछले दस वर्षोंके भीतर और भाषाओंकी अपेक्षा हिन्दुस्तानीका अधिक प्रचार हुआ है। हिन्दीके पक्षमें धीरे-धीरे यह तथ्य स्वतः बढ़ते चलते हैं। इस सम्बन्धमें गत जनगणनाके तत्सम्बन्धी आंकड़े मनोरञ्जक हैं और भारतकी विभिन्न भाषाओं तथा उनमें हिन्दुस्तानीकी स्थितिके सम्बन्धमें काफी प्रकाश डालते हैं। इस जगह हम केवल बङ्गाल तथा बड़े-बड़े शहरोंके ही आंकड़े दे रहे हैं। वे स्वतः स्पष्ट हैं :—

भाषा-भाषियोंकी संख्या	बङ्गाल	कलकत्ता
हिन्दुस्तानी	१,८९१,३३७	४२६,१२३
नेपाली	१२४,१४७	३,६३९
उड़िया	१५९,८५४	३८,१३९
गुजराती	६,९९४	३,८८३
कनाड़ी	१०९	३९
काश्मीरी	६३	३९
मलयालम्	३०५	२३९
मराठी	३,१६१	१,०३१
पञ्जाबी	१४,९४५	९,२०९
पश्तो	४,०८४	७१०
राजस्थानी	१९,५७४	७,३९७
सिन्धी	५०४	३५९
तमिल	५,८५५	२,९५४
तेलगू	३३,१२५	३,३८९
अरबी	१,५४२	७६४
अरमेनियन	७००	५१७
चीनी	४,६४३	३,०२८
फारसी	१,११६	३३३
अंगरेजी	४८,९३२	३२,३९३
फ्रेञ्च	२२९	१५४
इटैलियन	२८६	१५७
पुर्तगीज	१३८	८४

जिस जनगणनाके विभिन्न भाषा-भाषियोंकी यह संख्या दी गयी है, उसके अनुसार बङ्गालकी आबादी ५१,०८७,३३८ रही है। इसमें अत्यधिक, लेकिन सभी नहीं, बङ्ग भाषा-भाषी हैं। समस्त भारतकी जनगणनाके अनुसार बङ्गालकी राजधानी कलकत्तामें भारतके दूसरे सभी बड़े-बड़े शहरोंकी अपेक्षा हिन्दी भाषा-भाषियोंकी संख्या अधिक है।

राजनीतिक 'वादों' को परिभाषा

पिछले कुछ दिनोंसे राजनीतिक 'वादोंका' बाजार खूब गर्म रहा है। इनको लेकर एक व्यक्तिने 'न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून' में अच्छा मजाक किया है। उसने विभिन्न 'वादों'की परिभाषा यों बतायी है :—

समाजवाद : अगर तुम्हारे पास दो गायें हैं, तो एक अपने पड़ोसीको दे दो।

साम्यवाद : अगर तुम्हारे पास दो गायें हैं, तो उन्हें तुम सरकारको दे दो। फिर सरकार उनसे निकला हुआ थोड़ा-सा दूध तुम्हें दिया करेगी।

फैसिज्म : अगर तुम्हारे पास दो गायें हैं, तो उन्हें अपने पास रखो। उनका दूध दुहकर सरकारके पास पहुंचा दो और तब सरकार उसीमेंसे थोड़ा-सा दूध तुम्हारे हाथ बेच देगी।

नात्सीवाद : अगर तुम्हारे पास दो गायें हैं, तो सरकार तुम्हें गोली मारकर दोनों गायें तुमसे छीनकर अपने पास रखेगी।

पूंजीवाद : अगर तुम्हारे पास दो गायें हैं, तो एकको बेचकर एक सांड़ खरीद लो।

मछलियोंका आत्मघात

बर्माके बौद्धोंने, जो अहिंसामें प्रबल आस्था रखते हैं, मछली मारनेकी एक मनोरञ्जक विधि निकाल रखी है। 'रिव्यू द पेरिस' के एक प्रतिनिधिने एक बर्मीको मछली मारते देखा था। बर्मीने पानीपर जाल फेंकते हुए उससे कहा : देख रहे हो, नीचे कोई चीज चमक रही है? यह लकड़ीका एक टुकड़ा खूब सफेद रङ्गमें रंगकर नीचे लगा दिया गया है, जो चांदकी रोशनीमें चमकता है। मछलियां इसे देखकर डरतीं और ऊपर भागनेकी कोशिश करती हैं। इस कोशिशमें वे पास ही लगे हुए जालमें गिर पड़ती हैं। इस तरह हमें हिंसा नहीं करनी पड़ती। मछलियां स्वयं जालमें गिरकर आत्मघात कर लेती हैं। इस प्रकार बर्मी बौद्धोंने अहिंसा-व्रतका पालन करना शुरू किया है।

लेखनकलाके मादम तबोईके कुछ अनुभव

मादम तबोई फ्रेञ्च महिला हैं। उन्होंने पत्रकार-कलामें अद्भुत दक्षता प्राप्त की है। राजनीतिक रहस्योंका उद्घाटन एवं राजनीतिक भविष्य वाणियां आपकी इतनी सच उतरती रही हैं कि आपने जो कुछ लिखा, उसमें विश्वास करनेकी प्रवृत्ति आम तौरपर लोगोंमें रही है। इसलिए पिछले दिनों जब यह समाचार आया कि मादम तबोईको जर्मनोंने गिरफ्तार कर लिया है, तो संसार-भरके पत्रकारोंको इससे दुःख हुआ। पर अब पता चला है कि वे सुरक्षित लन्दन पहुंच गयी हैं।

मादम तबोईको पत्रकार-कलामें कैसे इतनी सफलता प्राप्त हुई और इसके लिए प्रारम्भमें उन्हें कैसी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं, इसके सम्बन्धमें उन्होंने स्वयं लिखा है। उनके लेखसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अत्यधिक सभ्य कहे जानेवाले देशोंमें भी महिलाओंके सम्बन्धमें लोगोंके कैसे विचार हैं।

उन्होंने लिखा हैः—फ्रान्समें महिलाओंके लिए राजनीतिमें कोई स्थान नहीं रह गया है। अतः जो इस विषयमें दिलचस्पी लेती हैं, उन्हें लिखने-पढ़नेका सहारा लेना पड़ता है। लेकिन इस क्षेत्रमें भी जब तक वे काफी ख्याति अर्जन न कर लें, उन्हें काफी ठोकरें खानी पड़ती हैं। १९२४ से लेकर अब तक मुझे ऐसा ही करना पड़ा है।

१९२४ में मैंने एक प्रसिद्ध प्रान्तीय पत्रके सम्पादकसे मुलाकात कर उनसे इन बातकी प्रार्थना की, कि मुझे वे अपने पत्रके लिए राष्ट्र-संघके संवाद देनेका काम दें। पत्र-सम्पादकने इसका उत्तर दिया—"लेकिन आप तो महिला हैं! अगर मैं आपको यह काम सौंप भी दूं, तो आपको अपने लेखोंपर हस्ताक्षर ऐसा करना पड़ेगा कि पाठक इसे समझ न सकें। मेरे जैसे महान् पत्रको एक स्त्रीको नियुक्त कर नयी रीति नहीं चलानी चाहिए।" मुझसे नमूनेके तौरपर एक लेख मांगा गया। कई दिनोंके बाद मेरी नियुक्ति हो गयी। पर इस शर्तपर कि मैं अपना नाम जी० आर० तबोई लिखा करूं और सदा उसमें पुलिङ्ग संज्ञाका प्रयोग करूं।

थोड़े दिनके बाद मैंने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक लिखी और इसके लिए प्रकाशक ढूंढ़ने निकली। मैं एक बहुत बड़े प्रकाशकके पास गयी। उसने कहा—"मादम, आप मुझसे कैसे उम्मेद करती हैं कि मैं एक महिला द्वारा लिखित ऐसी गम्भीर पुस्तक प्रकाशित कर सकता हूं। प्रेम विषयक कोई उपन्यास अथवा कोई भ्रमण-वृत्तान्त हो, तो बात दूसरी है। मगर एक ऐतिहासिक ग्रन्थ—असम्भव!"

इससे तनिक भी हताश न होकर मैं इससे भी प्रसिद्ध एक दूसरे प्रकाशकके पास गयी। उसने जरा अविश्वास, किन्तु नम्रतासे कहा—"आप अपनी पुस्तक रख जाइये। मेरे देख लेनेके दो-तीन दिन बाद आइये।" मेरे वहां फिर जानेपर उसने कहा—"आपकी पुस्तक, मादम, बहुत सुन्दर है, पर अफसोस है कि आप स्त्री हैं। मुझे इसे प्रकाशित करना चाहिए, लेकिन मैं चाहता हूं कि आप अपना नाम जी० तबोई लिखें, जी० से लोग जार्ज या गैस्टन समझ लेंगे। पाठक नहीं समझ सकेगा कि आप नारी हैं और आपकी पुस्तक बहुत सफल होगी।"

मैं इससे बड़ी व्यग्र हो उठी और अध्यापकके पास गयी। उन्होंने कहा—"तुम्हें व्यग्र होनेकी आवश्यकता नहीं है। यह तो एक प्रकारकी प्रशंसा है, जो पुरुष नारीकी किया करते हैं। इससे स्पष्ट है कि हृदयमें वे एक नारीके मस्तिष्क और उसके कार्यसे डरते हैं।"

१९१४ में मेरे चाचा जूल्से कैम्बन बर्लिनसे, जहां वे फ्रान्सीसी राजदूत थे, पेरिस आये और वैदेशिक विभागके स्थायी प्रधान नियुक्त हुए। राजनीतिमें मेरी दिलचस्पी अब तक बढ़ गयी थी और मेरे चाचाने इसमें और भी प्रोत्साहन दिया। उस समयसे फ्रान्सकी व्यवस्था-परिषद्की शायद ही कोई ऐसी बैठक हुई हो, जिसमें मैं दर्शककी हैसियतसे उपस्थित न रही होऊं।

राष्ट्र-सङ्घकी स्थापनासे मुझे बेहद प्रसन्नता हुई थी, और उसकी एक भी बैठककी मैंने उपेक्षा नहीं की। बराबर मैं उसमें जाती और उसके सम्बन्धमें अपने परिवारवालोंको लम्बे-लम्बे पत्र लिखा करती, जिनमें मैं ब्रायांकी व्यंग्योक्तियों, बेनेस, टेटेलेस्कू, स्ट्रेसमैन और निट्टीकी मुलाकातोंका जिक्र करती। मेरे चाचाने मुझे प्रोत्साहन दिया कि मैं अस्पष्टताके साथ राजनीतिक प्रश्नोंपर अपने विचार प्रकट करूं और राजनीतिक व्यक्तियोंके सम्बन्धमें उनकी छोटी-छोटी दिलचस्प बातोंपर लिखूं। मुझे याद आता है, मैंने जर्मन वैदेशिक मन्त्री हर सुबर्टसे भेंट कर आल्सक-लोरेनपर

की गयी उनकी समस्त बातोंको एकदम अ-कूटनीतिक भाषा-में लिख डाला था, जिसका परिणाम यह हुआ कि मुझे पहली बार ही कठिनाइयोंमें पड़ जाना पड़ा और कहना चाहिए कि यह मेरी अन्तिम कठिनाई भी नहीं हुई।

संवाद देनेका काम करनेवाली नारियोंके सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि अपने अपमानका ठीक बदला वे नहीं ले सकतीं। अधिकसे अधिक वे अदालतकी शरण ले सकती हैं, पर इसके लिए उन्हें ऊपरसे और बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। १९३२ से १९३९ तक बराबर मुझपर यह अभि-योग लगाया जाता रहा है कि मुझे क्रेमलिनसे पैसे मिलते हैं, क्योंकि मैं बराबर फ्रान्स और रूसकी सन्धिका समर्थन करती रही। मेरे पुरुष सहकर्मियोंपर भी ऐसे ही अभियोग लगाये जाते रहे हैं, पर वे सदा इसका उत्तर पिस्तौलसे या द्वन्द्व युद्ध करके देना चाहते और इससे मामला शान्त हो जाता। पर मैं नारी होकर क्या करती? मैं तो अपमान होनेपर पत्रोंको लिखती—"महाशय, आप द्वारा होनेवाला प्रत्येक अपमान मेरे लिए सम्मानजनक ही है।"

पत्रकार-कलामें एक और बात यह देखनेमें आयी कि पुरुष पत्रकार महिलाओंके नीचे काम नहीं करना चाहते। जब मैं 'यूरो'के वैदेशिक संवादोंकी प्रधान सम्पादिका थी, तो मैंने एक नया साधन खोज निकाला। मैं पत्रके दफ्तर-में कभी न जाती। घरपर बैठकर सहकारी सम्पादकोंको टेलीफोनपर आदेश दे देती। इससे वे अपना अपमान नहीं समझते थे। एक और कठिनाई भी नारियोंके लिए है। मिनिस्टर नारियोंकी स्थितिका विश्लेषण करनेमें उतना कष्ट नहीं उठाते, क्योंकि वे उन्हें उतना महत्त्व ही नहीं देना चाहते।

लेकिन एक बात नारियोंके लिए सुविधाकी है। भाषण करनेके लिए उनके उठनेपर सभ्यता और शिष्टाचारके नाते उनके बोलनेमें कोई आपत्ति नहीं की जाती।

समाजमें नारियोंकी स्थिति

उस पाश्चात्य विद्वान्‌ने ठीक ही कहा था कि अगर किसी समाजकी सभ्यताका पता लगाना हो, तो पहले इस बातका पता लगाओ कि उस समाजमें नारियोंकी क्या स्थिति है। समाजमें नारीकी स्थिति इस प्रकार समाजकी सभ्यताका पैमाना है। पर इस पैमानेसे देखनेपर आज हमारे समाजकी सभ्यता और संस्कृतिके सम्बन्धमें लोगोंकी क्या धारणा हो सकती है, यह आज सामाजिक सुधार चाहनेवालों और नारी-समाजको उन्नत अवस्थामें देखनेकी लालसा रखनेवालोंको सोचना चाहिए। सामाजिक दृष्टिकोणसे नारी अगर आधी दुनिया है, तो व्यक्तिगत रूपसे वह अर्द्धाङ्गिनी है। हिन्दू धर्ममें जो अर्द्धनारीश्वरकी कल्पना की गयी है, उसका मर्म साधारण लोग भी सफलतापूर्वक समझ सकें, इसीलिए उसने नारीको अर्द्धाङ्गिनी बताया और हिन्दू धर्मके अनुसार होनेवाले विवाहोंका अर्थ यह लगाया गया कि विवाह हो जानेपर पुरुष और नारीका अस्तित्व अलग-अलग नहीं होता, बल्कि दोनोंमें इतना एकात्म्य हो जाता है कि रक्त, मांस, मज्जा सभीसे वे एक हो जाते हैं। धर्म-ग्रन्थोंके इस आधारपर ही प्रीवी कौन्सिलके फैसलोंमें यह बात स्वीकार की गयी।

पर समाजमें आज इस महान्‌ सिद्धान्तकी वस्तुतः कितनी उपेक्षा की जा रही है! जिस नारीको अर्द्धाङ्गिनी कहा जाता है, उसे समाजने आज किस स्थितिमें डाल दिया है? समाजमें नारीकी आज क्या स्थिति है? सभी तरहकी शिक्षा-दीक्षासे शून्य आज वह घरकी चहारदीवारीके भीतर पड़ी सड़ती है और इस प्रकार संसार-भरका अन्धविश्वास, संसार-भरका अज्ञान उसके भीतर भरा रहता है। प्रकाश न हो, तो अन्धकार मिटे कैसे? पर समाज नारीको शिक्षा नहीं देना चाहता, वह उसे घरके बाहर भी आने नहीं देना चाहता और दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि आज भी ऐसे लोगोंका अभाव नहीं है, जो इस विषयपर विवाद करते हैं कि नारीको उच्च शिक्षा देनी चाहिए या नहीं। नारीको स्वाधीनता तो मिलनी ही नहीं चाहिए, पर अगर मिले, तो किस अंश तक। क्या घरके बाहर वह अकेली जा सकती है, उसे क्या ऐसा करनेका कुछ भी अधिकार प्राप्त है?

और मजा यह है कि ये सब प्रश्न इसलिए उठाये जाते हैं कि पुरुष जातिको इस बातकी आशङ्का सदासे रही है कि नारीको पढ़ा-लिखाकर समाजमें निकालनेका अर्थ होगा, उसकी चरित्र-हीनता। अपने सतीत्वके नामपर वह आज दासत्वका जीवन व्यतीत कर रही है। सतीत्वके नामपर वह 'लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर' बनी हुई है और सतीत्वके नामपर उसे और तो और, घरके भीतर भी पर्देमें रहना पड़ता है। जैसे इसका अर्थ यह हुआ कि यूरोप-अमेरिकाकी महिलाओंमें सतीत्व है ही नहीं, जैसे वहांके पुरुषोंके लिए अपनी पत्नियोंकी चरित्रहीनताका कोई अर्थ नहीं।

लेकिन वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। यूरोप और अमेरिकाके सामाजिक दृष्टिकोण दूसरे हैं। वे अपनी पत्नियोंको इतना निर्बल नहीं समझते कि वे बाहर आयीं और गुण्डोंका शिकार हुईं। उनका चरित्र भी इतनी नाजुक चीज नहीं समझा जाता कि घरसे बाहर निकलते ही नारियोंके सतीत्व-

का खून हो जाय। उनका दृष्टिकोण जीवनके प्रति अधिक स्वस्थ है, और साथ ही वहांकी नारियां अपनेको अधिक सबल समझती हैं और वास्तवमें हैं। हमारे यहांकी असूर्यम्पश्या नारियां अपने इर्द-गिर्दके स्थानोंका भी पता-ठिकाना नहीं जानतीं और कौन भारतीय इस बातका अनुभव नहीं कर सका होगा कि हमारी नारियां बाहर निकलते ही कितना चौंकती और घबराती हैं। ऐसी नारियोंको अबला समझना अस्वाभाविक नहीं है, पर उनकी इस स्थितिकी जिम्मेदारी किसपर है। यूरोप और अमेरिकाकी नारियां अगर अकेले बाजार जाकर सौदा कर लायेंगी और अपने ऊपर अत्याचार होनेकी उन्हें तनिक भी आशङ्का नहीं होगी, तो इस कारणसे नहीं कि वे पुरुषों द्वारा सुरक्षित हैं, बल्कि इसलिए कि वे अपनेको असहाय नहीं समझतीं। घरके बाहर निकलते ही उन्हें विदेश-सा नहीं जान पड़ता और न नजाकतको उन्होंने गुण मान रखा है। नारीका जो आदर्श कवितामें रखा गया था, उस नजाकतके विरुद्ध वे आज अपनेको अखिल सबल, स्वस्थ और निर्भीक मानती और वैसी ही बनाना चाहती है। "चकित हिरनी-सी कमलनयनी" का आदर्श उन्हें प्यारा नहीं है। वे तो आज जरूरत पड़नेपर युद्धमें भी भाग ले सकती हैं, जबकि हमारे यहांकी देवियोंकी महिमा अब भी कलाकारोंकी दृष्टिमें केवल कटाक्ष चलानेमें ही है। यह है हमारे समाजका नैतिक धरातल!

तो समाजकी इस दयनीय अवस्थाकी जिम्मेदारी किसपर है? पहले तो आप नारियोंको सारे बन्धनोंसे जकड़ रखेंगे और इस प्रकार उनके विकासके सारे साधनों और सारी सुविधाओंसे उन्हें रहित कर देंगे और जब उनकी स्थिति ऐसी दयनीय हो जायगी, तब आप उन्हें अबला कहकर उन्हें उपेक्षाकी नजरसे देखेंगे। धर्मग्रन्थोंने नारीको बिवाह हो जानेपर अर्द्धाङ्गिनी बनाया; पर आधा अङ्ग अगर इस प्रकार निर्बल और अविकसित रह गया, तो दूसरा आधा अङ्ग कभी पूर्ण विकसित हो सकता है? नारियोंकी यह दुरवस्था केवल नारी-समाजके लिए ही घातक नहीं है, बल्कि सारे समाजपर इसकी प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रह सकती। सन्तान समाजका अङ्ग है और नारीकी स्थितिका अबोध सन्तानपर बहुत बड़ा असर पड़ता है, इसलिए नारीकी स्थितिका सारे समाजपर प्रभाव पड़ता है।

इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि हम आंखें खोलकर देखें कि नारी-सम्बन्धी हमारी नीतिकी प्रतिक्रिया समाजके लिए कितने भीषण परिणामोंको लेकर उपस्थित होती है। हम आंखें खोलकर देखें कि हमने नारीको जो इतने बन्धनोंसे जकड़ रखा है, उससे सारे समाजकी कैसी दुर्गति हो रही है। नारीकी अशिक्षा परिवारोंमें आज जिस गृहकलहका बीज बो रही है, नारीकी निर्बलता और बाहरी दुनियासे उसकी इतनी पृथकता आज उसमें कितनी निर्बलता और उसके परिणाम-स्वरूप गुण्डों और अत्याचारियोंका शिकार होनेके लिए कितना साधन जुटा रही है, नारीकी असभ्यता और प्रगतिके साथ चलनेमें उसकी अयोग्यतासे आज कितने ही दम्पतियोंका वैवाहिक जीवन विषमय बन रहा है, और इसके दुष्परिणाम किस प्रकार सामाजिक अपराधों और भीषण काण्डोंके रूपमें दिखाई पड़ रहे हैं, इनकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता, तो हमारा सारा समाज ही किसी दिन चलकर उस अवस्थामें पहुंच जायगा, जब कि समस्त शरीर विषकी एक बूंदसे जहरीला हो जाता है। इसलिए समाजको इस आत्म-घातकी राहसे अलग चलना चाहिए। समाजको नारीको मुक्ति देनी होगी, उसकी उच्छृङ्खलता और उसकी दानवी पिपासाके लिए नहीं, उसकी मानवता और उसकी आत्माके विकासके लिए। नारीको उसकी उन्नतिके सारे साधनोंसे वञ्चित कर देनेका अर्थ समाजको पंगु बना देनेके समान है।

समाज आज नारीको किसी प्रकारकी भी स्वाधीनता नहीं देना चाहता; इसके लिए वह कारण यह बताता है कि इससे नारीमें चरित्रहीनता आ सकती है। यद्यपि यह कोई तर्क नहीं है, पर अगर इसे मान भी लिया जाय, तो भी इसके लिए नारियोंको ही दोषी क्यों बताया जाय। पुरुष इसमें नारीकी अपेक्षा कहीं अधिक दोषका भागी है, पर इसके लिए पुरुषको तो कभी जञ्जीरोंमें बांधकर नहीं रखा गया। किन्तु पुरुषोंके अपराधके लिए नारीको कठोर यातनायें दी जा रही हैं। ऐसी थोथी बातें अब नारी-समाजको भुलावेमें नहीं डाल सकतीं, अब तो आवश्यकता है कि पुरुषोंके समान ही उसे भी सारे अधिकार दिये जायें और वह भी अपने और साथ ही समाजके पुनरुद्धारमें अपनी सारी शक्तियोंसे योगदान दे सके।

—मनोरमा गुप्त, एम० ए०

चीनी नारियोंका आदर्श

जापानके इतने दिनों तक युद्ध करते रहनेपर भी चीनके कुछ अञ्चलोंपर ही उसका झण्डा गड़ सका है, पर कहीं भी चीनकी आत्मा कुचली नहीं जा सकी है। चीनके कितने ही पर्यटकोंने अत्यन्त प्रशंसापूर्ण शब्दोंमें यह बात मञ्जूर की है कि चीनके घरोंमें इस कठिन सङ्कटकालमें भी उस आतङ्क और निराशाके दर्शन नहीं होते, जिसकी कल्पना चीनके शत्रुओंने की थी। मादम चांग-काई-शेकका योगदान चीनके युद्धमें अत्यन्त मूल्यवान साबित हुआ है, पर चीनके घरोंमें उनके आदर्शका जैसा परिणाम दिखाई पड़ा है, उसका उदाहरण शायद ही अन्यत्र दिखाई पड़े।

जापानके युद्धके कारण और वह भी उसके दीर्घकालीन होनेके कारण चीनी घरोंमें असन्तोष फैलता और पारिवारिक प्रश्नोंकी परेशानियोंमें पड़कर चीनका नैतिक साहस बहुत कुछ क्षीण हो जाता, पर चीनी नारियोंने कभी भी ऐसा होने नहीं दिया। चीनी नारियोंने कभी भी अपने व्यक्तिगत दुःखोंको देश-सेवाके सामने प्रधानता नहीं दी। चीनी नारियां सदासे परिश्रमी और मितव्ययी रही हैं और इस सङ्कटकालमें उनके ये गुण और भी विकसित हो गये हैं। इस दीर्घकालीन युद्धमें चीनको काफी स्वावलम्बी होना पड़ा है, क्योंकि दूसरी सरकारें उसे उधार माल नहीं देना चाहतीं। चीन और जापानके सैनिक युद्धके अतिरिक्त दोनों देशोंके सिक्कों—युआन और येन—का युद्ध भी कुछ कम नहीं हो रहा है, इसलिए विदेशोंका बाजार चीनियोंके लिए जरा महंगा पड़ रहा है। युद्धकी स्थितिके कारण उसके लिए यह वाञ्छनीय भी नहीं रहा कि वह दूसरोंके सहारे पड़ा रहे।

इन सारी स्थितियोंका मुकाबला कैसे किया जाय? चीनी नारियोंके कार्य इस प्रश्नका उत्तर देते हैं। एक पत्रकारने चीनका भ्रमण करनेके पश्चात् लिखा है:—

"चीनी महिलाओंकी श्रमशीलता और सहन करनेकी शक्ति देखकर मैं दङ्ग रह गया हूं। शहरोंसे लेकर गांवों तकका मैंने भ्रमण किया है और मैंने सर्वत्र यही बात देखी कि नारियां अपने परिवारोंको स्वावलम्बी बनानेके लिए इतनी चिन्ताशीलता दिखाती और इतना श्रम करती हैं। स्त्रियां घरके सारे काम-काज खुद करतीं, और अपने घरके लिए चर्खेपर इतना अधिक सूत तैयार कर लेती हैं, जो काफी होता है। वे अपना समय तनिक भी बरबाद नहीं होने देतीं और श्रमका जो महत्त्व है, उसका उन्होंने अनुभव किया है। उनके घरोंके कितने ही सामान उनके बनाये हुए मिलेंगे अथवा जिन सामानोंको उन्होंने स्वयं नहीं बनाया है, वे उन सामानोंके बदलेमें आये हैं, जिन्हें उन्होंने स्वयं तैयार किया था। बिना किसी दफ्तर अथवा कर्मचारीके उनके मुहल्लोंमें ऐसा काम होता है, मानो सहयोग-समितियां काम कर रही हों। इस कठिन कालमें उन्होंने चर्खेको इस प्रकार अपनाया है और गृह-शिल्पोंको उन्होंने इस उन्नत दशाको पहुंचाया है कि चीनके गांवोंका परावलम्बन बहुत अंशोंमें दूर हो गया है। वे केवल उन बातोंके लिए दूसरोंका मुंह ताकते हैं, जिन्हें वास्तवमें कर नहीं सकते।

कुमारी बुलबुल मित्रा—इस वर्ष आपने नागपुर यूनिवर्सिटीसे इतिहासमें एम.ए. पास किया है। हिन्दू यूनिवर्सिटीसे सङ्गीतमें भी आप ग्रेजुएट हैं।

"जापानके आक्रमणोंसे चीनकी आर्थिक कमर कभी टूट गयी होती और उसके नैतिक साहसका दिवाला निकल गया होता, अगर चीनी महिलाओंसे इनकी रक्षा न हुई होती। चीनी महिलाओं द्वारा ऐसा प्रबन्ध होनेपर चीनी पुरुषोंको परिवारकी कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि उन्होंने घरको नहीं संभाला, तो उसकी दशा दयनीय हो जायगी। चीनी जीवनमें ये दोनों ही बातें महान् नैतिक साहस भरनेवाली सिद्ध हुई हैं। और यह कहनेमें मुझे तनिक भी हिचक नहीं होती कि पुरुषोंके युद्धमें नारियोंका यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है।"

क्या शिक्षित लड़कियां विवाहके अयोग्य होती हैं ?

एक महाराष्ट्र विदुषीने शिक्षित लड़कियोंकी वैवाहिक समस्यापर लिखते हुए कहा है :—

एक समय था, जब हमारे देशके युवक दहेज आदिका प्रलोभन छोड़कर इस बातपर जान देते थे कि कोई शिक्षित युवती विवाहके लिए मिल जाय। उस समय स्त्री-शिक्षाका नितान्त अभाव था और युवक शिक्षा प्राप्त कर नया दृष्टिकोण और नयी उमङ्गें लेकर निकलते थे, तब उन्हें इस बातकी खोज होती थी कि कोई ऐसी सहचरी मिले, जो जीवनमें उनके लिए भार न हो और जिससे मानसिक सामञ्जस्य भी स्थापित किया जा सके।

यह ऐसी स्थिति थी, जिसमें मध्यवित्तके लोग अपनी सारी आशायें कन्याकी शिक्षाकी ओर लगाये रहते। वे समझते, अगर उनके पास काफी पैसे दहेजके लिए नहीं हैं, तो भी उन्हें अच्छा घर-वर मिल जायगा, अगर उन्होंने कन्याको शिक्षित एवं सुसंस्कृत कर दिया। और जब यह भावना बढ़ी, तो पुराने विचारके लोगोंके विरोधी रहते हुए भी कन्याओंकी शिक्षाकी औसत बढ़ने लगा। पिछले वर्षोंमें स्त्री-शिक्षाका उन्नत प्रगतिमें इस विचारका महत्वपूर्ण स्थान है।

पर आजकी स्थिति क्या है ? आज क्या नारी-शिक्षाका मूल्य वही रह गया है ? आज शिक्षित नारीके लिए सुयोग्य वरोंका अभाव क्यों हो गया है ? समाजके सामने यह प्रश्न बड़ी उलझनोंके साथ आया है और यह अपना समाधान चाहता है।

क्या शिक्षित युवती विवाहके-वैवाहिक गार्हस्थ्य जीवनके योग्य नहीं होती ?

युवक उत्तर देता है, हो सकती है, पर होती नहीं। वह कहता है कि शिक्षा पाकर नारी गृहस्थीके कामोंके लिए अयोग्य होती है। वह उन सारी बातोंमें दिलचस्पी नहीं लेती, जिनके बिना गार्हस्थ्य जीवनकी गाड़ी चल नहीं सकती। उसे जो शिक्षा मिलती है, उसके साथ-साथ वह तब तक गृहस्थीके योग्य नहीं हो सकती, जब तक कि उससे विवाह करनेवाला व्यक्ति काफी सम्पत्तिशाली न हो। उसके मिजाज ऐसे हो जाते हैं, उसकी स्वाधीनता और समानाधिकारकी इच्छा ऐसी हो जाती है और उसकी आदतें इतनी खर्चीली हो जाती हैं कि साधारण श्रेणीका युवक उनका बोझ उठा नहीं पाता और उसका वैवाहिक जीवन, विवाहके पहलेका सारा रोमान्स ही नष्ट हो जाता है।

युवककी इस शिकायतमें कोई तथ्य नहीं है, ऐसा तो नहीं कह सकते, पर इसकी जिम्मेदारी नारीपर ही एकमात्र नहीं है। शिक्षा और संस्कृति पाकर नारी अगर आत्मचेतनामें अधिकार पहचानती और उसे पाना चाहती है, तो उसका यह अपराध नहीं है और इसके लिए अगर वह प्रियपात्री नहीं हो पाती, तो यह उसका दुर्भाग्य मैं न मानूंगी। नारीको लेकर युगोंसे जो धारणा बनी आयी है, उसमें परिवर्तनकी आवश्यकता है और इसमें जब तक परिवर्तन नहीं हो जाता, तब तक दाम्पत्य-जीवन सुखकी सच्ची नींवपर खड़ा नहीं हो सकता। पुरुष नारीको दासी बनाकर रखनेमें ही सुख मानता है, तो यह उसकी सच्ची भावना नहीं है और न इसके आधारपर दुनिया चल ही सकेगी। पुरुष और नारीको युगधर्मके अनुकूल एक दूसरेके अधिकारोंके प्रति अपना-अपना कर्तव्य पहचानना होगा और इसकी पहचानसे ही उन साधनोंको सोच निकालना होगा, जो हमारे व्यक्तिगत जीवनके सुखके आधार होकर सार्वजनिक सुख—शान्तिकी स्थापना कर सकेंगे। हां, इस बातमें मैं इनकार नहीं कर सकती कि भारत जब विलायत नहीं है, तब भारतीय बहनोंकी शिक्षा-दीक्षाका निश्चय करते समय अपनी और समाजकी आवश्यकताओंकी उपेक्षा नहीं करनी होगी। ऊपरके प्रश्नका उत्तर इसी बातमें सन्निहित है।
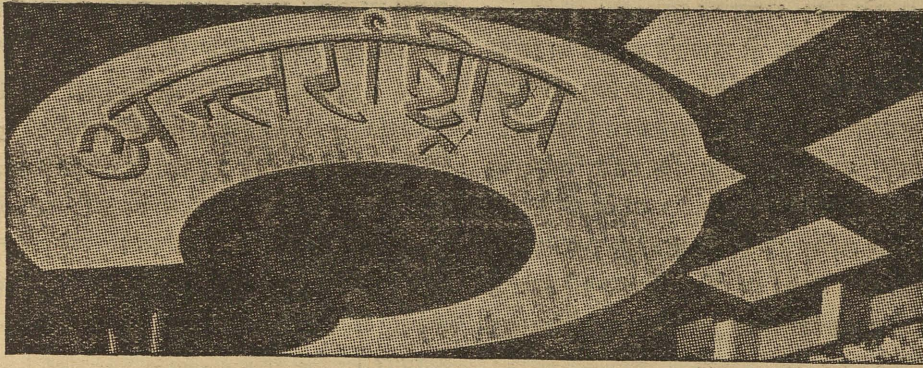
विराम-सन्धि

जर्मनीके सामने फ्रान्सके आत्मसमर्पण कर देनेके कारण जर्मनी और फ्रान्स तथा फ्रान्स और इटलीमें जो विराम सन्धियां हुई हैं, उनकी शर्तें ऐसी हैं, जो फैसिस्ट शक्तियोंको युद्धकालमें और भी प्रभावशाली बना देनेवाली हैं। उक्त राष्ट्रोंकी प्रामाणिक रूपमें सन्धिकी जो शर्तें प्रकाशित की गयी हैं, वे यों हैं :—

फ्रान्स और इटलीकी सन्धिकी शर्तें

फ्रान्समें, फ्रेञ्च उत्तरी अफरीकामें, फ्रेञ्च उपनिवेशोंमें तथा उन प्रदेशोंमें जहां राष्ट्रसङ्घके आदेशसे फ्रान्स शासन करता है, फ्रान्स युद्ध बन्द कर देगा। जल-युद्ध और आकाश-युद्ध भी फ्रान्स बन्द कर देगा।

विराम सन्धिकी शर्तें लागू होनेपर, और वे जब तक लागू रहेंगी तब तक, सब युद्धक्षेत्रोंमें इटालियन सेनायें उन स्थानों-पर कायम रहेंगी, जहां तक वे पहुंच चुकी हैं।

फ्रान्समें इटालियन सेनायें जहां रहेंगी, वहांसे ५० किलो-मीटर आगे तकके फ्रेञ्च प्रदेशमें विराम-सन्धि-कालमें कोई सेना नहीं रहेगी।

ट्यूनिसमें लीबिया और ट्यूनीसियाकी सीमा-रेखा और साथके नक्शेमें बनायी गयी रेखाके बीचके प्रदेशमें विराम-सन्धिकालमें कोई सेना न रखी जा सकेगी।

अलजीरियामें और लाइबेरियाके दक्षिणके उन फ्रेञ्च अफरीकन प्रदेशोंमें, जो लीबियाकी सीमापर हैं, विराम-सन्धि-कालमें लीबियाकी सीमासे २०० किलोमीटर चौड़े प्रदेशमें कोई सेना न रहेगी।

इटली और ब्रिटिश साम्राज्यके बीच जब तक युद्ध चल रहा है, तब तक तथा विराम-सन्धिकालमें फ्रेञ्च सुमालीलैण्ड-के सारे समुद्र-तटपर कोई सेना न रखी जा सकेगी।

इटलीको बराबर इसका पूरा अधिकार रहेगा कि सब तरहकी बारबरदारीके लिए जीबूती बन्दरगाह, उसके सब उपकरण तथा जीबूती-अदीस अबाबा रेलवेकी फ्रेञ्च लाइनका उपयोग करे।

इन प्रदेशोंसे युद्ध बन्द होनेके बाद दस दिनके अन्दर फ्रेञ्च सेनायें हटा देनी होंगी—किलेबन्दीकी बारिकों, शस्त्रा-गारों और सैनिक इमारतोंकी देख-भालके लिए आवश्यक कर्मचारी तथा उस प्रदेशमें शान्ति-रक्षाके लिए आवश्यक सेना ही, जिसकी संख्या बादमें इटालियन विराम-सन्धि-कमीशन निश्चित करेगा, वहां रखी जा सकेगी।

इटली और ब्रिटेनके बीच जब तक युद्ध हो रहा है, तब तक तूलों, बिज़ातें, आजाशियो और ओरानाके जल-सैनिक अड्डों तथा सैनिक प्रदेशोंसे १५ दिनके अन्दर सब सेना हटा ली जायगी।

विराम-सन्धिकी शर्तोंके पालनकी गारण्टीके तौरपर इटली यह मांग पेश: कर सकता है कि जो फ्रेञ्च सेनायें इटा-लियन सेनाओंसे लड़ीं या जो इटालियन सेनाओंके सामने खड़ी हैं, उनके सब या कुछ शस्त्रास्त्र, तोपें, फौलादी गाड़ियां, टङ्क, मोटर गाड़ियां, घोड़ा गाड़ियां और गोला-बारूद इटली-को दे दी जायं।

फ्रेञ्च जङ्गी बेड़ा निर्दिष्ट बन्दरगाहोंमें एकत्र होगा और जर्मनी-इटलीकी निगरानीमें विघटित कर दिया जायगा तथा उसके शस्त्रास्त्र ले लिये जायंगे—केवल वे जङ्गी जहाजी दस्ते

छोड़ दिये जायंगे, जिन्हें जर्मनी और इटलीकी सरकारें फ्रेञ्च उपनिवेशोंकी रक्षाके लिए आवश्यक समझेंगी।

वे सब फ्रेञ्च जङ्गी जहाज, जो फ्रान्सके समुद्रके बाहर हों —उन्हें छोड़कर, जो फ्रेञ्च उपनिवेशोंकी रक्षाके लिए आवश्यक माने जाते हैं—फ्रान्सके बन्दरगाहोंमें वापस लाये जायंगे।

इटली-सरकार घोषणा करती है कि उसके नियन्त्रणमें रखे गये फ्रेञ्च जङ्गी जहाजोंसे इस युद्धमें काम लेनेका उसका इरादा नहीं है और सन्धि हो जानेके बाद वह इन जहाजोंको पानेका दावा नहीं करना चाहती। विराम-सन्धिकालमें इटली सरकार फ्रेञ्च जहाजोंसे सुरङ्गें साफ करनेके लिए कह सकती है।

फ्रेञ्च अधिकारियोंको उन सब जलसैनिक महत्त्वके प्रदेशों तथा जलसैनिक अड्डोंसे, जिनमें सेना न रखी जा सकेगी, दस दिनके अन्दर सुरङ्गें आदि निकालकर उन्हें निरापद बना देना पड़ेगा।

फ्रेञ्च सरकार इसकी जिम्मेदारी लेती है कि अपनी सेनाके सैनिकों तथा साधारणतः फ्रेञ्च नागरिकोंको इटलीके विरुद्ध युद्धमें योग देनेके लिए अपने प्रदेशसे बाहर न जाने देगी।

फ्रेञ्च सरकार इसकी जिम्मेदारी लेती है कि व्यापारी जहाजोंको तब तक बन्दरगाहोंमें रहना पड़ेगा, जब तक जर्मनी तथा इटलीकी सरकारें उन्हें पूर्णतः या अंशतः काम करनेकी अनुमति न दें।

माल ढोनेवाले जो फ्रेञ्च जहाज विराम-सन्धिके समय फ्रान्सके या फ्रान्सके नियन्त्रित बन्दरगाहोंमें न हों, वे ऐसे बन्दरगाहोंमें बुला लिये जायंगे या उन्हें तटस्थ देशोंके बन्दरगाहोंमें चले जानेका आदेश दिया जायगा।

माल ढोनेवाले जो इटालियन जहाज इटलीको माल ले जाते हुए पकड़े गये हों, वे इटलीके सिपुर्द कर दिये जायंगे।

फ्रेञ्च प्रदेश या फ्रेञ्च शासित प्रदेशोंसे कोई हवाई जहाज बाहर न जायगा। सब फ्रेञ्च हवाई अड्डे सारे उपकरणों सहित इटली या जर्मनीके नियन्त्रणमें रहेंगे।

फ्रान्सके सब बेतारके तारके स्टेशन बन्द हो जायंगे। फ्रान्स और उत्तर अफ्रीका, शाम तथा फ्रेञ्च सुमालीलैण्डके बीच बेतारके सम्बन्धके बारेमें इटालियन विराम-सन्धिकमीशन निश्चय करेगा।

सब इटालियन युद्धबन्दी और राजनीतिक कारणों या युद्धके सम्बन्धमें नजरबन्द, गिरफ्तार या कैद सब इटालियन नागरिक तुरत इटली सरकारके हवाले किये जायंगे।

जर्मनी और फ्रान्सकी सन्धि

सन्धिके लिए जर्मनीने जो शर्तें पेश की थीं, उनका निम्नलिखित संक्षिप्त आशय २३ जूनको लन्दनमें प्रकाशित हुआ था, जिसे मार्शल पेतांकी सरकारने स्वीकार कर लिया :—

जर्मनी फ्रान्सके समस्त पश्चिमी समुद्रतट तथा जेनेवासे टौर्सतक खींची जानेवाली रेखाके उत्तरके सभी प्रदेशोंपर जर्मनी अधिकार कर लेगा, जिसका व्यय-भार फ्रान्स उठायेगा।

फ्रान्सकी सशस्त्र सेनाओंको भगाङ्कर सैनिकोंको निरस्त्र कर दिया जायगा। अनधिकृत फ्रान्समें कितनी बड़ी सेना रहेगी इसका निर्णय जर्मनी तथा इटली करेंगे।

जर्मनी अच्छी अवस्थामें सभी तोपखानों, टैङ्कों, विमानों तथा युद्ध-सामग्रियोंको समर्पित कर देनेकी मांग पेश कर सकता है।

कोई भी फ्रेञ्च सेना फ्रान्ससे बाहर अन्यत्र नहीं जा सकती। कोई भी भौतिक सामग्री ब्रिटेन नहीं भेजी जा सकती। कोई भी फ्रेञ्च व्यापारिक जहाज बन्दर नहीं छोड़ सकता और फ्रान्सके बाहर जितने जहाज हैं, उन्हें अवश्य बुला लेना होगा।

सारी औद्योगिक संस्थाओं तथा स्टाकोंको सुरक्षित अवस्थामें जर्मनीके हवाले कर देना होगा। यही शर्त सभी बन्दरों, किलों, नौ-कारखानों तथा यातायातके साधनोंके लिए भी है।

अनधिकृत प्रदेशके किसी रेडियोसे काम नहीं लिया जायगा।

जर्मनी तथा इटलीको वाणिज्य-सामग्रियोंके आदान-प्रदानके लिए फ्रान्सको सुविधायें देनी होंगी।

युद्धकालके जर्मन बन्दियोंको छोड़ देना होगा। किन्तु फ्रान्सके युद्धकालीन बन्दियोंको सन्धिपर समझौता होने तक बन्दी अवस्थामें रखा जायगा।

फ्रेञ्च जहाजी बेड़ेको फ्रान्सके प्रादेशिक समुद्रमें लाना होगा, जहां जहाजोंको निरस्त्र किया जायगा और जर्मन तथा इटालियन देख-रेखमें उन्हें उन बन्दरोंमें नजरबन्द रखा

जायगा, जिनका निर्देश जर्मनी तथा इटली करेंगे। बेड़ेका कुछ भाग, जिसका निर्णय जर्मन तथा इटालियन सरकारें करेंगी, फ्रान्सके उपनिवेशोंके हितोंकी रक्षाके लिए स्वतन्त्र रहेगा।

इटालियन सरकारके साथ इसी प्रकारकी सन्धि फ्रेञ्च सरकार द्वारा कर लेनेपर तुरन्त ही उक्त सन्धिके अनुसार कार्य किया जायगा, यदि फ्रेञ्च सरकार इन शर्तोंको पूरा नहीं करेगी, तो जर्मनी जब चाहेगा, तभी सन्धिको रद्द कर सकता है।

बादको जर्मन सरकारकी न्यूज एजेन्सी द्वारा प्रकाशित सन्धिकी शर्तों और उपर्युक्त शर्तोंमें थोड़ी-सी भिन्नता पायी जाती है। इसके अनुसार फ्रान्सके जिन अञ्चलोंपर जर्मनोंका अधिकार हुआ है, उनके सभी अधिकारियों तथा सार्वजनिक आफिसोंको फ्रान्सकी सरकारको तत्काल आदेश देना होगा कि वे जर्मन कमाण्डकी सारी आज्ञाओंको ठीक-ठीक मानकर उनके अनुकूल आचरण करें।

एक दूसरी शर्तके अनुसार फ्रान्समें न केवल युद्धकालके जर्मन बन्दियोंको छोड़ना होगा, बल्कि दूसरे नागरिकोंको भी, जो जर्मनीके पक्षमें प्रचारके अपराधमें पकड़े गये हैं, तत्काल रिहा करना होगा।

जर्मनीने वचन दिया है कि फ्रान्सके जहाजी बेड़ेका लड़ाईमें कोई उपयोग नहीं किया जायगा और न लड़ाईके बादकी सन्धिके बाद जर्मनी उसके लिए अपना दावा ही पेश करेगा। कुछ और शर्तोंमें भी इधर-उधरके फेरफार हुए हैं।

रूसके लिए बेसरबियाका महत्त्व

२९ जूनके 'न्यूयार्क टाइम्स'ने इस बातका रहस्योद्घाटन किया था कि रूस और जर्मनीमें इस बातका समझौता हो चुका है कि बेसरबिया रूसको वापस मिले और उसने यह भी लिखा कि जर्मनी इस बातके लिए जोर डाल रहा है कि इसके लिए युद्ध करनेकी भी आवश्यकता न पड़े।

कुछ वर्षोंके बाद अकस्मात् बेसरबियाका नाम रूसकी मांगोंके साथ प्रकट हुआ है, इसलिए कुछ लोग चौंक पड़े हैं। लेकिन एक समय था, जब बेसरबियाको लेकर रूसमें बराबर प्रचार होता रहा है। बोलशेविक सरकारकी स्थापनाके बादसे १९२६-२७ तक यह प्रचार होता रहा। उस समय सोवियट रूसने इस ख्यालसे यह प्रचार करना नहीं शुरू किया था कि उसका यह पुराना प्रान्त उसे मिल जाय। बल्कि इसका उद्देश्य कुछ और ही था। बात यह थी कि रूसी यूक्रेनमें उन दिनों सच्चे कम्यूनिस्टोंकी संख्या बहुत कम थी और वहांकी भी बहुसंख्यक जनता—किसानोंको रूसने इस बातका आश्वासन, बल्कि वचन दिया था कि वे सभी यूक्रेनियनोंको एक सूत्रमें जोड़ देंगे। यह आश्वासन रूस तथा उसकी विचार-धाराके प्रति उन्हें आकर्षित करनेके लिए दिया गया था। रूसके लिए यह साधारण समस्या न थी, क्योंकि इसका अर्थ था पूर्वी गैलीशिया, वल्हीनिया, उत्तरी बेसरबिया और उत्तरी बुकोविनाके सभी यूक्रेनियनोंको एकत्र करना। लेकिन रूसमें यूक्रेनके जो हित थे, उनका तकाजा था कि रूस इतनी बड़ी जिम्मेदारी ले और इसलिए रूसने बेसरबिया लौटानेके लिए गैलीशियामें आन्दोलन करना शुरू किया।

तो फिर इधर वर्षों रूसने यह आन्दोलन ढीला क्यों कर दिया? इसके सम्बन्धमें दो बातें हैं। पहली बात तो यह है कि आगे चलकर यूक्रेनकी स्थितिपर रूसका बहुत अधिक नियन्त्रण हो गया। वहांके विद्रोहियोंको दबा दिया गया और रूसके लिए, क्रान्तिके बाद ही अपनी प्रारम्भिक अवस्थाओंके बाद, इस बातकी आवश्यकता नहीं रह गयी कि यूक्रेनको समझा-बुझाकर रखा जाय, क्योंकि तब तक यूक्रेनपर रूसका एक प्रकारसे शासन-सा हो गया।

दूसरा कारण यह हुआ कि जेकोस्लोवेकियाके साथ रूसका मैत्री-सम्बन्ध अब तक बढ़ चला था और लघुराष्ट्रोंके साथ सुन्दर सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए रूमानियाके साथ सदिच्छापूर्ण भावना रखना आवश्यक हो गया।

लेकिन आजकी जैसी स्थिति हो गयी है, उसमें रूस फिर बेसरबियाकी मांगको चाहने लगा है। इस सम्बन्धमें आर्थिक कारणोंसे भी आवश्यक हैं राजनीतिक कारण। यूरोपके नक्शेपर नजर डालते ही बेसरबियाका राजनीतिक महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। समस्त बाल्टिक किनारोंपर रूसी फौज रहती है। उत्तर-पश्चिममें लिथुआनिया लालसेनाका एक अड्डा है। दक्षिण और दक्षिण-पूर्वमें पूर्वी गैलीशिया है, लेकिन वहां रूसकी स्थिति उतनी मजबूत नहीं है, क्योंकि पीछे ही रूमानिया है। लेकिन रूस केवल अपनी फौजी स्थिति ही

यहीं मजबूत करनेके लिए उसे नहीं लेना चाहता, बल्कि उसे प्राप्त कर उसके लिए रूस-रूमानिया-सीमान्त—नीस्टर नदीके मैदानों तथा डेन्यूबके मुहानेकी ओर बढ़नेका अवसर मिलेगा, जिससे दक्षिण-पूर्वसे मध्य यूरोपमें प्रवेश करनेका उसे वैसे ही रास्ता मिल जायगा, जैसे बाल्टिक राज्योंपर रूसके प्रभुत्वके कारण उत्तरमें उसे अवसर मिला है। इसका अर्थ यह होगा कि बेसरबिया, उत्तरी बुकोविना, पूर्वी गैलीशिया उसके हाथमें आ जायेंगे।

पिछले दिनों बाल्कन राज्योंमें रूसके जो प्रयत्न हुए हैं, उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि रूस बेसरबिया चाहता है। वर्षोंसे बलगेरियाके साथ रूसके कूटनीतिक सम्बन्ध रहे हैं, पर किसीने इस तरफ कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। इधर हालमें रूसकी वैदेशिक नीतिमें उसका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया है। बलगेरियाके साथ रूसने व्यापारिक सन्धि की है, पर इसका उद्देश्यकी आर्थिक नहीं, राजनीतिक ही है। क्योंकि बलगेरियाके आयात और निर्यात दोनों रूसके समान ही हैं। बलगेरिया जिन वस्तुओंको बाहर भेजता है, उनकी रूसमें अधिकता है और बलगेरियाको जिन मशीनों, कल-पुर्जोंकी आवश्यकता होती है, उसकी कमी स्वयं रूसमें रहती है। अतः दोनोंके आर्थिक समझौते भी राजनीतिक महत्त्व ही रखते हैं। और नक्शेपर एक नजर डालते ही किसके सामने यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि बेसरबियाके लिए बलगेरियाको प्रभाव-क्षेत्र बनाना कितना आवश्यक है।

इतना लिखनेके बाद २८ जूनको पता चला है कि रूमानियाने बेसरबिया तथा उत्तरी बुकोविना रूसके हवाले कर दिया।

साहित्य-निर्माणका कार्य

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हिन्दीकी प्रतिनिधि संस्था है और समस्त हिन्दी भाषा-भाषियोंका ही नहीं, दूसरी भाषाओंके विद्वानोंका भी इस संस्थाको सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त है। सच्ची लगनके कुछ कर्मी भी उसे प्राप्त हैं और आज उसकी जैसी स्थिति है, उसमें अपने पास साधन एकत्र करनेमें भी उसे बहुत कठिनाइयां नहीं उत्पन्न होंगी।

पर सम्मेलनसे एक शिकायत आम तौरपर लोगोंकी रही है कि उसने हिन्दी-प्रचारके लिए जहां काफी महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किये हैं, वहां ठोस साहित्य-निर्माणकी ओर उसने ध्यान नहीं दिया है। सम्मेलन-जैसी संस्था इस विषयमें अब तक बहुत पीछे पड़ी हुई है। उसे चाहिए कि वह ठोस साहित्य-निर्माणकी दिशामें कदम उठाये। उसका कर्तव्य केवल हिन्दी-परीक्षाओंका सञ्चालन तथा उन परीक्षाओंके लिए पाठ्य पुस्तकें निकालनेमें ही समाप्त नहीं हो जाता। हिन्दीके दूसरे अभावोंकी पूर्तिपर भी उसे ध्यान देना चाहिए। वह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन है, केवल हिन्दी-प्रचार-समिति नहीं।

हिन्दी-साहित्यके कितने ही ऐसे अङ्ग हैं, जिनकी पूर्ति होनी आवश्यक है। कितने ही विषयोंपर हमारे यहां अब भी साहित्यकी कमी है और केवल व्यापारिक दृष्टिसे प्रकाशन-कार्य करनेवाली संस्थाओंसे इस बातकी आशा करना कि वे ऐसे कामोंको हाथमें ले सकेंगी, जिनकी आर्थिक दृष्टिसे सफलता सन्देहजनक है, कठिन है। यह काम तो ऐसी संस्थायें हाथमें लें, तभी इसमें सफलता मिल सकती है। नागरी-प्रचारिणी-सभा इस दिशामें निश्चय ही सन्तोषजनक कार्य कर रही है। सभाकी इस विशेषताके हम सदासे प्रशंसक रहे हैं कि बाहरी धूमधाम और आत्म-विज्ञापनसे दूर रहकर उसने सदा साहित्यके उत्थानके लिए महान् कार्य किये हैं।

इस तरहके ठोस साहित्य-निर्माणके कार्यमें सम्मेलनका भाग बहुत उल्लेखनीय नहीं रहा है। उसने इस दिशाकी ओर ध्यान ही कब दिया? हमारा ख्याल है कि आज जब हिन्दीके ऊपर भारतकी जिम्मेदारी आयी अथवा आनेवाली है, तब सम्मेलनको इस महान् प्रश्नकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सम्मेलन चाहे तो इसके लिए साधन एकत्र हो सकते हैं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन समस्त हिन्दी भाषा-भाषियों एवं अनुरागियोंके धन्यवादके पात्र हैं, जिन्होंने पूना-सम्मेलनके सम्बन्धमें उत्पन्न कठिनाइयोंका अन्त कर डाला है। हमें यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि श्री कालेलकरजीने अपनी मांगें वापस ले ली हैं और अब वे निर्वाचित स्वागत-समितिको सहयोग देंगे। मईकी संख्यामें इस विषयपर हमने विस्तृत रूपसे लिखा था और आज जैसा इन घटनाओंका अन्त हुआ है, उसीके लिए हमने लिखा भी था। सारी कठिनाइयां स्वागत-समितिके निर्वाचन-परिणामको लेकर उत्पन्न हुई मालूम होती हैं, यह हमने लिखा था और बादको इस प्रसङ्गपर जो प्रकाश पड़ा है, उससे भी यही बात प्रमाणित होती है।

खैर। हमें प्रसन्नता है कि इस दुःखद प्रसङ्गका इतना सुन्दर अन्त हुआ है। आशा है, स्वागत-समितिवाले अब काकाजीके अनुभव, उनकी लगन एवं साधनोंका सदुपयोग सम्मेलनको सफल बनानेके लिए करनेसे न चूकेंगे।

× × ×

सफर। लेखक—'श्री पहाड़ी'; प्रकाशक—सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या २७१; मूल्य १॥)।

'विश्वमित्र'के पाठकोंके लिए 'पहाड़ी' की कहानियां कुछ नयी नहीं हैं। 'मनोवैज्ञानिक पहलू,' 'आखिरी स्केच,'-'अकारणकी व्याख्या', 'एक विराम' आदि रचनाओंको पढ़नेके बाद यह आशा कुछ अनुचित न थी कि 'पहाड़ी' आधुनिक हिन्दी कहानी-लेखकोंमें आगे चलकर अच्छा स्थान बना सकेंगे। वह एक सर्जनकी तरह मनोभावोंको चीरफाड़कर केवल दिमागी ऐयाशीका ही साधन नहीं बनाते, बल्कि पाठकोंके लिए सोचने-समझनेका ठोस मसाला भी देते हैं। समाजमें नारीकी स्थिति एवं तत्सम्बन्धी कितनी ही बातें इसमें आयी हैं।

प्रस्तुत कहानी-संग्रहको पेश करते हुए लेखकने स्वयं कहा है—"न आज नारी केवल भावुकतापर टिकी है। वह भावुकतापर एक वैज्ञानिककी तरह विश्वास करती हुई खुद दलील करना सीख गयी है।......नग्न चीज वीभत्स लगती है। लेकिन मुंह छुपाकर चलना भी एक नैतिक अपराध होगा।.........इस पुस्तकके सब पात्र समाजके पात्र ही हैं। उनको पहचानकर भी मैंने उनकी स्वतन्त्रतामें रुकावट डालनी नहीं चाही। मैं तो उनके और पाठकोंके बीच एक जरिया मात्र हूं"

आजका समाज तबदीली चाहता है, पर वह एक दिनका काम नहीं। इसीलिए लेखक सिर्फ अपनी कहानियोंमें भविष्य-के लिए एक इशारा करनेके अलावा और कोई राय अभी देना नहीं चाहता है। वह आजके समाजकी रक्षा चाहता है। उसके कायदे-कानूनोंके प्रति फिर भी उसके पात्रोंमें भारी विद्रोह है।

'पहाड़ी' की कहानियां दिलको छू लेती हैं और उनके पात्र कुछ ऐसा आकर्षण रखते हैं, जो पढ़ते ही स्मृतिसे उतर नहीं सकते। उनके डायलग आकर्षक और मार्मिक होते हैं:—

"आप शादी करेंगे?"

"नहीं तो.........।"

"देखिये झूठ न बोलिये।"

"कह तो दिया नहीं...नहीं।"

"क्या वाकई सच कहते हो?"

"हां...हां।"

"माना करोगे तो कैसी बीबी लाओगे?"

"कह दूं...मुमताज-सी।" [तो इन्होंने चन्दाको जरूर देखा है]

"क्या तुम चाय नहीं पीतीं?"

"पीती तो हूं।"

"साथ-साथ पीना बुरा लगता है?"

"अभी पूजा नहीं की।"

"यह पूजा कबसे सीखी है।" [निरूपमा]

'गाड़ीने सीटी दी, चल दी। हरएकको धक्का लगा। वह एक ओर झुकी। फिर अपनेको पकड़ लिया।'

'.........। बच्चेको गोदीमें लिया। उसकी आंखोंका भोलापन एक अज्ञानता। बच्चा पास लगा। उसे नजदीक पाया। अपनेसे चिपटता वह जान पड़ा। वह देख-देख मुस्क-राती थी।' [एक अध्याय]

'इलाहाबादमें कटराकी लम्बी सड़कपर एक ओर गेंदा-की पानकी दूकान है। वह निरा पान ही नहीं देती, साथमें एक मुस्कान भी कर देती है।'

लेखककी कई कहानियां बड़ी मार्मिक हैं और उनका हिन्दीमें महत्त्वपूर्ण स्थान होगा। लेखक गहराई तक डूबते हैं, पर उनकी भाषा थोड़ी उलझी, थोड़ी अटपटी-सी है, जो कभी-कभी भावोंका प्रवाह रोकती-सी है। हमारा ख्याल है कि इसमें परिमार्जनकी आवश्यकता है। 'पहाड़ी'के पास अभी कहनेको बहुत कुछ है और वे और भी अच्छा कह सकें, यह हमारी आशा है। और कहानीके क्षेत्रमें उनसे और ऊंचे साहित्यकी आशा करना निराधार भी नहीं है।

स्वातन्त्र्य वीर सावरकर। लेखक—श्री चन्द्रगुप्त वेदा-लङ्कार; प्रकाशक—दयालु आर्य भारत कम्पनी; गन्ना स्ट्रीट, लखनऊ। छपाई-सफाई साधारण; पृष्ठसंख्या १९२, मूल्य ॥।)

प्रस्तुत पुस्तकमें, जैसा कि इसके नामसे स्पष्ट होता है, श्री सावरकरका जीवन-चरित अङ्कित किया गया है। श्री सावरकरके सम्बन्धमें जनताको काफी दिनोंसे दिलचस्पी रही है और इसमें सन्देह नहीं कि उनका जीवन-इतिहास अनेक रोमाञ्चकारी घटनाओंसे भरा हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तकमें १८ अध्यायोंमें श्री सावरकरके सम्बन्धमें प्रारम्भसे लेकर अब तककी बातोंका समावेश किया गया है। लेखन-शैली आकर्षक है ; पर सबसे अधिक आकर्षक हैं श्री सावरकरके साहस-भरे कार्य, जिन्हें पढ़नेमें उपन्यासका-सा मजा आता है। श्री सावरकरकी राजनीतिसे किसीका चाहे जितना भी मतभेद हो; पर इस निःस्वार्थसेवी वीरके साहस, लगन, त्याग एवं कष्टसहनकी प्रशंसा सभी करेंगे। अतः पुस्तक चावसे पढ़ी जायगी, इसमें सन्देह नहीं। पर लेखकने पुस्तकके अन्तमें कुछ ऊटपटांग बातोंका समावेश अति उत्साहमें आकर न कर दिया होता, तो इसका मूल्य कुछ घट न जाता। सावरकर महोदयका सम्मान केवल 'हिन्दू राष्ट्रपति' के रूपमें सब नहीं करते। इस मनुष्यमें एक आकर्षक व्यक्तित्व और उस व्यक्तित्वके भीतर शक्तिका 'डिनामाइट' है, जो लोगोंको उसका प्रशंसक बना देता है, अतः इस वीर पुरुषको केवल एक हिन्दूके रूपमें ही सब नहीं देखेंगे।

गांधोजी जिम्मेदारीसे मुक्त

वर्धामें पिछले दिनों होनेवाली कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निश्चय किया है, जिसके अनुसार उसने गांधीजीको अहिंसाके अपने महान् सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिए कांग्रेसके कार्यक्रमको निर्धारित एवं सञ्चालित करनेकी जिम्मेवारीसे मुक्त कर दिया है; क्योंकि कांग्रेसको बाहरी आक्रमण तथा आन्तरिक शान्तिके सम्बन्धमें वर्तमान परिस्थितिके अनुरूप ही अपनी नीति बनानी होगी। वर्किङ्ग कमेटीने यह निश्चय जिस पृष्ठ-भूमिपर किया है, वह भी प्रस्तावमें सन्निहित है। उसका पूरा प्रस्ताव यों है :—

"यूरोपमें इधर एकके बाद एक जो दुःखद घटनायें हुई हैं और खासकर फ्रान्सकी जनतापर जो विपत्ति गिरी है, उससे कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी अत्यन्त विचलित हो उठी है। इन घटनाओंके परिणाम बहुत दूर तक पहुंचनेवाले हुए हैं एवं आगे ऐसी और घटनायें घटनेकी सम्भावना है, जिससे परिस्थिति अधिक नाजुक और समस्यायें अधिक जटिल हो जायेंगी।

यूरोपीय युद्धके आरम्भ-कालसे ही कांग्रेसने अपने सिद्धान्त और भारतको एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर देनेकी मांगके प्रति ब्रिटिश सरकारके रुखके आधारपर अवलम्बित नीतिका अनुसरण किया है। रामगढ़ कांग्रेसके प्रस्ताव द्वारा इस नीतिकी पुष्टि की गयी। किस तरीकेसे इस नीतिको काममें लाया जाय, यह परिस्थितिपर निर्भर करता है, जो कि हर रोज बदल रही है। जो समस्यायें पहले दूर थीं, वे अब करीब आ गयी हैं, इसलिए बहुत जल्द इन्हें हल करनेकी जरूरत है। राष्ट्रीय आजादी हासिल करनेकी समस्याके साथ-साथ अब हमें सम्भावित बाहरी आक्रमण और भीतरी अशान्तिसे आजादी और देशकी रक्षाके प्रश्नपर भी विचार करना होगा।

दूसरे लोगों और देशोंपर आधिपत्य जमानेकी साम्राज्य-वादी आकांक्षा और शस्त्रीकरणकी दौड़के परिणाम-स्वरूप ही यह यूरोपीय युद्ध हुआ है, जिसने मनुष्य जातिका कष्ट उस चरम-सीमा तक पहुंचा दिया है, जो अब तक अज्ञात था। इस युद्धने राष्ट्रीय आजादी और जनताकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेमें सङ्गठित हिंसाकी, चाहे वह कितने भी विशाल दायरेमें हो, अयोग्यता प्रकट कर दी है।

निस्सन्देह यह बात स्पष्ट हो गयी है कि युद्धसे शान्ति और आजादीकी स्थापना नहीं हो सकती, इसलिए संसारको अब दोमें किसी एकको चुन लेना है—युद्धके द्वारा पूर्ण रूपसे पतन और विनाश अथवा समस्त जनताकी आजादीके आधारपर शान्ति और अहिंसाका मार्ग, जिसे महात्मा गांधीने युद्धसे पीड़ित और शान्ति चाहनेवाले संसारको दिखाया है और जो सशस्त्र आक्रमणसे जनताके अधिकारों और उसकी आजादीकी रक्षा करनेके लिए युद्धका स्थान लेनेवाले, सङ्गठित अहिंसाके रूपमें एक अस्त्रके समान है। महात्माजी महसूस करते हैं कि मानव-इतिहासके इस सङ्गीन मौकेपर कांग्रेसको इस आदर्शका पालन कराना चाहिए और यह घोषित कर देना चाहिए कि भारत बाहरी आक्रमण अथवा भीतरी अशान्तिसे अपनी आजादीकी रक्षा करनेके लिए सशस्त्र सेनायें रखना नहीं चाहता।

वर्किङ्ग कमेटी यद्यपि यह मानती है कि कांग्रेसको आजादीकी लड़ाईमें अहिंसात्मक सिद्धान्तका पालन

पूर्वक करना होगा, तथापि वह तेजीसे बदलनेवाली आजकी दुनियामें इस दिशामें मानव शक्तिकी वर्तमान अपूर्णताओं और त्रुटियोंकी उपेक्षा नहीं कर सकती, जब तक जनतापर पूर्ण रूपसे कांग्रेसका अहिंसात्मक नियन्त्रण हो न जाय और लोग सङ्गठित अहिंसाका सबक भली भांति न सीख लें। कमेटीने इस प्रकार उपस्थित समस्यापर विचार करनेके बाद यह निश्चय किया कि वह इस दिशामें महात्मा गांधीके साथ पूर्ण रूपसे चलनेमें असमर्थ है, लेकिन कमेटी यह स्वीकार करती है कि महात्माजीको अहिंसाके अपने महान् आदर्शका विस्तार करनेके लिए स्वतन्त्र कर देना चाहिए। इसलिए भारतकी वर्तमान स्थितिमें कांग्रेसको जिस प्रोग्राम-के अनुसार कार्य करना है, उसे कार्यान्वित करनेकी जिम्मेदारीसे महात्माजीको मुक्त कर देना चाहिए।

वर्किङ्ग कमेटीने इस सम्बन्धमें जिन कई अन्य प्रश्नोंपर विचार किया है, वे वर्तमानसे सम्बन्धित नहीं हैं, यद्यपि निकट भविष्यमें वे आ सकते हैं। कमेटी यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि राष्ट्रीय आजादीकी लड़ाईमें अहिंसाकी मौलिक नीति और तरीका पूर्ण रूपमें जारी है और राष्ट्रीय रक्षाकी हद तक उनका विस्तार हो सकनेमें असमर्थताके कारण उनपर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।"

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी जो उलझनें इधर पिछले वर्षोंसे बढ़ती गयी थीं, उनमें कांग्रेसकी स्थितिकी अस्पष्टता भी बढ़ती जा रही थी, अतः वर्धाके इस निश्चयने कांग्रेसकी स्थितिको अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है, यह सन्तोष-की बात है। राष्ट्रीय स्वाधीनताके लिए कांग्रेसने पूर्ण अहिंसात्मक साधनोंका ही अवलम्बन करनेकी बात कही है, पर आन्तरिक अशान्ति एवं बाहरी आक्रमणोंसे देशकी रक्षाके लिए उसने अभी इस अहिंसाको प्रभावशाली नहीं माना है, यह हमारे लिए और भी सन्तोषजनक है, क्योंकि हमने कितनी ही बार इन कालमोंमें ठीक ऐसा ही मत प्रकट किया था। सदासे हमारा मत रहा है कि अहिंसाका सिद्धान्त देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनेके साधनके रूपमें तो ठीक है, पर बाहरी आक्रमणोंसे आत्मरक्षार्थ यह विशाल पैमानेपर सफल नहीं हो सकता और इसीलिए जब गांधीजीने अबसीनिया और जेकोस्लोवेकिया जैसे देशोंको पशुबलके सामने शस्त्रास्त्र रख देनेकी बात कही, तभी हमने उसका विरोध किया है। अहिंसात्मक साधनों की सफलता जिन बातोंके आधारपर हम सोचते हैं, बाहरी आक्रमणोंमें वे नहीं होतीं, अतः उसका प्रयोग सफल ही नहीं हो सकता। इतिहासने भी इन्हीं तथ्योंको स्पष्ट किया है। कांग्रेसका इस समयका निर्णय देशके लोकमतके अनुकूल हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

प्रस्तावकी प्रतिक्रिया

पर देशका एक भाग वह भी है, जिसपर गांधीजीको कांग्रेसकी नीति एवं कार्यक्रमसे अकस्मात् इस प्रकार मुक्त कर देनेकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं हुई है। उसका विश्वास है कि इस समय कांग्रेसको उनके नेतृत्वकी आवश्यकता है और कांग्रेस उनके नेतृत्व बिना चल नहीं सकती।

इस सम्बन्धमें कई बातें हैं, जिन्हें उक्त निर्णयके समर्थकों और विरोधियों, दोनोंको समझ लेना चाहिए। पहली बात तो यह है कि बम्बई कांग्रेसमें कांग्रेसके नेतृत्वसे अपनेको मुक्त करनेके लिए उसका उद्देश्य बताते हुए गांधीजीने स्वयं कहा था कि वे चाहते हैं कि देश केवल उन्हींपर निर्भर न रहे। उनपर निर्भर रहनेकी जो आदत कांग्रेसको पड़ गयी है, और उसने अपनी सोचने और निर्णय करनेकी जो शक्ति खो दी है, उसका विकास होने लगेगा, जब गांधीजी उसके नेतृत्वसे हट जायेंगे। गांधीजीके इस तर्कमें काफी जोर है और हम स्वीकार करते हैं कि गांधीजीका मत इस विषयमें खूब स्पष्ट है और उनका निश्चय देशके हितोंके अनुकूल ही रहा। अतः वर्किङ्ग कमेटीने जो कुछ किया है, निश्चय ही गांधीजीकी सम्मति और उनके मतके अनुकूल ही किया है। और जैसा कि पं० जवाहरलालजीने अपने एक वक्तव्यमें कहा है और जैसा कि बम्बई कांग्रेसके समयसे अब तक नियमानुकूल कांग्रेससे अलग रहनेपर भी गांधीजीका सच्चा परामर्श एवं नेतृत्व कांग्रेसको मिला है, उसे देखते हुए इस बातकी सम्भावनाओंकी आशा हम अवश्य करते हैं कि गांधीजीका सहयोग देशको मिलता ही रहेगा।

और इसके स्पष्ट कारण हैं। बीस साल तक जो गांधीजी देशके सर्वमान्य नेता रहे हैं, बीस साल तक जो गांधीजी कांग्रेसके एकमात्र सूत्रधार रहे हैं और बीस साल तक जिन गांधीजीकी विचार-धाराका प्रचार और प्रयोग कांग्रेसके नेतृत्वमें भारतकी जनता करती रही है, उससे एक प्रस्ताव पास करके ही उसे मुक्त कर देना कुछ इतना आसान भी

नहीं है। हां, इससे गांधीजीकी उलझनोंका अन्त हो जायगा और कांग्रेस तथा गांधीजीके दृष्टिकोण एवं उसके अनुसार नीति-निर्धारण एवं कार्यक्रमका सञ्चालन करनेमें जो परस्पर विरोधात्मक शक्तियां उठ खड़ी होती थीं, उनका इस प्रस्तावने अन्त कर डाला है, यह सन्तोषकी बात है। देशके सामने अब कांग्रेसकी नीति एवं स्थिति इतनी स्पष्ट हो चुकी है, जो जनता एवं अधिकारियोंके लिए भी उपयोगी है।

इस नीतिकी सफलता तीन बातोंपर निर्भर करती है। कांग्रेसमें नेतृत्वकी क्षमता, दूसरे दलोंपर इसकी प्रतिक्रिया एवं जनता और सरकारकी आवश्यकतायें। पहली बात तो यह है कि वर्षों गांधियन विचार-धाराके घनिष्ट सम्पर्कमें रहने और उससे प्रभावित होनेवाला नेतृत्व अकस्मात् अपनेको उससे सर्वथा पृथक् नहीं कर सकता। दूसरी बात यह है कि इस देशके साम्प्रदायिक दल कभी भी राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे न सोचकर केवल साम्प्रदायिक हितोंके नामपर लड़ रहे हैं, अतः समस्त देशके लिए कांग्रेसके किसी निश्चयकी प्रतिक्रिया उनपर एक निराले ढङ्गसे होती है और जनताकी आवश्यकतायें चाहे जो भी हों, सरकारकी प्रगति इस विषयमें काफी शिथिल होती रही है। पर कांग्रेस पिछली दो कठिनाइयोंसे निराश कभी नहीं हुई है, अतः यदि कांग्रेसने अपनी इस नयी नीतिका सञ्चालन कर देशको अपनी स्वाधीनताके लिए अहिंसात्मक साधनोंको अपनाने तथा बाहरी आक्रमणोंसे देशकी रक्षाके लिए सभी उचित साधनोंको एकत्रकर देशको तैयार रखनेका कार्यक्रम अपनाया और निःशङ्क इस दिशाकी ओर कदम उठाया, तो निश्चय ही उसका यह निर्णय देशके हितोंके अनुकूल होगा और वह शक्ति-सञ्चय कर सकेगी।

वायसरायको नये अधिकार

युद्धकी निरन्तर उलझती हुई परिस्थितिमें इस बातकी आशङ्का की जाने लगी है कि ह्वाइट हाल और भारतमें सीधा सम्पर्क सम्भवतः न रह सके, और ह्वाइट हालके आदेशके बिना वायसराय महोदय परिस्थितियोंके अनुकूल कारवाई करनेमें अक्षम न रह जायें, इसलिए वायसरायको इन मामलोंमें अधिकार दे देना ही मि० एमेरीके उस बिलका उद्देश्य था, जिसे अब कानूनका रूप मिल चुका है। १९३५ के भारतीय शासन-विधानकी धारा ११० के अनुसार यूरोपियनोंको सेनामें भरती करनेके सम्बन्धमें भारतको कानूनन् कोई अधिकार न था; क्योंकि इससे आर्मी ऐक्ट-नेवी ऐक्ट आदिके विरुद्ध बात होती, और उधर यूरोपियनोंके लिए बनाया गया पहला कानून, जिसके अनुसार यूरोपियनोंकी सैनिक योग्यताकी जांचका अधिकार मिला था, उसपर यूरोपियनोंकी ओरसे स्वेच्छापूर्वक ऐसा करनेका कोई खास उत्साह नहीं दिखाई पड़ा, इसलिए तत्सम्बन्धी वायसरायकी वैधानिक कठिनाइयोंका अन्त कर उन्हें पूर्ण अधिकार देना भी उक्त ऐक्टका उद्देश्य है। वायसरायकी आर्डिनेन्स बनानेकी क्षमतामें भी इस कानूनसे वृद्धि हुई है, जैसा कि उसकी तीसरी और चौथी धाराओंसे स्पष्ट है। भारतीय व्यवस्थापिका सभा भी अब उनके इन अधिकारोंके विरुद्ध कुछ नहीं कह सकती; क्योंकि उक्त ऐक्टके अनुसार अब वे सीधे पार्लमेण्टके नियन्त्रणमें काम करते माने जायेंगे। भारतीयोंके सम्बन्धमें उन्हें पहलेसे अधिकार मिल चुके हैं।

देशकी रक्षाका प्रश्न

१९३९—४० के लिए सुरक्षा विषयक संशोधित बजटमें, जो सम्राट्की सरकारके समझौतेके आधारपर बनाया गया था, उसके अनुसार, ४९.२९ करोड़का अनुमान लगाया गया था। साधारण बजटकी अपेक्षा यह ४.११ करोड़ अधिक था। फिर नये वर्षके बजटका तखमीना सुरक्षाके लिए ५३.५२ करोड़ लगाया गया। और अब भारत-सरकारके एक वक्तव्यके अनुसार सुरक्षाकी योजनाओंको कार्यान्वित करनेमें २० करोड़ वार्षिक और भी बैठेगा। फिनान्स मेम्बरने अनुमान लगाया था कि सुरक्षाके लिए प्रायः ८ करोड़ और भी अधिक खर्च होगा; पर अब सब मिलाकर, सैनिक तैयारी, शस्त्रास्त्र-निर्माण, गोली-बारूदकी तैयारी तथा दूसरी युद्ध-सामग्रियोंके निर्माणमें प्रायः ७३ करोड़ रुपये लग जायेंगे। २८ जूनको वायसराय महोदयने शिमलासे एक आर्डिनेन्स निकाला है, जिसके अनुसार युद्धसामग्री तैयार करनेवाले कारखानोंमें काम करनेके लिए सुदक्ष शिल्पियोंकी अनिवार्य भर्ती की जायगी। आगामी चन्द महीनोंमें इन फौजी कारखानोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए चार हजारसे ऊ शिल्पियों एवं कारीगरोंकी अनिवार्य भर्ती होगी

कर्मचारी फिलहाल खाली न होंगे, तो इस आर्डिनेन्समें सरकारको यह अधिकार दिया गया है कि वह सम्बन्धित कारखानेदारोंको इस बातके लिए बाध्य कर सकती है कि वे अपने कारखानेसे इन कारीगरोंको, युद्ध-सामग्री तैयार करनेके लिए कायम किये गये कारखानोंमें काम करनेको फौरन् मुक्त कर दें।

आर्डिनेन्समें सरकारको यह भी अधिकार दिया गया है कि विशेष आवश्यकताके खतम हो जानेपर वह इन कारीगरोंको अपने पहलेके कामपर फिर नियुक्त करा दे और उनकी नौकरी जाने न पाये। इस तरह हटाये गये चतुर कारीगरोंके रिक्त स्थानोंपर स्थापित टेकनिकल कारखानोंमें कारीगर तैयार करनेकी व्यवस्था करनेके लिए एक विभागीय समिति स्थापित की जायगी, जो एक महीनेके भीतर इस दिशामें जरूरी कारवाई करनेकी बाबत रिपोर्ट पेश करेगी।

इस सम्बन्धमें निकाले गये एक प्रेस नोटमें कहा गया है कि तेजीके साथ यूरोपकी बदतर होती हुई परिस्थितिको मद्देनजर रखकर यह जरूरी हो गया है कि समूचे ब्रिटिश उपनिवेशोंमें युद्ध-प्रयासका कार्य बड़ी तेजीके साथ शुरू कर दिया जाय और इस दिशामें जरा भी ढिलाई न होने पाये। ब्रिटेन और उसके मित्रराष्ट्रोंकी मददमें हिन्दुस्तान भी बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग ले रहा है। अब मौका आ गया है कि युद्ध-प्रयासमें भारतवर्ष पूरी मुस्तैदीके साथ लग जाय। बाहरी हमलेसे भारतवर्षकी रक्षा करनेके लिए यथासम्भव पूरी सतर्कता रखी गयी है, लेकिन भारतवर्षको केवल अपने ही साधनोंपर निर्भर नहीं रहना चाहिए, बल्कि निकट एवं मध्य-पूर्वमें शस्त्रास्त्रों एवं युद्ध-सामग्रीकी आवश्यकताओंको पूरा करनेमें भी उसे सहायक होना चाहिए।

राष्ट्रकी महत्त्वाकांक्षा

भारतका सुरक्षा सम्बन्धी व्यय सदासे बहुत ऊंचा रहा है और इसके परिणाम देखते हुए सरकारकी नीति सदा राष्ट्रवादियोंकी आलोचनाका विषय रही है। पर युद्धकालकी आकस्मिक आवश्यकताओंकी अवहेलना नहीं की जा सकती और उधर कांग्रेसने भी सुरक्षाके लिए अपनी अहिंसात्मक नीतिमें त्याग कर देशकी सुरक्षाके लिए सैनिक तैयारी एवं शस्त्रास्त्रोंमें विश्वास प्रकट किया है, अतः सरकारके लिए यह मनोवैज्ञानिक परिस्थिति अनुकूल हो जाती है; किन्तु इस दिशामें जनताको सन्तोष होगा, यदि लोकमतकी उपेक्षा न कर भारतकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्ति कर उसे स्वयं सुरक्षामें पूरी दिलचस्पी लेनेके लिए विवश किया जाय। आज जब यूरोपमें पशुबलका ताण्डव नृत्य हो रहा है, तब भारत उससे अपनी रक्षा करनेके लिए अपनेको इतना असहाय पा रहा है। सेनाके भारतीयकरणकी मांगको ब्रिटेन सदासे ठुकराता आया, अन्यथा आज हम अपनेको इतना निरुपाय न पाते। हमारी यह असहायता ही है, जिससे हम साधारण घटनाओंसे भी विचलित हो जाते हैं। हमारा ख्याल है कि वर्तमान परिस्थितियोंमें भारतकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्ति तत्काल होनी चाहिए, अन्यथा जैसा कि 'स्टेट्समैन' के सम्पादक श्री आर्थर मूरने कहा है—एक-एक दिन हम लोग भारतमें खो रहे हैं। 'भारतीयोंको स्वेच्छापूर्वक युद्धमें विजय प्राप्त करनेका अवसर दो'। कांग्रेसने भी इसे स्पष्ट कर दिया है, वह गणतन्त्रके लिए लड़नेको तैयार है, पर उस गणतन्त्रका प्रयोग वह यहां भी देखना चाहती है और अगर भारतसे समान रूपसे त्याग करनेको कहा जाता है, तो उसे समानाधिकार भी मिलना चाहिए। मैञ्चेस्टर गार्जियनने २१ जूनको ठीक ही लिखा है :—

"हिन्दुस्तानमें यह बात मन्जूर की गयी है कि भारतके लोग और अधिकांश भारतीय नेता भी युद्ध-सम्बन्धी प्रचेष्टाओंमें सहयोग देने और बढ़ानेके लिए चिन्तित हैं। किन्तु भारतवासी और जो लोग उनकी ओरसे बोलते हैं, वे यह चाहते हैं कि स्वायत्त-शासन-प्राप्त उपनिवेशोंकी तरह उन्हें भी राजनीतिक समताका अधिकार मिले और उनका यह हक मन्जूर किया जाय। इस गहरी भावनाके प्रति भला हम अपनी सहानुभूति कैसे न प्रकट करें; और जब कि हम उनसे यह चाहते हैं कि वे समान रूपसे सहायक हों, तो ऐसी दशामें उन्हें भी समान राजनीतिक अधिकार प्रदान करना चाहिए और उसी तरह उनके साथ बर्ताव करना चाहिए। जहांके लोग अपना हक समझते हैं, अपने देशकी भावना व्यक्त करते हैं और उसके भाग्यका नेतृत्व करते हैं, वे अपनी पूरी क्षमता एवं उत्कण्ठा तभी दिखा सकते हैं, जब कि अधिकारके साथ उनपर विश्वास किया जाय और इस ख्यालसे उनपर विश्वास किया जाय कि जैसे वे अपने देश और अपनी जनताके जिम्मेदार आदमी हों। हमें विश्वास

है कि मि० एमरी महान् कठिनाइयोंके बावजूद भी, यह जानते होंगे कि यह एक बहुत बड़ा कर्तव्य पूरा करनेका एक बहुत अच्छा मौका है। तदनुकूल अविलम्ब आचरण करना चाहिए। हमें पूरी आशा है कि मि० एमरी और ब्रिटिश सरकार प्रतिगामी सुझावों एवं विचारोंसे बचकर इस जानकारीमें साहसके साथ कार्य सम्पादन करेंगे कि इस समय जब कि हमारी महान् परीक्षा हो रही है, राजनीतिज्ञतापूर्ण काम करनेका यही सबसे अच्छा मौका है। इस मौकेपर हमें अपनी राजनीतिक समझदारीका परिचय देते हुए भारतमें विश्वास प्रकट करना चाहिए।''

इस समय, जब ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं, वायसराय और गांधीजीमें विचार-विनिमय हो रहा होगा। मि० जिन्नासे पहले ही वायसराय विचार-विमर्श कर चुके हैं। इसके पहले भी वे दर्जनों नेताओंसे मिल चुके हैं। आसन्न सङ्कट-काल उनके सामने है। देशकी: राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षायें वे जानते और उनकी पूर्तिके बाद देशके गणतन्त्रके लिए सब कुछ त्याग करनेकी भावनासे भी वे अपरिचित नहीं हैं,ऐसी दशामें आशा है, उनका यह वार्तालाप औरोंकी भांति ही निराशाजनक परिणाममें समाप्त न होकर परिस्थितिकी आवश्यकताओंके अनुसार ही सफल होगा। आशा है, ब्रिटेन इस सुअवसरको खोनेकी कभी भूल न करेगा।

फ्रान्सका आत्म-समर्पण और दूसरी समस्यायें

फ्रान्सका आत्म-समर्पण वर्तमान महायुद्धकी सबसे सनसनीखेज, अप्रत्याशित एवं महत्त्वपूर्ण घटना हुई है। मो० रेनोके प्रधान मन्त्रीके पदसे हटने और मार्शल पेतांके नेतृत्वमें नवीन सैन्य-मन्त्रिमण्डलके बनते ही फ्रान्स आत्म-समर्पण कर देगा, इसकी कल्पना किसीने नहीं की थी,तथापि मार्शल पेतांके तत्सम्बन्धी वक्तव्यसे पता चलता है कि यह आत्मसमर्पण अपेक्षाकृत देर ही से हुआ है, जबकि दूसरे लोग इसे अप्रत्याशित समझते हैं।

पर फ्रान्सका आत्म-समर्पण आज एक तथ्यके रूपमें है और जर्मनी और इटलीसे फ्रान्सने सन्धि कर उन्हें जैसे अधिकार दे दिये हैं, उनसे उक्त दोनों देशोंके हाथमें महत्त्वपूर्ण स्थान तथा साधन आ गये हैं। ब्रिटेनके लिए फ्रान्सके आत्म-समर्पणने कुछ कठिनाइयां उत्पन्न कर दी हैं यद्यपि उसने अन्त तक युद्ध जारी रखनेका ही निर्णय किया है, जैसी कि आशा थी। अन्तर्राष्ट्रीय घटनायें इतनी तेजीसे बदलती जा रही हैं कि इस सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, "स्थिति अत्यन्त अ-सुरक्षित एवं अनिश्चत है" जैसा किब्रिटिश प्रीमियर मि० विन्स्टन चर्चिलने कहा है। नारवेसे लेकर फ्रान्स तक शत्रुओंके हाथमें समुद्री किनारा पड़ गया है। स्पेन यद्यपि तटस्थ है, पर उसका रुख शत्रुदेश-जैसा ही है। उधर टर्की युद्धसे अलग रहना चाहता है; पर मिश्रके साथ १९३६ में ब्रिटेनकी जो सन्धि हुई है, उसके रहते हुए मिश्रको युद्धमें पड़ना चाहिए। रूमानियामें तानाशाहीकी स्थापना हो गयी है और बलगेरिया तथा युगोस्लेविया सतर्कतापूर्वक स्थितिपर आंख लगाये हुए हैं, इसलिए इधरसे स्थितिकी जटिलतायें बढ़ती गयी हैं;पर इसके साथ ही कुछ ऐसे तथ्य भी हैं,जो उपेक्षणीय नहीं हैं। ब्रिटेनके जङ्गी बेड़े अब भी अपना जोड़ नहीं रखते, और इंगलिश चेनलका पार करना साइने और एनका पार करना नहीं है। ब्रिटेनमें दुश्मनोंकी फौजका उतरना भी उतना आसान नहीं है और नात्सीवादके विरुद्ध ब्रिटेनकी जैसी आन्तरिक घृणा है, वह उसके निवासियोंके लिए आत्मबल देनेवाला एक महान् तथ्य है। वास्तवमें फ्रान्सके आत्मसमर्पणसे अनेक सम्भावनाओंसे भरी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है; पर ब्रिटेन उनका सामना करनेकी शक्ति रखता है और वह सामना करेगा, जैसा कि उसके दृढ़ निश्चयकी सूचना प्रीमियर दे चुके हैं।

रङ्गीन जातियां और युद्ध

"अफ्रीकाके श्वेताङ्गोंके लिए यह एक अपमानजनक बात होगी, अगर आदिवासियों एवं रङ्गीन जातियोंको यूरोपियनोंके विरुद्ध युद्धमें भाग लेने दिया गया" जेनरल जे० सी० जी० केम्पने हाल ही में दक्षिण अफ्रीककी एसेम्बलीमें भाषण करते हुए ऐसा कहा था और इसके बाद ही एक दूसरे सदस्य जेनरल ई० ए० कनरायने भी कहा था, "यदि आदि वासियों और रङ्गीन जातियोंको शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित कर दिया गया, तो श्वेत सभ्यताका शीघ्र ही अन्त हो जायगा।" ये दोः

अक्लके पुतले हर्टजोग पार्टीके हैं, जिसके कारनामोंसे सभी परिचित हैं। ये सभी जानते हैं कि जर्मन रङ्गीन जातिके नहीं हैं, जिनसे सभ्यताके विनष्ट होनेकी बात कही जाती है; पर इनके विरुद्ध भी ये रङ्गीन जातियोंको लड़नेके लिए तैयार नहीं होने देना चाहते। जेनरल स्मट्सने उक्त वक्ताओंको उत्तर देते हुए जो वक्तव्य दिया, वह भी सन्तोषजनक नहीं था। उन्होंने कहा कि सरकारने श्वेताङ्गों तथा रङ्गीन जातिके लोगों—दोनोंके युद्धमें भाग लेनेका निश्चय किया है, पर उन्हें शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित करनेका कोई प्रश्न नहीं है। इन रङ्गीन जातियोंका एक दल तथा श्वेताङ्गोंके दो जत्थे तैयार किये जायेंगे; पर उन्हें युद्धमें क्रियात्मक भाग नहीं लेना पड़ेगा। इस देशकी परिस्थिति तथा लोकमत इसीके पक्षमें है।

इस प्रकारकी मनोवृत्ति गणतन्त्र तथा उसके नामपर लड़नेवाले श्वेताङ्गोंके लिए जितनी घातक है, उतनी रङ्गीन जातियोंके लिए नहीं। रङ्गीन जातियोंको इससे बढ़कर अपमान और अत्याचार सहन करने पड़े हैं और सभ्यताके परम पुजारी ये दोनों वीर सभ्यताकी रक्षाकी जो यह भण्डता दिखा रहे हैं, उसका मर्म रङ्गीन जातियां अब जान गयी हैं; वे जान गयी हैं कि उन्हें शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित करनेमें सभ्यताका नहीं, श्वेताङ्गों द्वारा होनेवाले उनके शोषणका अन्त हो जायगा। और इसीलिए वे उन्हें किसी प्रकारका अधिकार देनेके पक्षमें नहीं हैं। पर बीसवीं सदीके इस मध्यकालमें 'मूर्खोंके स्वर्ग' में रहनेकी यह मनोवृत्ति तो हास्यास्पद और उनके लिए ही दुर्भाग्यपूर्ण कही जायगी।

अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वके कुछ खास तथ्य

पिछले दिनों अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वके कुछ खास तथ्य सामने आये हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

जापानने फ्रान्स और ब्रिटेनकी सरकारोंसे 'मैत्री-भाव' में इस बातकी प्रार्थना की है कि फ्रेञ्च इण्डोचीन तथा वर्मा होकर चीनमें शस्त्रास्त्र न जाने पायें। जापानकी इस 'मैत्री-भाव' की 'प्रार्थना' की ध्वनि सीधे तौरपर यह होती है कि वह किसी भी तरह उक्त दोनों द्वारोंको चीनके लिए रोकना चाहता है।

सीरिया और टर्कीने पूर्वी भूमध्यसागरकी स्थितिको ज्योंकी त्यों बनाये रखनेके लिए 'मैत्री-भाव' बनाये रखने तथा तीसरी पार्टी द्वारा इसमें परिवर्तन करनेवाले प्रयत्नोंके विरुद्ध पारस्परिक सहयोगका समझौता किया है।

अमेरिकाकी सरकारने पनामा नहरके दोनों किनारोंपर सुरङ्गें बिछायी हैं। पुराने अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने अपने मन्त्रिमण्डलमें स्टिम्सन तथा रिपब्लिक पार्टीके नेता मि० नाक्सको सम्मिलित कर लिया है। ये दोनों मित्र-राष्ट्रोंके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रुख रखते हैं।

ब्रिटिश सरकार मार्शल पेतांकी सरकारको नहीं स्वीकार करती, पर जापानके वैदेशिक विभागके एक व्यक्तिने पेतां-सरकारको माननेकी स्वीकृति दी है।

रूसका अल्टिमेटम स्वीकार कर रूमानियाने बेसरबिया तथा उत्तरी बुकोविना रूसको दे दिये।

यह तथा इस प्रकारकी दूसरी कई घटनायें अन्तर्राष्ट्रीय सम्भावनाओंसे भरी हुई घटित हुई हैं, जो आगे चलकर अपना महत्त्व स्वतः स्पष्ट करेंगी।